"लोक साहित्य के विशेष सन्दर्भ में हिन्दी-मलयालम बालसाहित्य का विश्लेषणात्मक अध्ययन"

LOKASAHITHYA KE VISESH SANDARBH MEIN HINDI-MALAYALAM BALASAHITHYA KA VISHLESHANATMAK ADHYAYAN

Thesis

Submitted to

COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY

For the Degree of

DOCTOR OF PHILOSOPHY

By

इन्दु के.वी.

INDU. K.V.

UNIVERSITY LIBRARY * COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY * Cochin - 682 022

Dr. A. ARAVINDAKSHAN
Professor & Head of the Department

Prof (Dr.) R. SASIDHARAN
Supervising Teacher

DEPARTMENT OF HINDI
COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY
COCHIN - 682 022

2005

CERTIFICATE

This is to certify that this Thesis on "LOKASAHITHYA KE VISESH SANDARBH MEIN HINDI-MALAYALAM BALASAHITHYA KA VISHLESHANATMAK ADHYAYAN" submitted for the award of DOCTOR OF PHILOSOPHY of the Cochin University of Science and Technology, Kochi-22 is a bonafide record of research work carried out by Ms. INDU K.V., under my supervision and that this thesis either in full or in part has not been submitted for a degree in any University.

Kochi-682 022

Prof. (Dr.) R. SASIDHARAN
Supervising Teacher
Department of Hindi
Cochin University of Science and Technology

DECLARATION

I here by declare that the thesis, entitled "LOKASAHITHYA KE VISESH SANDARBH MEIN HINDI-MALAYALAM BALASAHITHYA KA VISHLESHANATMAK ADHYAYAN" has not previously formed the basis of any degree, associateship, fellowship or other similar title recognition.

Kochi – 22
30-07-05

INDU.K.V
Department of Hindi
Cochin University of Science
And Technology
Kochi – 682 022.

प्राक्कथन

साहित्य का महत्व केवल कलात्मक विशेषता मात्र नहीं बल्कि इसका गहरा सामाजिक सरोकार भी होता है। समाज के हित के प्रति प्रतिबद्ध साहित्य ही सही मायने में सफल साहित्य होता है। साहित्य के सामाजिक सरोकार आज बहुचर्चित है और ज़्यादात्तर साहित्यकारों एवं आलोचकों ने इसे स्वीकारा भी है। लेकिन बालसाहित्य के सन्दर्भ में आते वक्त कितने लोग इसकी सामाजिकता पर सोचते हैं यह विचारणीय हैं। बडे बडे प्रतिष्ठित साहित्यकार भी बालसाहित्य को केवल मनोरंजन की दृष्टि से देखते हैं। याने बालसाहित्य के प्रति अधिकाँश लोगों का दृष्टिकोण जितना गंभीर होना चाहिए उतना नहीं दिखाई देता। वास्तव में समाज के चरित्रनिर्माण में बालसाहित्य की अहम भूमिका है।

इसमें सन्देह नहीं हैं कि आज के बच्चे कल के नागरिक हैं, कल समाज को आगे बढ़ाने का दायित्व उन पर निर्भर है। केवल स्कूली शिक्षा से उन्हें जीवन की कठिनाईयों से लडने की क्षमता नहीं मिलती। आज तो शिक्षा भोगवादी दिशाओं की ओर ले जाने का ही माध्यम बनकर रह गयी है। शिक्षा संस्थाओं का बल केवल अच्छे शैक्षिक परिणाम पर है। सभ्यता, संस्कृति और बच्चों के पूर्ण विकास पर नहीं। अपनी सांस्कृतिक परंपराओं के अनुरूप बच्चों का सर्वांगीण चारित्रिक एवं नैतिक विकास होना चाहिए। इसकेलिए उन्हें पाठ्यपुस्तकों के बाहर की पुस्तकें भी देनी है। बच्चों की रुचियों का परिष्करण एवं उसके चारित्रिक विकास में बालसाहित्य का बडा योगदान है।

पूर्व आधुनिक काल के रचनाकारों ने बालसाहित्य सृजन की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया था। लेकिन लोकसाहित्य तथा संस्कृत साहित्य के अन्तर्गत बच्चों के अनुकूल अनेक सामग्रियाँ मौजूद थीं जो कहानियाँ, गीत, लोरियाँ तथा पहेलियाँ आदि के रूप में बच्चों को मिलती रहीं। बालसाहित्य तथा लोकसाहित्य दोनों ऐसा विषय है जिन्पर अधिक शोधकार्य नहीं हुआ है। वास्तव में इस दिशा में तो बहुत कुछ होना बाकी है। बालसाहित्य के द्रुतगति से बढते हुए कदम उसके उज्ज्वल भविष्य की सूचना दे रहे हैं। यह तर्क भी बेबुनियाद है कि इलक्ट्रोनिक मीडिया की आँधी में बच्चे पुस्तकें या पत्रिका पढना नहीं चाहते।

आज लोक साहित्य के महत्व को भी लोग समझने लगे है। लोक साहित्य पर अनुसन्धान कार्य भी हो रहा है लेकिन उतना अधिक नहीं जितना चाहिए था। लोकसाहित्य को अपढ़, असंस्कृत, अशिष्ट लोगों की ज्ञानविहीन तथा कल्पनाशून्य साहित्य मानने वाले भी बहुत है। लेकिन वास्तविकता इसमें है कि जिस तरह धरती से जीवन रस प्राप्त किये बिना कोई भी पौधा फल मूल नहीं दे सकता उसी प्रकार लोक साहित्य से सीधा सम्बन्ध प्राप्त किये बिना कोई भी शिष्ट साहित्य सहज एवं शाश्वत नहीं हो सकता है।

किसी भी भाषा के साहित्य का मूलस्रोत लोकसाहित्य है। वास्तव में लोकसाहित्य की खोज का मतलब स्वयं अपनी ही खोज से है। लोकसाहित्य सच्चे अर्थ में जीवन के यथार्थ का, तिक्त मधुर अनुभूतियों का, सुख-दुःख का, अन्तर्वेदना का, जीवन की ऊष्मता का तथा सामाजिक जीवन के विकास परिणामों का, सांस्कृतिक सभ्यता का लेखा-जोखा प्रस्तुत करता है और नावक के तीर के समान मानव-मन को प्रभावित भी करता है। इसके अध्ययन द्वारा

संस्कृति की जडों को पहचानकर उन भावधाराओं में से समाज को प्रगतिशीलता की ओर बढ़ानेवाली धाराओं को फिर से उभारकर बाहर लाना ही शोध का लक्ष्य है।

लोकसाहित्य के अन्तर्गत बालसाहित्य नाम से पृथक रूप में कुछ न होते हुए भी बच्चों के अनुकूल अनेक सामग्रियाँ इसमें पायी जाती हैं जो लोकगीत, लोककथा तथा प्रकीर्ण साहित्य में अधिक मिलती हैं। इसलिए लोक साहित्य पर केन्द्रित बालगीतों, बालकथाओं तथा पहेलियों को प्रस्तुत शोध कार्य का विषय बनाया गया और इस शोध प्रबन्ध का शीर्षक है - "लोक साहित्य के विशेष सन्दर्भ में हिन्दी-मलयालम बालसाहित्य का विश्लेषणात्मक अध्ययन।" इस में कुलमिलाकर पाँच अध्याय है

1 हिन्दी और मलयालम का बाल साहित्य स्वरूप और विकास

2. हिन्दी और मलयालम का लोक-साहित्य स्वरूप और विकास

3. हिन्दी और मलयालम के लोकगीतात्मक बाल-गीत

4. हिन्दी और मलयालम की लोक कथात्मक बाल-कथाएँ

5 हिन्दी और मलयालम की बाल-पहेलियाँ

अन्त में "उपसंहार" भी है।

"हिन्दी और मलयालम का बाल साहित्य स्वरूप एवं विकास" शीर्षक पहले अध्याय में पाश्चात्य और भारतीय विद्वानों के बालसाहित्य-विषयक विचारों का समाकलन करके बालसाहित्य के स्वरूप, विकास, प्रवृत्तियाँ, विशेषताएँ, महत्व आदि पर प्रकाश डाला गया है। साथ ही साथ इसमें हिन्दी और मलयालम के बालसाहित्य की विकास-यात्रा का भी संक्षिप्त परिचय दिया गया है।

दूसरे अध्याय का शीर्षक है "हिन्दी और मलयालम के लोकसाहित्य स्वरूप और विकास।" इसमें यह व्यक्त करने का प्रयास किया गया है कि लोक साहित्य क्या है? इसके अलावा इसमें लोकसाहित्य के महत्व एवं हिन्दी और मलयालम के लोकसाहित्य की परम्परा का परिचय देने का प्रयास भी किया गया है।

लोकगीतों के अन्तर्गत अनेक बालगीत जैसे लोरियाँ या पालने के गीत, खेल केगीत, शिशु गीत, पशु-पक्षियों से सम्बन्धित गीत, पेड़-पौधों से सम्बन्धित गीत, ऋतुगीत या प्रकृति सम्बन्धी गीत आदि हिन्दी तथा मलयालम में समान रूप में पायी जाती है। तीसरे अध्याय "हिन्दी और मलयालम के लोकगीतात्मक बालगीत" में इन बालगीतों का वर्गीकरण, विश्लेषण तथा बालगीतों की प्रवृत्तियाँ, बालगीतों के स्वरूप एवं विकास आदि पर विचार किया गया है।

"हिन्दी और मलयालम की लोककथात्मक बालकथाएँ" शीर्षक चौथे अध्याय में हिन्दी तथा मलयालम के लोककथाओं के अन्तर्गत आनेवाले बालकथाओं का वर्गीकरण, स्वरूप एवं विकास, हिन्दी तथा मलयालम के बालकथाओं का विश्लेषण, बालकथाओं का महत्व आदि पर विचार किया गया है।

पाँचवें अध्याय "हिन्दी और मलयालम की बाल पहेलियाँ" में हिन्दी तथा मलयालम की पहेलियों पर विचार किया गया है। इसमें पहेलियों का वर्गीकरण, हिन्दी तथा मलयालम के पहेलियों का विश्लेषण पहेलियों का महत्व आदि पर विचार किया गया है। इसप्रकार लोकसाहित्य के अन्तर्गत आनेवाले बालसाहित्य की समानताओं और विषमताओं को आंकने का प्रयास इन अध्यायों में हुआ है।

हिन्दी तथा मलयालम के लोक साहित्य के अन्तर्गत आनेवाले बालसाहित्य के विश्लेषण से जो-जो निष्कर्ष निकले हैं, उन्हें उपसंहार में प्रस्तुत किया गया है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध कोचिन विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्व विद्यालय के हिन्दी विभाग के प्रोफेसर डॉ. आर. शशिधरन के निदेशन में तैयार किया गया है। समय समय पर उन्होंने जो प्रेरणा और आत्मबल दिये हैं, उसके कारण ही मैं यह शोध कार्य करने में सफल हो सकी। मेरे शोधकार्य को सफल बनाने में उन्होंने जो मूल्यवान सुझाव एवं उपदेश दिये, उनके लिए मैं सदैव आभारी रहूँगी।

विभाग के अध्यक्ष आचार्य और मानविकी संकाय अध्यक्ष डॉ ए अरविन्दाक्षन जी के प्रति मैं अपना असीम आभार प्रकट करती हूँ। जिन्होंने विभाग में आवश्यक सुविधाएँ देकर मेरे शोध-कार्य को गतिशील बनाया। उनके प्रति तहे दिल से मैं अपना आभार प्रकट करती हूँ।

मेरे इस शोध का विषय विशेषज्ञ डॉ. एन. मोहन जी के प्रति मैं अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ। जिन्होंने मुझे हमेशा उचित मार्गदर्शन ही दिया तथा मेरे इस शोधकार्य को साध्य बनाने में बहुत सहायता दी।

मेरे अन्य गुरुजनों के प्रति भी मैं आभारी हूँ जिनके आशिर्वादों ने आखिर मुझे इस कार्य के लिए काबिल बनाया था।

कोचिन विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के कर्मचारियों तथा पुस्तकालय के कर्मचारियों के प्रति भी आभार प्रकट करती हूँ जिन्होंने इस शोधकार्य को सुगम बनाने के लिए काफी सहयोग दिये हैं।

मैं अपने प्रिय मित्रों के प्रति आभारी हूँ कि वे मुझे अपनी छोटी मोटी ज़रूरतों के लिए बिना किसी हिचक के सदा उपस्थित रहे हैं। प्रिय भाई सोलजी, मित्रगण अमिता, गीता, अनुपमा, मंजू, श्रीजया आदि को मैं अपना धन्यवाद देती हूँ। मेरे प्रिय मित्र संजीव ने इस शोधकार्य की पूर्ती के लिए मुझे बहुत सहायता दी है। उनके प्रति मैं अपना आभार प्रकट करती हूँ। मेरे अन्य सभी मित्रों को मैं इस सन्दर्भ में सप्रेम स्मरंण करती हूँ।

भाई उदयन ने इस प्रबन्ध के टंकण कार्य को सफल बना दिया उनसे मैं बहुत कृतज्ञ हूँ।

अपने उन समस्त आत्मीय जनों एवं शुभ चिन्तकों को भी मैं धन्यवाद देती हूँ जिन्होंने प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से मुझे सहायता पहूँचायी है।

मैं यह शोध प्रबन्ध सविनय विद्वानों के सामने प्रस्तुत कर रही हूँ। इसमें जो गलतियाँ एवं खामियाँ आयी हैं, उनके लिए क्षमाप्रार्थी हूँ।

सविनय

कोच्चि-22

इन्दू के.वी

विषय सूची

अध्याय एक
बालसाहित्य का स्वरूप एवं विकास 1 - 63

1.0 प्रस्तावना
1 1 बालसाहित्य परिभाषाएँ
1 1 1 हिन्दी में
1 1.2 बालसाहित्य परिभाषा मलयालम में
1 1.3 बालसाहित्य पाश्चात्य विद्वानों की दृष्टि में
1.2 बालसांहित्य के प्रकार
1.2 1 बालगीत
1.2.2 बालकहानी
1.2.3 बाल उपन्यास
1.2.4 बालनाटक
1.2.5 अन्य विधाएँ
1.2.6 आयु की दृष्टि से वर्गीकरण
1.3 बालसाहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ
1.3 1 मनोरंजन
1.3.2 उपदेशात्मकता
1.3.3 कल्पनाशीलता को बढावा देना
1.3.4 जिज्ञासा की तृप्ति
1.3.5 यथार्थ का चित्रण
1.4 बालसाहित्य का महत्व
1.5 हिन्दी और मलयालम में बालसाहित्य
1.5 1 हिन्दी बालसाहित्य का उद्भवं और विकास
1.5 1 1 हिन्दी की पहली बालसाहित्य रचना
1.5 1.2 भारतेन्दु युगीन बालसाहित्य
1.5 1.3 द्विवेदी युगीन बालसाहित्य
1.5 1.4 स्वातंत्र्योत्तर बालसाहित्य
1.5 1.5 समकालीन हिन्दी बालसाहित्य
1.5 1.6 महिला बाल साहित्यकार
1.5.2 मलयालम बालसाहित्य का उद्भव और विकास
1.5.2 1 मलयालम की पहली बालसाहित्यिक रचना

1.5.2.2 केरलवर्मा युग
1.5.2.3 कवित्रय का युग
1.5.2.4 स्वातंत्र्योत्तर बाल साहित्य
1.5.2.5 सरकारी, गैर सरकारी संस्थाएँ तथा बालपत्रिकाएँ
1.6 निष्कर्ष

अध्याय दो
हिन्दी और मलयालम का लोकसाहित्य 64 125

2.0 प्रस्तावना
2 1 'लोक' शब्द की उत्पत्ति और व्याख्या हिन्दी में
2.2 'फोक' का अर्थ और व्याख्या मलयालम में
2.3 लोकसाहित्य और लोकसंस्कृति
2.3 1 लोक साहित्य लोक संस्कृति का एक अंग
2.4 लोकसाहित्य का स्वरूप एवं परिभाषा
2.5 लोक साहित्य एवं साहित्य
2.6 लोकसाहित्य की विशेषताएँ एवं महत्व
2.6 1 जनजीवन का सच्चा और स्वा़भाविक वर्णन
2.6.2 सामाजिक कुरीतियों की ओर इशारा
2.6.3 सामाजिक विसंगतियों की अभिव्यक्ति
2.6.4 मानवी संवेदनाओं का प्रस्फुटन, निर्वहन और सतत् संचार
2.6.5 लोकसंस्कृति का दर्पण
2.6.6 सामाजिक नियम-आ़चरण का अनुशासन
2.6.7 भारतीयता की अवधारणा के आधारों की प्राप्ति
2.6.8 जानकारियों का प्रसारण
2.6.9 भाषाशास्त्रीय एवं मनोवैज्ञानिक महत्व
2.6 10 इतिहास संबंधी सामग्रियों की उपलब्धता
2.6 11 जनजीवन की आर्थिक स्थितियों का विवरण
2.6.12 बौद्धिक विकास को योगदान
2.6 13 साहित्यिक और कलापरक महत्व
2.7 लोकसाहित्य के प्रकार
2.8 लोकसाहित्य में बाल साहित्य

2.9 निष्कर्ष
अध्याय तीन
हिन्दी और मलयालम के लोकगीतात्मक बालगीत 126 213
3.0 प्रस्तावना
3 1 बालगीत स्वरूप
3 1 1 बालगीतों का महत्व
3.2 हिन्दी बालगीतों का उद्‌भव और विकास
3.2 1 आदिकाल और बालगीत
3.2.2 भक्तिकालीन हिन्दी साहित्य में बालगीत
3.2.3 रीतिकाल और बालगीत
3.2.4 भारतेन्दुयुगीन और द्विवेदीयुगीन बालगीत
3.2.5 स्वातंत्र्योत्तर बालगीत
3.2.6 साठोत्तर और समकालीन हिन्दी बालगीत
3.3 मलयालम बालगीतों का उद्‌भव और विकास
3.3 1 कवित्रय के पहले तक के बालगीत
3.3.2 कवित्रय युग
3.3.3 काल्पनिक युग के कवि और उनके बालगीत
3.3.4 स्वातंत्र्योत्तर मलयालम बालगीत
3.3.5 समकालीन मलयालम बालगीत
3.4 लोकगीत क्या है?
3.4 1 लोकगीतों में बालगीत
3.5 हिन्दी और मलयालम के लोकगीतात्मक बालगीत
3.5 1 हिन्दी बालगीत वर्गीकरण
3.5 1 1 लोरियाँ या पालने के गीत
3.5 1.2 शिशु गीत
3.5 1.3 खेल के गीत
3.5 1.4 पशु-पक्षियों तथा पेड़-पौधों से संबन्धित गीत
3.5 1.5 ऋतुगीत या प्रकृति सम्बन्धी गीत
3.5 1.6 अन्य लोकगीतात्मक बालगीत
3.5 1.6 1 जानकारी बढ़ानेवाले गीत
3.5 1.6.2 खिलाने के गीत
3.5 1.6.3 गिनती के गीत
3.5.1.6.4 हिंडोले के गीत

3.5.2 मलयालम बालगीत वर्गीकरण
3.5.2 1 खेल के गीत
3.5.2.2 लोरियाँ या पालने के गीत
3.5.2.3 पशु-पक्षियों तथा पेड़-पौधों से सम्बन्धित गीत
3.5.2.4 शिशुगीत
3.5.2.5 जानकारी बढानेवाले गीत
3.5.2.6 अन्य गीत
3.5.2.6.1 खिलाने के गीत
3.5.2.6.2 गिनती के गीत
3.5.2.6.3 हिंडोले के गीत
3.5.2.6.4 हास्यगीत
3.5.2.6.5 ऋतुगीत या प्रकृति संबन्धी गीत
3.5.2.6.6 निरर्थक गीत
3.6 हिन्दी और मलयालम के लोकगीतात्मक बालगीतों का विश्लेषण
3.7 निष्कर्ष

अध्याय चार

हिन्दी और मलयालम की लोककथात्मक बालकथाएँ 214 261

4.0 प्रस्तावना
4 1 बालकथाएँ स्वरूप एवं परिभाषा
4.2 बालकथाओं का उद्भव और विकास
4.2 1 हिन्दी बालकथाओं का उद्भव और विकास
4.2.1 1 भारतेन्दु युगीन बालकथाएँ
4.2.1.2 द्विवेदी युगीन बालकथाएँ
4.2 1.3 प्रेमचन्द और उनके समयुगीन रचनाकार
4.2 1.4 स्वातंत्र्योत्तर बालकथाएँ
4.2 1.5 साठोत्तर बालकथाएँ
4.2.1.6 समकालीन बालकथाएँ
4.3 मलयालम बालकथाओं का उद्भव और विकास
4.3 1 केरलवर्मा युग
4.3.2 केरल वर्मोत्तर युग
4.3.3 पूर्वस्वतंत्रता युगीन और उत्तर स्वतंत्रता युगीन बालकथाएँ
4.3.4 मौलिक कथा साहित्य
4.3.5 साठोत्तर बाल कथाएँ

4.3.6 समकालीन बाल कथा साहित्य
4.4 लोक बालकथाओं का वर्गीकरण हिन्दी और मलयालम में
4.4 1 नीतिपरक कहानियाँ
4.4.2 पौराणिक कहानियाँ
4.4.3 ऐतिहासिक कहानियाँ
4.4.4 मनोरंजक कहानियाँ
4.5 लोककथा पर आधारित बालकथाएँ
4.5 1 नीतिपरक कहानियाँ हिन्दी तथा मलयालम में
4.5.2 हिन्दी तथा मलयालम की पौराणिक लोककथाएँ
4.5.3 हिन्दी और मलयालम की ऐतिहासिक कथाएँ
4.5.4 हिन्दी तथा मलयालम में मनोरंजक कथाएँ
4.6 निष्कर्ष

अध्याय पाँच

हिन्दी और मलयालम की बाल पहेलियाँ 262 317

5.0 प्रस्तावना
5 1 लोकोक्तियाँ और कहावतें
5.2 मुहावरा तथा लोकोक्ति
5.3 पहेलियाँ
5.3 1 पहेली और बुझौवल
5.3.2 पहेली और कहावत
5.3.3 पहेलियों की उत्पत्ति एवं परंपरा
5.3.4 पहेलियाँ स्वरूप एवं परिभाषा
5.3.5 पहेलियों का वर्गीकरण
5 4 हिन्दी तथा मलयालम की बालपहेलियाँ
5.4 1 पशु-पक्षियों तथा जीव-जन्तुओं से सम्बन्धी पहेलियाँ
5.4 1 1 पालतू पशु-पक्षी संम्बन्धी पहेलियाँ
5.4 1.1 1 बिल्ली संबन्धी पहेली
5.4 1.2 गिलहरी संबंधी पहेली
5.4 1.3 मच्छर संबंधी पहेली
5.4 1.4 मोर संबन्धी पहेली
5.4 1.5 तितली से संबन्धित पहेली
5.4 1.6 मेंढक से संबन्धित पहेली
5.4 1.7 मधुमक्खी से संबन्धित पहेली

5.4.2 फल-फूल तथा पेड-पौधों से सम्बन्धित पहेलियाँ
5.4.2 1 नारियल से संबन्धित पहेली
5.4.2.2 केले से संबंधित पहेली
5.4.2.3 कटहल से संबन्धित पहेली
5.4.2.4 मिर्च से संबन्धित पहेली
5.4.2.5 पपीता संबंधी पहेली
5.4.3 प्रकृति तथा प्राकृतिक घटनाओं से सम्बन्धित पहेलियाँ
5.4.3.1 आग संबंधी पहेली
5.4.3.2 चन्द्रमा से संबंधित पहेलियाँ
5.4.3.3 तारों से संबंधित पहेलियाँ
5.4.3.4 सूरज से संबंधित पहेलियाँ
5.4.4 शरीर एवं आहार सम्बन्धी पहेलियाँ
5.4.4 1 आँख से संबंधित पहेलियाँ
5.4.4.2 बाल से सम्बन्धित पहेली
5.4.4.3 खाद्य पदार्थ संबंधी पहेलियाँ
5.4.5 घर गृहस्थी तथा खेल खिलौने से सम्बन्धित पहेलियाँ
5.4.5 1 मथानी मटकी
5.4.5.2 चूल्हा
5.4.5.3 गुब्बारा
5.4.5.4 पतंग उड़ाना
5.4.6 विज्ञान, गणित तथा पुराण सम्बन्धी पहेलियाँ
5.4.6 1 वर्ष और महीने के नाम
5.4.6.2 पुराण संबंधी पहेलियाँ
5.4.6.2.1 रावण
5.4.6.2.2 ओणम
5.4.7 अन्य पहेलियाँ
5.4.7 1 हल संबन्धी पहेली
5.5 निष्कर्ष

उपसंहार

ग्रंथ सूची

अध्याय - एक

बालसाहित्य का स्वरूप एवं विकास

अध्याय एक

बालसाहित्य का स्वरूप एवं विकास

1.0 प्रस्तावना

किसी भी राष्ट्र के भाविस्वरूप का अनुमान उसके बच्चों की विकासयात्रा और उनमें पल्लवित-पोषित भावों विचारों से लगाया जा सकता है। क्योंकि बालक एक ऐसी स्वतः विकासोन्मुख गतिशील शक्ति होते हैं, जिन्हें थोडे से मार्गदर्शन एवं स्वस्थ वातावरण से अनुकूल दिशा में ढालकर मनवांछित परिणाम प्राप्त किये जा सकते हैं। इस कार्य के लिए सुविचारित, सुनियोजित, वैविध्यपूर्ण, स्वस्थ, रुचिकर, मनोरंजक और उपयोगी बाल साहित्य की आवश्यकता एवं उपादेयता असन्दिग्ध है।

तेज़ी से बदलती दुनिया की हर महत्वपूर्ण गतिविधि से बच्चों को परिचित कराने का कार्य बाल-साहित्य करता है। जब लिपि का आविष्कार नहीं हुआ था तब और उसके बाद भी बहुत समय तक कहानियों एवं गीतों के माध्यम से चरित्र, निर्माण करने का कार्य दादी-नानियाँ किया करती थीं। उनके कहानी-कथन में जो आत्मीयता रहती थी वह आज भी उन लोगों के मस्तिष्क में विद्यमान होगी जिन्होंने यह सुख और सौभाग्य प्राप्त किया है। वह आत्मीयता अपने वात्सल्य और स्नेह की ऊष्मा से बाल-मन को बाँधे रखने की सामर्थ्य रखती थी।

आज के बच्चों को नानी की कहानियाँ लोरियाँ, पहेलियाँ आदि सपने मात्र बन गये हैं। समकालीन भौतिकवादी युग में हर व्यक्ति दूसरे की हानि से प्रसन्न होता दिखायी देता है। सच्चा मित्र होने की बात करने वाले भी अपने मित्रों की उन्नति से जलते हैं। उनकी हानि देखकर मन ही मन प्रसन्न होते हैं। आज सम्बन्धों का कोई मूल्य ही न रहा। इस परिस्थिति में बच्चों को युगानुरूप अच्छे मूल्यों से परिचित कराना परमावश्यक है। यहाँ साहित्य का स्थान बहुत ही महत्वपूर्ण है।

1.1 बालसाहित्य परिभाषाएँ

सरल शब्दों में कहें तो बच्चों के लिए रचा गया साहित्य बालसाहित्य है। बालसाहित्य का अपना अलग अस्तिंत्व है। लेकिन बालसाहित्य का अलग अस्तित्व घोषित करते समय ही इसे बडों के साहित्य का सरल रूप माननेवालों की भी कमी नहीं हैं। ये लोग जिस तरह बच्चों को बडों का छोटा रूप मानते हैं, उसीप्रकार बालसाहित्य को भी बडों के साहित्य का सरल रूप मानते हैं। वास्तव में बच्चों और बडों में जो भिन्नता है वही भिन्नता बडों के साहित्य और बच्चों के साहित्य के बीच में भी है। बालसाहित्य के सम्बन्ध में अनेक विचार-धाराएँ तथा परिभाषाएँ प्रचलित हैं।

1.1.1 हिन्दी में

हिन्दी के सुप्रसिद्ध बालगीतकार श्री निरंकार देव सेवक ने बालसाहित्य की परिभाषा यों दी है - "जिस साहित्य से बच्चों का मनोरंजन हो सकें और जिसके द्वारा वह अपनी कल्पनाओं का विकास कर सकें वह बालसाहित्य हैं।"[1]

---

1 डॉ निरंकारदेव सेवक बालगीत साहित्य - पृ. सं 15

डॉ हरिकृष्ण देवसरे बालसाहित्य को स्कूली साहित्य से अलग घोषित करते हुए बताता है कि "एक वैज्ञानिक पहलू है जो बालसाहित्य और स्कूली साहित्य में मौलिक भेद कराता है - वह है दोनों प्रकार की पुस्तकों के वर्ण्य विषय, भाषा तथा शैली। स्कूली साहित्य जहाँ बच्चों को एक एक सीढी चढाना सिखाता है, उनकी ऊँगली पकडकर आगे ले चलता है, वहीं बालसाहित्य ज्ञान के असीम भण्डार को बच्चों के सामने प्रस्तुत करता है और बच्चे उन्में से अपनी इच्छानुसार अपनी जिज्ञासाओं तथा ज्ञान की तुष्टि के लिए सामग्री ग्रहण कर लेते हैं। बालसाहित्य बच्चों के लिए ऐसा मुक्त वातावरण प्रदान करता है और भविष्य के अनेक बाल सुलभ सपनों को साकार बनाता है। इसप्रकार स्कूली साहित्य से अलग होकर बालसाहित्य का एक स्वतंत्र स्वरूप है। और उन्होंने आगे बालसाहित्य के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए बालसाहित्य की परिभाषा यों दी है "बच्चों का संसार सर्वथा अलग होता है। वे नैतिकता, नियम और शासन के बन्धन से अपने को मुक्त मानते हैं। वे किसी अफसर, पुलीस या नेता से न तो भयभीत होते और न इसे कोई महत्व देते। उनके लिए कोई महान नहीं होता। वे सभी को अपने ज्ञान के मापदण्ड से ही नापते हैं, जिसमें सहृदयता होती है, उसे बच्चे अपना समझ लेते हैं। इसी तरह उनका साहित्य भी भिन्न होता है। जिसमें उसके मन की अनुकूल बातें कही गयी होती हैं उन्हें वे स्वीकार कर लेते हैं और वही बालसाहित्य है।"[1] इसप्रकार बालसाहित्य का स्वरूप स्पष्ट करते हुए तथा परिभाषा देते हुए देवसरे जी ने बच्चे एवं बालसाहित्य के स्वतंत्र अस्तित्व पर विचार किया है।

---

1 डॉ हरिकृष्ण देवसरे हिन्दी बालसाहित्य एक अध्ययन पृ सं 3, 4

महाकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर ने बालसाहित्य को शाश्वत साहित्य माना है। उनके अनुसार "लोरियाँ, गीत, कहानियाँ आदि मानवसृष्टि के आरंभ से ही चली आ रहे हैं। इन विधाओं ने सदैव बालमन को बहलाया है और उसे जगत् की विचित्रताओं से परिचित कराया़ है। इसलिए बालसाहित्य कभी पुराना नहीं होता। उसमें वही रस, वही माधुर्य, वही आनन्द सदैव मिलता रहता है जो उसने अपने रचनाकाल में भी दिया होगा। इसप्रकार बालसाहित्य कालानुसार रूप बदलकर बच्चों के मन को भाता रहा है।"[1]

श्री बालशौरी रेड्डि ने "बालसाहित्य सामाजिक मूल्यों का रक्षक" नामक ग्रन्थ में बाल साहित्य की परिभाषा यों दी हैं - "मेरी दृष्टि में बालसाहित्य वह है जो बच्चों को पढने योग्य हो, रोचक हो, उनकी जिज्ञासा की पूर्ती करनेवाला हो। बच्चों के साहित्य में अनावश्यक पेचीदगी न हो। वह सरल सहज और समझ में आनेवाला हो। सामाजिक दृष्टि से भी स्वीकृत तथ्यों को प्रतिपादित करनेवाला हो।"[2]

समाज में बालक का महत्व स्पष्ट करते हुए डॉ कुसुम डोंभाल ने बालसाहित्य पर अपना विचार प्रस्तुत किया है। उनका विचार है कि - "लोगों का यह दृष्टिकोण अत्यन्त भ्रामक है कि बच़्चे बडों का लघुरूप है और उनके विचार और आकांक्षाएँ अपने लघुरूप में उसी प्रकार की हैं जैसे बडों की होती हैं। लेकिन वास्तविकता यह है कि बच्चों का भावजगत्, उनका चिन्तन

और उनके विचार वयस्क से पूर्णतः भिन्न होते हैं। ऐसे बालसमाज के लिए जिस साहित्य की रचना होती है उसे बालसाहित्य कहा गया है।"[1]

डॉ उषा यादव के अनुसार "बालसाहित्य का आशय बच्चों के लिए लिखे जानेवाले साहित्य से है। लोरियों और दादा - नानी की कहानियों से शुरू होकर पत्र-पत्रिकाओं और पुस्तकों के माध्यम से यह बच्चों के हाथ में पहूँचता है। बच्चों का मनोरंजन, ज्ञानवर्धन और चरित्रगठन करने की दिशा में श्रेष्ठ बालसाहित्य प्रभावी भूमिका निभाता है।"[2] इस परिभाषा द्वारा उषा जी ने बालसाहित्य का मतलब क्या है यह स्पष्ट किया है। साथ ही ये बच्चों तक कैसे पहुँचता है और श्रेष्ठ बालसाहित्य की भूमिका क्या है इसपर भी विचार किया है।

वास्तव में बालसाहित्य बच्चों के उन अंकुरों को पुष्ट करता है, जो बडा होकर उन्हें जीवन के सत्य को पहचानने में सहायता करते हैं। सच कहें तो बच्चों के लिए लिखा गया प्रत्येक साहित्य बालसाहित्य कहलाने के अधिकारी है। डॉ विजयलक्ष्मी सिन्हा के अनुसार "बच्चों के लिए लिखा गया साहित्य बालसाहित्य है, लेकिन इसकी भाषा ऐसी हो कि बच्चे इसे पढने पर थोडा प्रयत्न कर समझ सके। साथ ही उसका मनोरंजन भी होता रहे। आगे वे कहती हैं कि "प्राचीन साहित्य का संरक्षण करते हुए नये मापदण्डों को अपनाकर साहित्य सृजन करने से ही उसमें सृजनात्मकता आती है। उनकी

---

1 डॉ कुसुम डोंभाल हिन्दी बालाकाव्य में प्रतीक एवं कल्पना तत्व पृ सं 12

2. डॉ उषा यादव - बालसाहित्य का विकास भारतीय भाषाओं का योगदान (लेख) - पृ सं 43

राय में जो भी बालसाहित्य हम बनायें उसमें सृजन पर अधिक ज़ोर दें ताकि बच्चे अपने अनुकूल बौद्धिक जलवायु पाकर स्वाभाविक रूप से अपना व्यक्तित्व बनायें और वह करें जो वे करना चाहते हैं, जिसके लिए उनके पास प्रवृत्तियाँ हैं, प्रतिभा है। इसप्रकार उद्देश्य को दृष्टि में रखकर लिखा गया साहित्य ही अच्छे बालक की सृष्टि करने में सहायक हो सकता है। आगे विजयलक्ष्मी जी बालसाहित्य को तीन प्रकार के स्वरूपों में भेद करके स्पष्ट किया है, पहला है बालकों के बौद्धिक स्तर के अनुरूप रचित ऐसा साहित्य जो बालकों से नहीं वरन् दूसरे रचनाकारों द्वारा लिखा गया है। यद्यपि इसमें सभी दृष्टियों से बालकों की अनुरूपता पर ध्यान दिया गया है, दूसरा ऐसा साहित्य जो स्वतः बालकों द्वारा रचा गया है और जिसमें बालसाहित्य कहलाने की संपूर्ण योग्यताएँ पायी जाती हैं। वैसे अन्य तरह से भी बालसाहित्य का तीसरा स्वरूप हो सकता है, जिसे स्वयं बालकों ने अपनी सहजता के साथ सुन-समझकर प्रेरणा प्राप्त कर लिखा हो। ऐसे साहित्य में बच्चों के द्वारा कथित बाल साहित्य हो सकता है।"[1]

डॉ रामकुमार वर्मा के अनुसार "बालसाहित्य ऐसा हो जो बच्चों में सहज वास्तविक उत्सुकता उत्पन्न करे, उनके कुतूहल का प्रवर्द्धन करें, जिज्ञासा की तृप्ति करें। बालसाहित्य का विषय ऐसा होना चाहिए कि जिससे बालक संकीर्णताओं से ऊपर उठकर सच्ची मानवता और विश्वकल्याण की भावना से अपना जीवन व्यतीत करने का संकल्प ले। साहित्यकार के हाथ में बालक का भाग्य है। उसे अपनी सामग्री भारतीय इतिहास के स्वर्ण पर्वों से

---

1 डॉ विजय लक्ष्मी सिन्हा आधुनिक हिन्दी में बालसाहित्य का विकास पृ सं 13

लेनी चाहिए जिनसे भारत का मस्तक आज भी देदीप्यमान है। भूत-प्रेतों की कहानियाँ स्वस्थ बालसाहित्य का अंग नहीं है। हम बालसाहित्य के लिए उन महान कवियों की कृतियों से सामग्री ले जिन्होंने कविकुल को गरिमा दी।"[1]

इसप्रकार रामकुमार वर्मा ने अपने वातावरण के अनुकूल लिखनेवाले बाल साहित्य को अधिक उपयोगी माना है और बाल साहित्य रचना की कसौटी को शुद्ध भारतीय परिवेश माना है। लेकिन बालसाहित्य के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा कि भूत-प्रेतों की कहानियाँ स्वस्थ बालसाहित्य का अंग नहीं है। यह उतना संगत नहीं दीखता। क्योंकि कल्पनाओं के बिना साहित्य नहीं। इतिहास एवं घटनाओं के साथ कल्पना का मिश्रित होने पर ही साहित्य-निर्माण संभव है। बालक तो बडों से ज़्यादा कल्पनाओं को पसन्द करते हैं। भूत-प्रेतों एवं परियों की कहानियाँ बच्चों में कल्पनाशीलता का विकास करता है। इसलिए बच्चों को कल्पनाओं से दूर नहीं रखना चाहिए। लेकिन कल्पनाओं को उनके सामने प्रस्तुत करते समय उसे इसका पता भी होना चाहिए कि ये कल्पनाएँ ही हैं यथार्थ नहीं।

सच्चाई तो यह है कि बच्चों के लिए बडों द्वारा लिखा गया साहित्य अधिकांशतः बच्चों पर थोपा हुआ प्रतीत होता है। क्योंकि इन सब का मूलस्वर उपदेशात्मक है। लेकिन यहाँ अधिकाँश आलोचक बालसाहित्य के स्वतंत्र अस्तित्व पर बल देते हैं। उनकी राय में बालसाहित्य बच्चों को अपने इच्छानुसार जिज्ञासा तृप्ति की सामग्री का चयन करने का स्वातंत्र्य देता है। इन आलोचकों के अनुसार बाल साहित्य सरल, सहज एवं रोचक होते हैं।

---

1 रामकुमार वर्मा बालसाहित्य का लक्ष्य और हमारा कर्तव्य पृ सं 11

1.1.2 बालसाहित्य परिभाषा मलयालम में

मलयालम साहित्यम् कालघट्टङ्ङळिलूडे (मलयालम साहित्य विभिन्न युगों में) नामक पुस्तक में श्री एरुमेली ने बालसाहित्य की परिभाषा यों दी हैं - "जिन सामाजिक परिस्थितियों में हम जीते हैं वे बच्चों के भविष्य जीवन का नियंत्रण करती हैं। एक बच्चे को अपने जीवन के विभिन्न पहलुओं से गुज़रना है। हर एक मोड़ पर उनकी कई मानसिक ज्ञानपरक एवं वैकारिक आवश्यकताओं को पूर्ण रूप से तृप्त करने के लिए स्कूली शिक्षा काफी नहीं हैं। उनके मनोनुकूल पढने के लिए स्कूली पुस्तकों के अलावा पाठ्येतर पुस्तकों का भी ज़रूरत है। ऐसी बाल रचनाएँ ही बालसाहित्य रचनाएँ हैं।"[1]

संस्थाना बालसाहित्य इन्स्टिट्यूट के एन्ताणु कुट्टिकळुडे साहित्यम् (बच्चों का साहित्य क्या है) नामक पुस्तक में राजलक्ष्मी ने बालसाहित्य को "बच्चों की कल्पनाशक्ति को उत्तेजित करानेवाला तथा सर्गात्मक भावनाओं के आविष्कार में सहायता देनेवाला साहित्य"[2] बताया है।

1.1.3 बालसाहित्य पाश्चात्य विद्वानों की दृष्टि में

पाश्चात्य साहित्य में बच्चों के लिए लिखे गये साहित्य की लंबी परंपरा है। 19 वीं सदी के उत्तरार्द्ध में जब भारत में बाल साहित्य की दिशा में प्रगति प्रारंभ हुई तब विदेशों में इसका स्वतंत्र अस्तित्व रूपायित हुआ था। पाश्चात्य देशों में इंगलैंड, अमेरिका और रूस का बालसाहित्य सबसे अधिक

---

1 एरुमेली मलयालम् साहित्यम् कालघट्टङ्ङळिलूडे - पृ. सं 513

2. राजलक्ष्मी मुरलीधरन चेरिया कुट्टिकळ्क्कुल्ला साहित्यम पृ सं 70

समृद्ध है। इंगलैंड का अंग्रेज़ी बालसाहित्य बहुत ही पुराना है। इसका कारण यह है कि वहाँ कई शताब्दियों से इस दिशा में किसी न किसी रूप में ध्यान दिया गया है। वहाँ के प्रायः सभी बडे लेखकों ने बच्चों के लिए कुछ न कुछ लिखा भी है।

मालूम पड़ता है कि अंग्रेज़ी बालसाहित्य का लक्ष्य बच्चों में काव्यात्मक भावना का संचार करना और राष्ट्र के प्रति पूर्णतया समर्पित होने की प्रेरणा देना रहा है। अमेरिका की संस्कृति तो भौतिक संस्कृति है। वे जीवन के व्यावहारिक पक्ष को ज़्यादा महत्व देते हैं। इसलिए भविष्य में बच्चों को जिस रूप में चाहते हैं उसी के अनुरूप तैयार करने के लिए उन्होंने प्रयत्न किया है। वहाँ बालसाहित्य में क्रियात्मक भावना एवं राष्ट्र के लिए भी भावना जगाता है और खेलकूद का महत्व एवं सत्य और न्याय की निष्ठा का भावना भी जगाता है।

भारतीय बाल साहित्य में आज भी प्राचीन साहित्य को नये परिवेश में बदलकर प्रस्तुत कियाँ जाता है। इसमें भावनाओं को पनपने का अवसर अधिक रूप में देता है और जीवन के अच्छे मूल्यों से बच्चों को परिचित कराते हैं। जबकि अमेरिकी बालसाहित्य में जीवन के भावनात्मक पक्ष कम और व्यावहारिक पक्ष पर अधिक ध्यान दिया जाता है और सत्य बातों का ज्ञान कराना तथा जीवन मूल्यों को सही रूप में आंकना ही अधिक उपयोगी समझा जाता है। जर्मनी और फ्राँस में बालसाहित्य द्वारा अपनी परिस्थितियों से लडने की प्रेरणा की जाती है।

बालसाहित्य के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए अनेक पाश्चात्य विद्वानों ने बाल साहित्य के सम्बन्ध में अपना विचार प्रस्तुत किया है। लिलियन स्मिथ के शब्दों में "यह आवश्यक नहीं है कि बच्चों के लिए रची गयी सभी पुस्तकें बाल साहित्य ही हो और न यही आवश्यक है कि बडे लोग जिसे बालसाहित्य मानते हैं, बालरुचि के अनुकूल चुनी गयी पुस्तक उस कसौटी पर खरी उतर जाए। ऐसे भी लोग हैं जो बडों की बातों का सरल ढंग से विवेचन बालसाहित्य मानते हैं। लेकिन यह विचार बच्चों को बडों का सूक्ष्म संस्करण सिद्ध करता है और वास्तव में यह गलत धारणा बचपन द्वारा उत्पन्न ही हुई है। बच्चे वास्तव में एक ऐसा वर्ग है, जिसका जीवन अनुभव बडों से बिलकुल भिन्न होता है। उनकी एक अलग दुनिया होती है जिसमें जीवन के मूल्य बाल सुलभ मनोवृत्ति के आधार पर नहीं।"[1]

पश्चिम के प्रमुख आलोचक एवं श्रेष्ठ कवि विल्यम् वर्ड्सवर्थ, जो प्रकृति के कवि के रूप में विख्यात हैं, बच्चों को भी प्रकृति से जुडकर शिक्षा देने के पक्ष में हैं। उनके अनुसार "बच्चा ईश्वर का अंश लेकर संसार में प्रकट होता है। किन्तु सांसारिक प्रभावों से धीरे-धीरे उसका जीवन मलिन और कुत्सित हो जाता है। यहाँ तक कि प्रौढ़ता प्राप्त करते-करते वह पूर्ण रूप से पार्थिव हो जाता है। बालक के लिए सच्ची शिक्षा स्कूलों में नहीं वरन् प्रकृति के साहचर्य से ही संभव हो सकती है।"[2]

---

1 डॉ. हरिकृष्ण देवसरे बालसाहित्य एक अध्ययन - पृ सं 15

2. डॉ विजयलक्ष्मी सिन्हा - आधुनिक हिन्दी में बालसाहित्य का विकास, पृ सं 15

डॉ हेनरी स्टील कोमगर के शब्दों में "बालसाहित्य क्या है? क्या वह साहित्य है जो विशेषकर बच्चो के लिए लिखा गया हो - यानी परी और रहस्य कथाएँ, शिशुगीत और गीत, नीति की पुस्तकें स्कूल या खेल के मैदान या किसी लंबी यात्रा की कहानी आदि? वास्तव में यह पूरे रूप में है। जिसे बच्चों ने अपना लिया है। इसमें कुछ ऐसा है, जिसमें उनका बराबरी हिस्सा है और कुछ पर उन्हीं का पूरा अधिकार है। पूरे साहित्यिक अर्थों में यह उन्हीं का साहित्य है क्योंकि अन्त में न तो माता-पिता न अध्यापक, न उपदेशक और न ही लेखक इस बात का निश्चय कर पाते हैं कि यह बालसाहित्य है। इसे तो बच्चे स्वयं तय करते हैं कि उनका साहित्य क्यों और कैसा हो?"[1]

इसप्रकार पाश्चात्य विद्वान भी बालसाहित्य की सरलता एवं सहजता को ज़्यादा महत्व देते हैं। लेकिन यहाँ भी बालसाहित्य को बडों के साहित्य का सरल रूप माननेवालों की कमी नहीं है। लेकिन अनेक आलोचकों ने इसका विरोध किया है। उन्होंने बालसाहित्य के स्वतंत्र अस्तित्व को पहचाना है और भविष्य की भलाई के लिए बालसाहित्य की उपयोगिता पर भी विचार किया है।

---

1 डॉ हेनरी कोमगर ए क्रिटिकल हिस्टरी आफ चिल्ड्रन्स लिटरेचर, भूमिका vii
- What after all do we mean by childrens literature? Is it the literature written especially for the young, the fairy and wonder tales, the nursury rhymes and songs, the dull book of etiquettee and adominition and moral persuasion, the stories of school or playing field or of for fluing adventure? If is all of this, to sure but it is for more. It is the whole vast body of literature that children have adopted, commonly to share with their elders, but sometimes to monopolize. It is quite literally, their literature. for it is, in the end, not the parents, the teachers, the preachers not even the authors, but the children themselves who determines what their literature is to be.

बच्चा विश्व की किसी भी जगह क्यों न हो, एक जैसा होता है। उसे माता-पिता, साहित्य और समाज ही संस्कार देता है। उनके लिए लिखे जानेवाले साहित्य पर विश्व के सभी कोनों की राय एक ही होगी।

1.2 बालसाहित्य के प्रकार

मानवसमाज में बच्चों का जितना स्थान हैं वही स्थान विभिन्न भाषाओं के साहित्य में बालसाहित्य को है। किसी विद्वान ने कहा है कि जिस भाषा में बालसाहित्य का सृजन नहीं होता उसकी स्थिति उस स्त्री के समान है जिसके सन्तान नहीं है। बालसाहित्य से बच्चे कुछ सीखते हैं और बहुत सारी कल्पनाएँ करते हैं। बालसाहित्य और उसके विभिन्न विधाओं के सम्बन्ध में हिन्दी एवं मलयालम के अनेक विद्वानों के अपने मत तथा सिद्धांत रहे हैं। अधिकांश विद्वानों ने विधागत दृष्टि से बालसाहित्य को प्रमुख रूप में चार भागों में विभक्त किया है। वे हैं - 1) बालगीत 2) बाल कहानियाँ 3) बाल नाटक और 4) बाल उपन्यास।

1.2.1 बालगीत

बच्चों के लिए जिन गीतों का निर्माण किया गया है वे बालगीत हैं। बालगीतों का सबसे प्रमुख गुण सरलता, सहजता एवं गोयता हैं। बालगीत उपदेशात्मकता से अधिक मनोरंजक होता हैं। बालगीत भी विभिन्न प्रकार के हैं। लोरियाँ और शिशुगीत इसकी तालात्मकता के कारण बच्चों को आकर्षित करते है तो वन्दनागीत, राष्ट्रीयगीत, प्रयाणगीत आदि विशेष प्रवृत्ति को लेकर लिखे गये हैं। वन्दनागीत ईश्वर, गुरुजनों, माता-पिता के प्रति विनय का भाव

जगाने, राष्ट्रीय गीत राष्ट्र के प्रति अर्पण मनोभाव जगाने तथा देश-प्रेम, एकता आदि को बढाने के लिए लिखे गये हैं। प्रयाणगीत बच्चों में अनुशासन जगाने के लिए लिखे गये हैं। गिनती के गीत बच्चों को मनोरंजन के माध्यम से अंकों से परिचित करवाने के लिए लिखे गये हैं। हास्यगीत एवं खेल के गीत मनोरंजनप्रधान हैं। उपदेशात्मक गीत नाम से ही स्पष्ट है कि उपदेश देने के लिए लिखा गया है तथा पशु-पक्षियों से सम्बन्धी गीत भी ऐसा ही है। ये भी बच्चों को सबसे पसन्द एवं सबसे पुराना विषय हैं।

1.2.2 बालकहानी

बालसाहित्य के क्षेत्र में बालकहानी एवं बालगीतों का सबसे महत्वपूर्ण स्थान हैं। लोक-साहित्य के अन्तर्गत भी ये दोनों प्रमुख रूप में आते हैं। बच्चे कहानियाँ सुनने में बहुत ही रुचि लेते हैं। अधिकाँश बच्चे सोने से पहले कहानी सुनने का आग्रह करते हैं। कहानी उनमें कल्पनाओं का विकास करती हैं। कहानी उनके मन को बहलाती हैं साथ ही इसमें निहित अच्छाईयों का प्रभाव भी बच्चों पर पड़ता है। बच्चों को कहानियाँ इतना अधिक पसन्द इसलिए है कि इसमें वे अपनी अनुभूतियों की अभिव्यक्ति ही प्रतिबिंबित देखते हैं। कहानियाँ अनेक प्रकार की हैं। इसमें जानवरों की कहानियाँ, ऐतिहासिक, पौराणिक कहानियाँ, उपदेशात्मक कहानियाँ भूत-प्रेतों एवं परियों से सम्बन्धित कहानियाँ, वैज्ञानिक कहानियाँ आदि प्रमुख हैं।

1.2.3 बाल उपन्यास

बालगीतों एवं बालकहानियों के समान प्रचलित नहीं है बाल उपन्यास। लोकसाहित्य के क्षेत्र में बाल उपन्यास नहीं के बराबर हैं। क्योंकि लोकसाहित्य तो पीढ़ियों से आदान प्रदान के माध्यम से आयी संपत्ति हैं। उपन्यास तो काफी लंबा होता है तथा इसमें जीवन की संपूर्ण झांकी प्रस्तुत होती है। दस ग्यारह साल और उसके ऊपर के बच्चे सरल एवं रोचक ढंग से प्रस्तुत किये गये उपन्यास पसन्द करते हैं लेकिन उपन्यास पढने के लिए छोटे बच्चे अधिक समय तक बैठते नहीं। फिर भी सरल ढंग से रचे गये अनेक बाल उपन्यास हैं। बाल उपन्यास कई प्रकार के हैं। जिन्में ऐतिहासिक उपन्यास, यात्रा सम्बन्धी उपन्यास, साहसिक उपन्यास, वैज्ञानिक उपन्यास, जासूसी उपन्यास, पौराणिक उपन्यास आदि प्रमुख हैं। ऐतिहासिक उपन्यासों में प्रचलित इतिहास के बारे में बताये जाते हैं। यात्रा सम्बन्धी उपन्यासों में यात्रा का विवरण मिलता है। साहसिक उपन्यास बच्चों में साहसिक भावना पैदा करता है। वैज्ञानिक उपन्यासों में वैज्ञानिक विषयों को सरल एवं सुन्दर ढंग से प्रस्तुत करता है।

1.2.4 बालनाटक

नाटक के मूल में अनुकरण की प्रवृत्ति हैं। अनुकरण की प्रवृत्ति ही अभिनय को जन्म देता है। कल्पनाशक्ति भी बच्चों में ज़्यादा है। वे हमेशा बडों के अनुकरण करने का प्रयास करते हैं। इसप्रकार सहज रूप में वे बचपन से ही नाटक खेलते हैं। बडे लोगों ने भी बच्चों के लिए अनेक बाल नाटक की रचना की है। बालनाटक अनेक प्रकार है। जैसे पौराणिक बालनाटक, ऐतिहासिक

बालनाटक, मनोरंजक बालनाटक, समस्याप्रधान बालनाटक आदि। पौराणिक बालनाटकों में पुराण के पात्रों तथा घटनाओं का चित्रण हैं और ऐतिहासिक बालनाटकों में बच्चों को ऐतिहासिक घटनाओं तथा पात्रों से प्रत्यक्ष दर्शन कराने का प्रयास किया है। मनोरंजक बालनाटकों में बच्चों का मनोरंजन करने का प्रयत्न है। समस्याप्रधान बालनाटक नाम से ही स्पष्ट है कि समस्याओं को लेकर लिखा गया है।

1.2.5 अन्य विधाएँ

इसके अलावा बालजीवनी, बालनिबन्ध, कहावतें, पहेलियाँ आदि पर भी कुछ विद्वानों ने विचार किया हैं। इसमें पहेलियाँ और कहावतें लोकसाहित्य के अन्तर्गत आती हैं। बालजीवनी और बालनिबन्ध आदि आधुनिक युग की उपज हैं। बच्चों की जिज्ञासा की तुष्टि के साथ-साथ उनके सैद्धान्तिक विज्ञान के विकास के लिए बालनिबन्धों की रचना होती हैं।

1.2.6 आयु की दृष्टि से वर्गीकरण

डॉ. विजयलक्ष्मी सिन्हा जैसे कुछ आलोचकों ने आयु की दृष्टि से भी बालसाहित्य को बाँटने का प्रयास किया है। बच्चों के मानसिक विकास, बुद्धि और कल्पना को ध्यान में रखते हुए तीन से बारह वर्ष की आयु के बच्चों को उन्होंने चार वर्गों में विभक्त किया है। विद्वानों के अनुसार इन चारों वर्गों के बच्चों की कल्पना और बुद्धि के विकास के स्तर भिन्न भिन्न होते हैं। तीन से पाँच वर्ष तक के बच्चों की मनोभावनाएँ और दृष्टि अपने आस पास के व्यक्तियों और

---

1 डॉ. विजयलक्ष्मी सिन्हा - आधुनिक हिन्दी में बालसाहित्य का विकास पृ सं 38

वस्तुओं पर ही सीमित रहती हैं। पाँच से सात वर्ष तक की आयु के बच्चे अपने को समाज का एक अंग समझने लगता है। और ऐसा समझने में उन्हें सुख अनुभव होता है। नौ से बारह वर्ष तक की आयु के बच्चे और भी परिपक्व होते हैं। इसप्रकार की भिन्नताओं के कारण इन चारों वर्गों के बच्चों के लिए लिखे गये साहित्य भी भिन्न भिन्न प्रकार के होते हैं।

डॉ हरिकृष्ण देवसरे इसप्रकार आयु की दृष्टि से बालसाहित्य के वर्गीकरण करना उतना समीचीन नहीं मानते।[1] यद्यपि मनोवैज्ञानिकों ने बच्चां के विकास की चार अवस्थाएँ मानी हैं - शैशवकाल, बाल्यकाल, किशोर तथा प्रौढ़। बच्चों की मूल प्रवृत्तियाँ प्रत्येक अवस्था में विशेष प्रकार से कार्य करती हैं। शैशवकाल में बच्चों की शारीरिक व मानसिक वृद्धि बहुत तीव्र गति से होती है। अपनी ज्ञानेन्द्रिय व कर्मेन्द्रिय का उपयोग वे इस अवस्था में सीखते हैं। बाल्यावस्था में बच्चों की उन्नति होती है, वे प्रत्येक वस्तु के विषय में जानने के लिए जिज्ञासू होते हैं। उनमें बडी प्रबल उत्सुकता होती है। नैतिक अनैतिक कार्यों में अन्तर करने की क्षमता आ जाती है। किशोर तथा प्रौढ़ अवस्थाओं में वे जीवन तथा संसार के प्रायः समस्त रहस्यों को समझने, जानने के योग्य बन जाते हैं।

लेकिन बालसाहित्य का सम्बन्ध वास्तव में बच्चों के बौद्धिक विकास से है। इसकेलिए दो अवस्थाएँ मानी गयी हैं - शैशवावस्था और बाल्यावस्था। बाल्यावस्था के और दो भाग है - बालवर्ग (6 से 10 वर्ष) और

---

1 डॉ हरिकृष्ण देवसरे हिन्दी बालसाहित्य एक अध्ययन पृ सं 64

किशोर वर्ग (11 से 14 वर्ष)। बच्चों के लिए लिखे जाने वाले साहित्य पर इन्हीं वर्गों का बन्धन विशेष रूप से लगाया जाता है। लेकिन बच्चों के मानसिक अवस्था के विकास में बालक के विकास का स्वरूप, वातावरण एवं स्थितियाँ, वातावरण को प्रभावित करनेवाली मनोवैज्ञानिक तथा सामाजिक शक्तियाँ आदि तथ्यों का भी योगदान हैं। बहुत ही छोटे रूप में 'प्रोब्लम चैल्ड' की समस्या भी इन्हीं बन्धनों का कारण है क्योंकि बन्धन हमेशा इसे तोड़ने के लिए भी बच्चों को मज़बूर करती है। इस दृष्टि से देखें तो बाल साहित्य का आयु की दृष्टि से विभाजन करना व्यर्थ है। यह सही है कि आयु के साथ साथ बच्चों के ज्ञान, रुचि और आदतों में परिवर्तन होता है लेकिन साहित्य को इस परिवर्तन के सूक्ष्म विभाजन के अनुरूप लिखा जाना अत्यन्त कठिन कार्य हैं। इसप्रकार अधिकाँश विद्वानों ने विधागत दृष्टि से बालसाहित्य को बाँटना अधिक समीचीन मानते हैं।

1.3 बालसाहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

बडों के साहित्य के समान बालसाहित्य की भी अनेक प्रवृत्तियाँ तथा विशेष लक्ष्य हैं। बडों के साहित्य को सरल रूप में लिखना ही बाल साहित्य नहीं है। इसकी अपनी विशेषताएँ तथा स्वतंत्र अस्तित्व है। मनोरंजन, उपदेशात्मकता, कल्पनाशीलता को बढावा देना, जिज्ञासा की तृप्ति कराना, यथार्थ का चित्रण, सहजता, सरलता आदि बालसाहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ हैं। आगे बालसाहित्य की इन प्रवृत्तियों पर विचार किया गया है।

1.3.1 मनोरंजन

अधिकाँश लोग बालसाहित्य को बच्चों में चरित्रनिर्माण करने का साधन मानकर बालसाहित्य का पहला कर्तव्य उपदेश देना मानते हैं। लेकिन नीतिमूलक कहानियाँ, कविताएँ या नाटक जब तक बच्चों की रुचि और भाषा के अनुकूल न लिखें और उनके उन को न बहलायें तब तक वे उपयोगी नहीं बन पाते। इसलिए बालसाहित्य की पहली प्रवृत्ति बालमनोरंजन ही है।

1.3.2 उपदेशात्मकता

बालसाहित्य की दूसरी प्रवृत्ति उपदेशात्मकता है। बच्चों में नीतिबोध, सामाजिक मूल्य, मानवीय मूल्य आदि का बोध उत्पन्न करना बालसाहित्य का लक्ष्य है। यह बच्चों के लिए संस्कार का सांचा देता है। इसलिए मनोरंजन के साथ साथ बालसाहित्य में उपदेशात्मकता की प्रवृत्ति दिखायी देती है।

1.3.3 कल्पनाशीलता को बढावा देना

बच्चे स्वभाव से ही समझदार और संवेदनशील होते हैं। फिर भी उन्हें भावनात्मक रूप से उचित संरक्षण की आवश्यकता होती हैं। इसीलिए उन्हें अपने परिवेश से सम्बन्धित वस्तुएँ ही रुचिकर लगती हैं। उनकी कल्पना इतनी उर्वर होती है कि थोडे-से संकेत के आधार पर ही कहानी के पात्रों से तादात्म्य स्थापित होता है.। उनमें क्रियाशीलता का बाहुल्य होता है और साहित्यिक कार्यों तथा खेलकूद में उन्हें बहुत आनन्द आता है। उनकी इस कल्पनाशीलता को बढावा देना बालसाहित्य का काम है। इसलिए यह बालसाहित्य की एक प्रमुख प्रवृत्ति रही।

1.3.4 जिज्ञासा की तृप्ति

बच्चों की जिज्ञासा इतनी बलवत्ती और कल्पना इतनी प्रखर एवं विस्तृत होती है कि उनकी भावना, विश्व के हर जीवन को छूती है और निरंतर कुछ जानना चाहती है। इसप्रकार बच्चों की जिज्ञासा की तृप्ति के लिए उन्हें ज्ञान का असीम भण्डार देना बालसाहित्य का काम है। कल्पना की भावभूमि जितने सुदृढ बन जाती है बच्चों की जिज्ञासा भी उसी के सांथ बढती है। उनकी इस जिज्ञासा की तृप्ति करना बालसाहित्य का काम है।

1.3.5 यथार्थ का चित्रण

बालसाहित्य जितनी भी कपोल-कल्पित क्यों न हो यदि वह पूर्णतः सफल हो तो उसमें सत्य का कुछ न कुछ अंश ज़रूर रहता है। सत्य ही साहित्य की आत्मा होता है और उसका प्राणतत्व वही है। इसलिए बालसाहित्य का काम होता है सत्य और जीवन यथार्थ से बच्चों को परिचित कराना। बालसाहित्य वास्तव में बच्चों को यथार्थ के धरातल पर लाकर जीवन के सत्य और मूल्यों को पहचानने योग्य बनाता है। सहजता एवं सरलता भी बालसाहित्य का एक प्रमुख तत्व है। इसप्रकार मनोरंजन् कल्पना का विकास, जिज्ञासा की तृप्ति, यथार्थ का बोध, सरलता एवं सहजता आदि बालसाहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ हैं।

1.4 बालसाहित्य का महत्व

बच्चों पर ही समाज और देश का भविष्य निर्भर है। बच्चों को सही रास्ता दिखाने का सबसे सफल मार्ग है बालसाहित्य। इससे बालसाहित्य

का महत्व स्पष्ट है। बालसाहित्य का महत्व स्पष्ट रूप से जानने के लिए समाज में बालक का क्या महत्व है यह जानना ज़रूरी है।

बालजीवन ही नयी सभ्यता की नींव है। इसलिए बालजीवन का अध्ययन करने और उनकी सेवा करने में समाज का कल्याण है। बालक की चिन्ता करने का अर्थ है मनुष्यजाति को नया जीवन देना, सभ्यता को नया रूप देना, समाज के लिए सुख और शान्ती की व्यवस्था करना। समाज का, राष्ट्र का भविष्य जिनपर आधारित है; आगे चलकर जो हमारे राष्ट्र के नागरिक बननेवाले हैं, वे सभी एक ही स्वस्थ माहौल में नहीं जी रहे हैं और अनेक बच्चे ऐसे हैं जो विभिन्न प्रकार के शोषणों के शिकार हो रहे हैं।

समाज में अनेक भेदभाव अब भी कायम है जो बच्चों में भी स्पष्ट रूप में दिखायी दे रहा है। इसपर अनेक विद्वानों ने सोच-विचार किया है। संयुक्त राष्ट्र संघ ने, इस मामले में विश्व के कई समुदायों में व्याप्त भेद भाव और बच्चों को उनके जन्मसिद्ध अधिकारों से वंचित करने की प्रथा और परंपरा को समाप्त करने के लिए बाल अधिकार घोषणा पत्र तैयार किया ताकि मानव-अधिकार प्रत्येक व्यक्ति को बाल्यावस्था से ही बिना किसी भेद भाव के मिलने लगें। बाल अधिकार घोषणा पत्र का उद्देश्य यह भी था कि इस तरह के विश्व में बच्चों के साथ हो रहे अन्याय को समाप्त किया जा सकेगा और दूसरा यह कि यदि बच्चों को बचपन में अधिकार मिल गये तो शेष मानवाधिकार उन्हें बडे होकर सहज प्राप्त हो जाएँगे। इसलिए बाल अधिकारों के अन्तर्राष्ट्रीय कन्वेन्शन (1989) ने बडी प्रभावी तरीके से बच्चों की अस्मिता को स्वीकार किया और कहा कि किसी भी बच्चे को चाहे वह लड़का हो या लडकी, अपने व्यक्तित्व

के समग्र विकास के लिए परिवार का वातावरण मिलना चाहिए - ऐसा वातावरण जिसमें खुशियाँ, प्यार और समझदारी हो। 'बाल अधिकार घोषणा पत्र' की धारा 7 और 8 यह भी सुनिश्चित करती है कि प्रत्येक बच्चे का यह अधिकार है कि लालन-पालन उसके माता-पिता द्वारा ही किया जाए। इससे स्पष्ट है कि आज परिवार को और परिवार में बच्चों को जो महत्वपूर्ण स्थान है इसे लोग समझने लगे हैं। लेकिन ये बातें अब भी प्रयोग में नहीं आयी है।

बालश्रम की समस्या तो अब दिन व दिन बढ रही है। उन्हें कच्ची उम्र में ही खतरनाक कार्यों में लगाया जा रहा है। बढती हुई जनसंख्या, गरीबी, प्राकृतिक घटनाएँ आदि बच्चों को छोटे उम्र में ही काम करने के लिए मजबूर करते हैं। आर्थिक, सामाजिक व लैंगिक शोषण की स्थितियाँ भी शर्मनाक हैं। इनके विरुद्ध अनेक नियम आये हैं। लेकिन एक ओर नियम बनते जा रहे हैं और दूसरी ओर बच्चे अधिकाधिक उपेक्षित होते जा रहे हैं।

स्वाधीनता मिलने के उपरान्त वर्षों बाद भी बच्चे उपेक्षित हैं। समकालीन भारत के हर क्षेत्र में अब एक प्रकार की दिशाहीनता है। वर्तमान शिक्षा अंधेरे में लाठी घुमाने की तरह चल रही है। पाठ्य पुस्तकों का बोझ बच्चों पर बढ़ रहा है। माता-पिता तो बच्चों को पाठ्य पुस्तकों के अलावा कुछ देना भी नहीं चाहते। हर एक माता पिता यह दावा करते हैं कि वे बच्चों की भलाई के लिए ऐसा कर रहे हैं। आज के इस होड़ की दुनिया में बच्चों को जितने अधिक पाठ्य पुस्तकों से बन्धित करें और अन्य बच्चों की तुलना में अपने बच्चे किसी भी प्रकार से अधिक अंक की प्राप्ति करें यही सभी माता-पिताओं की चिन्ता का विषय है। इसके बीच बच्चों के मानसिक विकास, उनकी

भावनाएँ, उनकी खुशियाँ सब पीचे ही रह जाते हैं। अधिकाँश माता-पिता अपने बच्चों को शिक्षा देकर डॉक्टर, इंजिनीयर आदि बनाना चाहते हैं। अच्छा मानव बनाना या अच्छा सामाजिक बनाना नहीं। इसके लिए दिन रात उनके पीछे पड़कर हमेशा उपदेश देते-देते उनके मन और मास्तिष्क भरकर अंत में उन्हें डॉक्टर या इंजिनीयर बनाते भी हैं। लेकिन ये सब बनकर भी कितने लोग खुश हैं?

आज समाज का मनोविज्ञान यह बन गया है कि जिसमें अधिक अवसर प्राप्त है जिससे अधिक लाभ मिलता है उसके पीछे भागना। आजकल का नारा भी केवल पैसा कमाना बन गया है। पैसा कमाने की भागदौड में लोग जीवन को जीना भूल जाते हैं। अपने बच्चों को, परिवार को, समाज को भूल जाते हैं। वे अपने बच्चों को भी भविष्य में पैसा कमाने का यंत्र बना देते हैं।

लोग सुखी जीवन के फरमाईश लेकर पैसे के पीछे भागते हैं। लेकिन जीवन भर भागदौड बाकी रह जाती है। समय, स्वास्थ्य और अपने जीवन को ही भूल जाते हैं। खुशियाँ केवल बाहरी दिखावा मात्र बनता है। बाहरी दिखावा के लिए वे आकंर्षक चीज़ों के पीछे भागते है और अपनी बुनियादी ज़रूरतें को भूल जाते हैं। अन्दर ही अन्दर कठिन संघर्षों को छिपाकर बाहरी दिखावा करते रहते हैं। मध्यवर्गीय परिवारों में ऐसा जीवन सबसे अधिक है। लेकिन यह अधिक समय तक चलता नहीं। एक दिन सब कुछ खोकर गिर जाते हैं। आज संयुक्त आत्महत्या की संख्या विशेषकर मध्यवर्गीय परिवारों में बढती जा रही है। बच्चों को अपने जीवन के प्रारंभ में ही इसप्रकार जीवन समाप्त करना पड़ता है। नहीं तो समाज के लिए एक बोझ बनकर जीना पडता है।

साहित्य तो हमेशा मानवता की बात करता है। भोगे हुए यथार्थो को लोगों के सामने प्रस्तुत करता है। इसलिए कि अच्छा अनुभव है तो उससे सतर्कता के साथ दूर रहें। बालसाहित्य बच्चों को अच्छाई की ओर ले चलता है। छोटे उम्र से ही बच्चों को भलाई से परिचित कराना है। जीवन का वास्तविक सुख और सन्तोष क्या है यह दिखाना है। बालसाहित्य में इसकी क्षमता है।

कई माता-पिता ऐसे हैं जो बच्चों को खिलौना मात्र समझते हैं। कई ऐसे सोचते हैं कि बच्चे केवल उनकी आज्ञा का पालन करें और एक बन्दर की तरह उनके ईशारे पर नाचते रहे। वे बच्चों की छोटी-सी भूल या त्रुटियों को भी लंबी-लंबी बातों के माध्यम से बढा-चढाते है। वास्तव में इससे बच्चों पर बुरा प्रभाव ही डालेगा। ऐसा भी हो सकता है कि आगे छोटे-छोटे कार्य करने का साहस भी वे बटोर नहीं पायेगा? आजकल बच्चे अधिकाधिक निराशावादी बनते जा रहे हैं। आज अनेक बच्चे कक्षाओं में अंक कम होने के कारण आत्महत्या कर लेते हैं। आज के युग में जीवन ज़्यादात्तर संघर्षमय बनता जा रहा है। लेकिन मानव मन इस जटिलता को स्वीकार करने की शक्ति जुटा नहीं पाती। इसलिए आज बालसाहित्य का दायित्व अधिकाधिक बढ़ता जा रहा है।

आज का बालक कार्य की ओर ध्यान कम देता है। इसका कारण यह नहीं कि उसकी एकाग्रता या एकरसता कम है। उसकी कठिनाई केवल वह प्रश्न है जो उसके भीतर उस कार्य के प्रति उठते रहते हैं, जिसको वह हाथ में लेता है, और प्रश्न भी इतने अधिक होते हैं कि वह उनमें उलझकर रह जाता है। नौकरी की समस्या छोटी उम्र में ही बच्चों पर बडा ही प्रभाव डालता

है। भविष्य में होनेवाली नौकरी की समस्या की बातें कहकर छोटी उम्र में ही माता-पिता बच्चों पर दबाव डालते हैं। इसलिए बचपन से ही वे एक दूसरे को हराने का उपाय सोचते है। यह बच्चों में हमेशा परेशानियाँ बढाता है। स्कूल में पाठ्यपुस्तकों से युद्ध और इसके बाद घर जाता है तो गृहकार्य यानी होम वर्क उन्हें तंग करता है। जो समाज पाठ्य-पुस्तकों के सहारे जीता है वह जीते जी छीजने लगता है। एक दिन उसका नाश होता है। पाठ्य-पुस्तकें बच्चों को परीक्षा में अच्छे अंक तो दिलवा सकती है किंतु उन्हें उन्मुक्त चिन्तन के लिए प्रेरित नहीं कर पाती।

आजकल समाज के हर क्षेत्र बुराई से बुराई की ओर जा रहा है। राजनीति का क्षेत्र इसके लिए सबसे बडा उदाहरण है। दरअसल आज की राजनीति भारतीय जन जीवन पर बुरी तरह छायी हुई है। साहित्य भी राजनीति के पैरों तले उचल गया है। साहित्यकारों को चिन्तन-मनन और आत्ममंथन से वह रास्ता ढूँढ निकालना है जिससे साहित्य, राजनीति का पिछलगू बना न रहे। जब तक ्साहित्य, कला, संस्कृति और विज्ञान आदि समाज के मुख्य पृष्ठ पर नहीं होंगे तब तक कोई भी समाज सही अर्थ में प्रगति या विकास के सोपान नहीं चढ़ सकता। समाज, साहित्य, कला, राजनीति आदि सभी बातें परस्पर बन्धित हैं। इनमें से किसी एक पर बुरा प्रभाव पडने से दूसरे इसे दूर कर सकता है।

इसप्रकार इन सबके परस्पर अच्छी तरह की मिलावट के बिना समाज खुशहाली की तरफ बढ नहीं पाएगा। देश और समाज में स्वस्थ वातावरण का माहौल इसके बिना असंभव है। बुरी तरह से प्रदूषित आज की

गन्दी राजनीति मानव जीवन के हर क्षेत्र में सडांध पैदा कर संक्रामक रोग फैला रही है। इसके लिए ज़रूरी है रचनात्मक प्रतिभाओं से धनी व्यक्तियों को आत्मसम्मान और स्वाभिमान जागृत करने की और देशहित में पूरी तरह समर्पित होने की। इसप्रकार के धनी व्यक्तित्वों के निर्माण के लिए सशक्त धारतल आवश्यक है। बचपन से ही इसकी शुरुआत करना है जिसमें सबसे महत्वपूर्ण योगदान रहता है पुस्तकों का।

डॉ विजयलक्ष्मी सिन्हा के अनुसार "बालकों की बहुविध विकास की दृष्टि से बालसाहित्य का महत्व असन्दिग्ध है। इसप्रकार के सुरुचिपूर्ण साहित्य के अध्ययन से बच्चों में पठन-रुचि जागृत होती है, जो उन्हें जीवनपर्यन्त अधिकाधिक अध्ययन और ज्ञानवर्धन की ओर अग्रसर करने में सहायक होती है। इस साहित्य अध्ययन से उन्हें जीवन की वांछित दिशा की ओर मोडा जा सकता है। उनमें राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना का विकास उत्पन्न किया जा सकता है।"[1]

संक्षेप में समाज के सभी क्षेत्रों में आज की स्थिति कितनी शोचनीय है इसपर बहुत ही छोटे रूप में ऊपर चर्चा की जा चुकी है। इससे स्पष्ट है कि सभी दृष्टियों से दिशाहीनता के इस वातावरण में बच्चे बेहाल है। हमारी भविष्य निधि को, भावी कर्णाधार को इस बेहाल की स्थिति में परेशानियों में छोड़ देना उचित नहीं है। उन्हें लक्ष्यहीन नहीं बना देना है। उन्हें अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर कराने का, अच्छी प्रेरणाएँ प्रदान करने का सफल माध्यम है बालसाहित्य।

---

1 डॉ विजयलक्ष्मी सिन्हा आधुनिक हिन्दी में बालसाहित्य का विकास पृ.सं 16

1.5 हिन्दी और मलयालम में बालसाहित्य

हिन्दी तथा मलयालम बालसाहित्य का उद्‌भव लोकसाहित्य तथा संस्कृत साहित्य से ही हुआ। दोनों भाषाओं के लोक साहित्य में बच्चों के अनुरूप अनेक गीत, कहानियाँ तथा पहेलियाँ देखने को मिलते है। लेकिन हिन्दी तथा मलयालम में बालसाहित्य नाम से एक खास शाखा की शुरुआत उन्नीसवीं शती में ही प्रारंभ हुआ। उस समय से लेकर आज तक दोनों भाषाओं का बालसाहित्य क्रमिक रूप में विकसित हुए। आगे हिन्दी और मलयालम के बाल साहित्य का संक्षिप्त विवरण देने का विचार हैं।

1.5.1 हिन्दी बालसाहित्य का उद्‌भव और विकास

हिन्दी बालसाहित्य का इतिहास बहुत पुराना नहीं है। अन्य भारतीय भाषाओं की भाँति हिन्दी बालसाहित्य का भी आरंभिक रूप लोकसाहित्य के अन्तर्गत ही मिलता है। इसप्रकार बालसाहित्य का मूलस्रोत लोकसाहित्य है। लोकसाहित्य की व्यापकता मानव के जन्म से लेकर मृत्यु तक है तथा यह स्त्री, पुरुष, बच्चे तथा बूढे सभी लोगों की सम्मिलित संपत्ति है। लोकसाहित्य में बालसाहित्य नाम से पृथक रूप में कुछ न होते हुए भी बच्चे उसमें अपनी रुचि की सामग्री निकाल लेते थे और अपना मनोरंजन करते थे।

हिन्दी बाल साहित्य की पृष्ठभूमि तैयार करने में लोकसाहित्य के समान संस्कृत साहित्य का भी महत्वपूर्ण स्थान है। पुराणों एवं उपनिषदों को लेकर आज भी बालसाहित्य की रचना हो रही है। इसके अलावा पुराणों को सरल रूप में व्याख्यायित करके निर्मित पुस्तकें भी हैं। वास्तव में संस्कृत

साहित्य में ही बच्चों के लिए पृथक रूप में साहित्य की रचना करना शुरू हुआ था। 'पंचतंत्र' 'हितोपदेश' आदि इसके उत्तम उदाहरण हैं।

'पंचतंत्र' द्वारा विष्णु शर्मा ने केवल छह महीनों के अन्तर्गत राजा अमरशक्ति के तीन मन्दबुद्धि बालकों को बुद्धिमान बनाया था। 'पंचतंत्र' में उपदेशप्रधान कहानियाँ हैं जिन्हें 'मित्र भेदम्' 'मित्र संप्राप्ति' 'काकोलुकीयम्' 'लब्धप्रणाशम्' 'अपरीक्षित कारकम्' आदि पाँच भागों में विभक्त किया गया है। लेकिन इसे पढ़ते वक्त बच्चों को इसे उपदेश नहीं लगता था। याने इसके निर्माण में बालमनोविज्ञान का खूब प्रयोग किया गया है। 'पंचतंत्र' के अलावा 'हितोपदेश' 'जातक कथाएँ' 'कथा सरित्सागर' आदि ग्रन्थ भी संस्कृत साहित्य में मिलते हैं, जिन्हें आज बच्चे ही नहीं बडे भी चाव से पढ़ते हैं।

1.5.1.1 हिन्दी की पहली बालसाहित्य रचना

श्री जयप्रकाश भारती के अनुसार सन् 1923 में जटमल द्वारा लिखी गयी "गोरा बादल की कथा' हिन्दी में बच्चों के लिए लिखी गयी पहली पुस्तक है। बाबू श्यामसुन्दर दास द्वारा संपादित हिन्दी हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज सम्बन्धी वार्षिक रिपोर्ट में 'गोरा बादल की कथा' की हस्तलिखित प्रति का विवरण मिलता है। इसके कुल 43 पृष्ठ हैं। इसमें मेवाड़ की महारानी पद्मावती की रक्षा करनेवाले गोरा-बादल की कीर्तिकथा है।

कुछ आलोचक सूरदास को पहला बाल साहित्यकार मानते हैं। श्री निरंकारदेव सेवक सूरदास को सफल बालगीतकार नहीं मानते। प्रसिद्ध बालसाहित्य लेखिका स्नेहा अग्रवाल की राय में "सूरदास हिन्दी की नहीं

संसार की सभी भाषाओं में वात्सल्य के बेजोड़ कवि हैं। बाल स्वभाव और मनोवृत्तियों के सम्बन्ध में उनका ज्ञान बहुत बढा-चढा था। अपने सूक्ष्म निरीक्षण के कारण उन्हें बालसाहित्य का आदि गुरु मानना चाहिए। बच्चों के लिए उन्होंने कई पुस्तक भले ही न लिखी हो, लेकिन उनके काव्य को बच्चों ने खूब पढ़ा है।"[1]

डॉ. हरिकृष्ण देवसरे ने इसे केवल भ्रम ही माना है। क्योंकि "सूरदास तो अपनी रचनाओं में बाल स्वभाव के मनोवैज्ञानिक रूप को प्रस्तुत किया है लेकिन उन बाल लीलागीतों में बाल स्वभाव का चित्रण बडों के लिए था, जिससे वात्सल्य रस की उत्पत्ति होती है। पर बच्चों का मनोरंजन नहीं होता है।"[2]

इसप्रकार देखें तो सूरदास के बाल लीलागीतों से हिन्दी बालसाहित्य का आरंभ नहीं मान सकते। सूरदास के पहले भी कुछ ऐसे कवि हैं जिनके काव्यांशों को बच्चों ने अपनाया, गाया और दुहराया है। ग्यारहवीं, बारहवीं सदियों में रचित 'आल्हाखण्ड' के कुछ अंश ऐसे हैं, जिन्हें ग्रामीण बच्चे आज भी गाते हैं। अमीर खुसरो की कविताओं में भी बच्चों को मनोरंजन देनेवाली कविताएँ हैं।

हिन्दी बालसाहित्य के आदिकाल के लेखकों में मुंशी सदासुखलाल नियाज, इंशा अल्ला खाँ, सदल मिश्र, राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द आदि प्रमुख

---

1 सं जयप्रकाश भारती - भारतीय बाल साहित्य का इतिहास - पृ सं 25

2. डॉ हरिकृष्ण देवसरे - बालसाहित्य एक अध्ययन - पृ. सं. 18

हैं। प्रो गिलक्राइस्ट की प्रेरणा से ही इन लोगों ने बालसाहित्य की ओर ध्यान दिया।

लल्लूलाल ने 'सिंहासन बत्तीसी' 'बेताल पच्चीसी' 'शकुन्तला नाटक' 'मेघानल' और 'प्रेमसागर' आदि रचनाएँ उर्दू और हिन्दी में लिखीं। इनके अलावा - 'हितोपदेश' की कहानियाँ 'राजनीति' के नाम से व्रजभाषा गद्य में लिखीं। ये सब बाल-पाठकों के मनोरंजनार्थ ही अनूदित हुए थे। उन्होंने बालसाहित्य के अन्तर्गत अपनी कोई मौलिक कृति नहीं लिखी।

सदल मिश्र ने बालकों को धर्मशास्त्र पढाने एवं नैतिक ज्ञान देने के लक्ष्य से 'नासिकेतोपाख्यान' का अनुवाद सरल एवं व्यावहारिक भाषा में किया। राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिन्द' पाठ्य-पुस्तकों की रचना के साथ बालमनोरंजनार्थ पुस्तकें भी लिखीं। उनके द्वारा लिखित पाठ्यपुस्तकों के अन्तर्गत 'भारतवर्षीय इतिहास' 'इतिहास तिमिर नाशक' 'मानव-धर्मसार' 'भूगोल हस्तामलक' 'हिन्दी व्याकरण' 'हिन्दी की उत्पत्ति' आदि प्रमुख हैं। बच्चों के मनोरंजनार्थ लिखित रचनाओं में 'आलसियों का कोड़ा' 'राजा भोज का सपना' 'बच्चों का ईनाम' आदि आते हैं।

1.5.1.2 भारतेन्दु युगीन बालसाहित्य

भारतेन्दु युग में बच्चों के लिए पृथक साहित्य लिखने की आवश्यकता समझा गया था। 1974 में 'बोलबोधिनी' पत्रिका के प्रकाशन से यह बात स्पष्ट है। भारतेन्दु ने स्वयं ही नहीं बल्कि अन्य लेखकों को भी बालसाहित्य लिखने की प्रेरणा दी थी।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने बच्चों के लिए 'अन्धेर नगरी' (1881), 'भारत दुर्दशा' (1880) और 'सत्य हरिश्चन्द्र' (1975) आदि नाटकों का लेखन किया जो अभिनय की दृष्टि से भी सशक्त हैं। आधुनिक हिन्दी साहित्य में बालसाहित्य का सूत्रपात करने का श्रेय इन्हीं को है। डॉ हरिकृष्ण देवसरे की राय में बालसाहित्य की पहली मौलिक रचना "सत्य हरिश्चन्द्र" है। इनके अलावा उन्होंने बच्चों को भारतीय इतिहास की जानकारी देनेवाली 'बादशाह दर्पण' 'काश्मीर कुसुम' आदि रचनाएँ भी कीं। 'महाराष्ट्र देश का इतिहास' 'रामायण का समय' आदि उनके द्वारा बच्चों के लिए रचित इतिहास ग्रन्थ हैं।

भारतेन्दु युग के अन्य लेखक हैं - श्रीधर पाठक, बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' राधाकृष्ण दास, पं. बालकृष्ण भट्ट, काशीनाथ खत्री, लाला श्रीनिवासदास, प्रतापनारायण मिश्रर आदि। प्रेमघन ने बच्चों के लिए ज़्यादा नहीं लिखा। लेकिन जो कुछ भी लिखा वह बाल साहित्य की श्री वृद्धि में निश्चय ही सहायक हुआ। उन्होंने ब्रजभाषा में अधिक रचनाएँ की लेकिन जीवन के अन्तिम दिनों में 'मयंकमहिमा' खडीबोली में लिखी।

प्रतापनारायण मिश्र मुख्यतया निबन्धकार थे। उनके निबन्धों ने बाल पाठक वर्गों को भी प्रभावित किया था। विनोदप्रियता उनकी प्रमुख विशेषता थी। विषय जो भी हो उसमें वे विनोद और मनोरंजन की सामग्री ढूँढ लेते थे।

लाला श्रीनिवासदास ने बच्चों के लिए 'प्रह्लाद चरित' नाटक लिखा। बालाकृष्ण भट्ट भी प्रमुखतः निबन्धकार थे। उनके 'आँख' 'नाक'

'कान' जैसे विषयों पर लिखे गये निबन्ध बाल पाठकों के लिए रोचक तथा ज्ञानवर्थक हुए। 'माँ का विषय' जो भावात्मक निबन्ध है, बच्चों में नये संस्कार एवं नैतिक और सामाजिक चेतना का भी संचार करता है। उन्होंने बच्चों के लिए 'शिशुपाल वध' 'नल दमयन्ती' 'शिक्षा दान' आदि नाटक भी लिखे। राधाकृष्ण दास का ऐतिहासिक नाटक 'महाराणा प्रताप' बच्चों के बीच अत्यधिक लोकप्रिय हुआ था।

काशीनाथ खत्री बच्चों के लिए नीतिपरक रचनाएँ लिखने में सिद्धहस्त थे। उनके 'तीन ऐतिहासिक रूपक' बच्चों के लिए विशेष रूप से उपयोगी थे। यह 'सिन्धुदेश की राजकुमारियाँ' 'गुन्नौर की रानी' और 'लबजी का स्वप्न' आदि तीन छोटे रूपकों का संग्रह है। उन्होंने बालपाठकों के लिए शैक्सपियर के नाटकों के कथानकों को हिन्दी में प्रस्तुत भी किया। इसप्रकार भारतेन्दु युग में बच्चों के लिए अनेक रचनाएँ हुई। लेकिन भारतेन्दु युग के बाल साहित्य ज़्यादा धार्मिक कथाओं से युक्त एवं उपदेशात्मक थे।

1.5.1.3 द्विवेदी युगीन बालसाहित्य

द्विवेदी युग में स्वयं द्विवेदी जी ने बालसाहित्य लेखन किया और दूसरों को इसके लिए प्रेरणा भी दी। उनके 'दूध बत्तासा' 'बिगुल बांसुरी' बच्चों के बापू' 'शिशु भारती' आदि प्रमुख बालसाहित्य पुस्तकें हैं। इनके अलावा उन्होंने 'बाल भागवत' और 'बालरामायण' भी सरल रूप में लिखीं।

द्विवेदीयुग के अन्य लेखकों में बाल मुकुन्द गुप्त, मैथिलीशरण गुप्त, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' पं कामताप्रसाद गुरु, रामजीलाल

गया। उस सामाजिक व्यवस्थिति में जाति संबंधी भेदभाव प्रबल थे। ऊँचे जातिवाले ज़मीन्दार लोग दलित किसानों एवं उनकी स्त्रियों से बहुत बुरा बर्ताव करते थे। किसान लोग सबेरे से लेकर रात तक काम करने पर भी खाने-पीने तक कुछ नहीं मिलता था, पहनने के लिए अच्छा कपड़ा नहीं था। वे सदा ही गरीब रहे। इन दुःखों को भूलने के लिए वे खेती करते समय, फसल काटते समय, और कठिन श्रम के अवसरों में गीत गाते थे। वास्तव में इन गीतों के माध्यम से वे अधिकतर अपनी दुःख गाथा ही गाते हैं। उदाहरण के लिए फसल काटते समय गानेवाला एक गीत देखिए :-

"फसल को काटते हैं खेतिहर मज़दूर सब
लेकिन भर जाते हैं महज हुज़ूर के धान्यागार ही
धान्यागार भर जाये, तिजोरी भर जाये
हुज़ूर और बेटे सब खा जायें
कमर तोड़ मेहनत और छाती के फटने पर
अपन को मिलत है आधा सरे धान ही
पौ से साँझ तक काम करने पर
मिलता है खेतिहर को दोने में मांड ही।"[1]

---

1 सिप्पी पळ्ळिप्पुरम् - ऊञ्ञालो चक्कियम्मा - नाडन् पाट्टुकळ् - पृ. सं 43
"पाड़म् कोय्युन्ने पणियारु कोय्युन्ने
तम्प्रान्टे पत्तायम् निरयुन्ने
पत्तायम् निरयट्टे, पणप्पेट्टी निरयट्टे
तम्प्रानुम् मक्कळुम् तिन्नोट्टे
एल्लु नुरुङ्ङियालुम् - चन्कु पोट्टियालुम्
एङ्ङक्कु नावूरि नेल्लु मात्रम्
मूवन्तियोळम् चेट्टिल् पणिञ्ञालुम्
कोरनु कुम्पिळिल् कञ्ञि मात्रम।"

इसका भावार्थ यह है कि काश्तकर मज़दूर फसल काटते हैं लेकिन अनाज सब जाते है ज़मीन्दार के धान्यागार में। ज़मीन्दार लोग इनकी दुर्बलताओं का शोषण करते हैं। लेकिन ये काश्तकर कुछ नहीं कर पाते। वे निस्सहाय होकर कहते हैं कि ज़मीन्दारों के धान्यागार भरने दो, उनकी संपत्ति बढने दो और ज़मीन्दार और बच्चों को खूब खाने दो। लेकिन जितना भी काम करें, हड्डी टूटने तक काम करें पर हमें थोडा सा धान ही मिलता है। सांझ तक काम करने पर भी कुछ भी खाने को नहीं मिलता। याने गरीब काश्तकर कितना भी काम करें तो उनकी गरीबी मात्र बाकी रह जाती है।

UNIVERSITY LIBRARY COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY Cochin - 682 022

2.6.3 सामाजिक विसंगतियों की अभिव्यक्ति

समाज में व्याप्त विसंगतियों का सहज एवं सच्चा चित्रण लोकसाहित्य में मिलता है। डॉ. एन. पी. कुट्टनपिल्लै के अनुसार "लोक-साहित्य जन-मानस की सहज स्वाभाविक अभिव्यक्ति है। यह बहुधा अलिखित रहता है और अपनी मौखिक परंपरा द्वारा कई पीढ़ियों तक जीवित रहता है। प्रत्येक भाषा में इस लोक-साहित्य का अक्षय भण्डार है। भावना एवं कल्पना की मात्रा कम होने के कारण लोक साहित्य सच्चे अर्थ में जीवन के यथार्थ का, तिक्त मधुर अनुभूतियों का, सुख-दुःख का, अन्तर्वेदना का, जीवन की ऊष्मता का तथा सामाजिक जीवन के विकास परिणामों का, संस्कृति-सभ्यता का लेखा-जोखा प्रस्तुत करता है और अपनी अनलंकृत वर्णन-शैली द्वारा मानव मन को मोह लेता है एवं नावक के तीर के समान प्रभावित भी करता है।"[1]

---

1 डॉ एन पी. कुट्टन पिल्लै मलयालम लोक साहित्य में सांस्कृतिक परिवेश - पृ सं 11

2.6.4 मानवी संवेदनाओं का प्रस्फुटन, निर्वहन और सतत् संचार

श्रीमति पूरन सरमा के अनुसार "लोकसाहित्य में मानवीय संवेदनाओं का प्रस्फुटन, उनका निर्वहन तथा उनका सतत् संचार एक से दूसरी पीढ़ी में चलता रहता है। यह लोकसाहित्य ही था जिसकी अनुभव जन्य बातें संपूर्ण सामाजिक जीवन में एकमत से स्वीकार कर ली जाती थीं। यह स्वरूप सामाजिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक जीवन मूल्यों तक सीमित नहीं था। अपितु धार्मिक, आध्यात्मिकक पृष्ठभूमि को भी आगे लाता था। विदेशी हुकूमत के शोषण के विरुद्ध आवाज़ उठाना, सामंतशाही के खिलाफ उठ खडे होना, मानव समाज पर होनेवाले अत्याचार के विरुद्ध जागरूकता लाना, जैसे महत्वपूर्ण चेतनावादी कार्यों में भारतीय लोकसाहित्य का अद्भुत योगदान रहा है।"[1]

2.6.5 लोकसंस्कृति का दर्पण

लोकसाहित्य लोक संस्कृति का दर्पण है। भारतीय समाज का प्राण संस्कार होते हैं। लोकसाहित्य में इन संस्कारों की मार्मिकता और मधुरिमा कूट-कूट कर भरी है। लोकसाहित्य की एक और विशेषता यह है कि इसमें किसी प्रकार का संकोच, लज्जा और झूठी मर्यादा की कृत्रिमता नहीं है।

श्री राघवन पय्यनाडु की राय में "लोकसाहित्य संस्कृति सम्बन्धी वादों की पुष्टि भी करता है। संस्कार संबन्धी वादों की पुष्टि के माध्यम से यह परंपरा को सशक्त बनाता है। समाज़ में प्रचलित या लोगों द्वारा आचरण

---

1 श्रीमति पूरन सरमा का लेख - गगनाञ्चल 97 अक्तू-दिसं लोकसाहित्य और भारतीयता पृ. सं. 23

करनेवाली किसी बात पर किसी को शंका होने पर उसे दूर करने एवं इसके पीछे के वाद की पुष्टि तथा विवरण देने के लिए पुराण, लोककथा, लोकगीत, कहावत आदि का निर्माण करता है। उदाहरण के लिए हिन्दू धर्म की एक उपजाति है 'तीयर'। इस जाति के उद्भव के पीछे एक कहानी है। माना जाता है कि साक्षात् श्री परमेश्वर ने एक मनुष्य की सृष्टि की और 'दिव्यन्' नाम दिया। वही 'आदि तीयन' याने पहला तीयन है। 'दिव्यन्' नाम दोहराते दोहराते तीयन बन गया है। शायद 'तीयन' जातिवाले लोगों को महत्वपूर्ण स्थापित करने के लिए इस कहानी का निर्माण किया गया होगा।"[1]

किसी भी संस्कृति के मूल में उसके द्वारा अनुशासित आचरण-नियम है। इनको बरकरार रखना समाज की ज़रूरत है इसलिए इन नियमों के पालन के नियम को स्थिर रखने का उपाय भी समाज ढूँढता है। ज़्यादातर यह काम लोकसाहित्य करता है। अनेक व्यक्तियों के मेल से समाज बनता है। इसलिए एक-एक व्यक्ति के चरित्र निर्माण में भी इसकी अपनी भूमिका है। बचपन से सुनती लोरियों से लेकर लोककथा एवं कहावतों और पहेलियों के माध्यम से बच्चों से लेकर बूढ़ों तक के विभिन्न आयु वर्ग वालों के चरित्र निर्माण एवं समाज के प्रति उनके दृष्टिकोण के निर्माण करने में लोक साहित्य सहायक बन जाता है। अधिकाँश कहावतें उपदेशात्मक हैं। उदाहरण के लिए मलयालम में एक कहावत है "चुंटङ्ङा कोटुत्तु वषुतनङ्ङा वाङ्ङरुतु"[2] यह

1 राघवन् पय्यनाडु फोकलोर पृ. सं 12
2. डॉ एम. षणमुखन पुलाप्पट्टा मास्टर ऑफ हिन्दी पृ. सं 314

उपदेश उन लोगों के लिए हैं जो अपनी दुर्बलताओं को समझे बिना दूसरों से लड़ने जाते हैं। हिन्दी में इसके समानार्थी कहावत है - "एक कहो न दस सुनो।"[1]

2.6.6 सामाजिक नियम-आचरण का अनुशासन

इतना ही नहीं लोकसाहित्य की एक अन्य विशेषता यह है भी कि "यह समाज द्वारा अनुशासित नियमों का पालन करनेवालों की प्रशंसा करता है साथ ही साथ इन नियमों को तोडनेवालों को बुरा भी कहता है। इसप्रकार लोकसाहित्य संस्कृति एवं सभ्यता की पुष्टि करता है। समाज के ये आचरण-नियम कभी-कभी व्यक्तियों पर दबाव भी डालते हैं जो उन्हें आन्तरिक संघर्ष देते हैं। इन संघर्षों से मुक्ति दिलाने का काम भी लोक साहित्य करता है।"[2]

व्यक्तियों को समाज से जुडा रखने में भी लोक साहित्य मदद करता है। उत्सवों एवं पर्वों के समय लोक मिलकर गीत गाते है तथा अनेक खेल खेलते हैं। उदाहरण के लिए ओणम के समय लड़कियाँ मिलकर हिंडोले में झूलती हैं तथा अनेक गीत गाती हैं :-

"ऊञ्ञालो चक्कियम्मा
मुट्टयिट्टु कुञ्ञुकोत्ती
तोङ्ङप्पान कैता वेट्टी
कैतप्पूवे - कोडियेट्ट्
एन्तु कोडी? वेट्टक्कोडी

---

1 डॉ एम षणमुखन पुलाप्पट्टा मास्टर ऑफ हिन्दी पृ सं 314
2. राघवन पय्यनाडु फोकलोर पृ सं 13

एन्तु वेट्टा? कण्णीवेट्टा

एन्तु कण्णू? आनक्कण्णू

एन्ताना? कुषियाना

एन्तु कुषि? चेम्पिन् कुषि

एन्तु चेम्प? वेट्टु चेम्प

एन्तु वेट्ट्? कल्लु वेट्ट्

एन्तु कल्लू? पोन कल्लू

एन्तु पोन्नु? काक्कप्पोन्नु

पोन्नेडुप्पान - कैत वेट्टे

कैतक्काट्टिल पू किडन्नू

पूवेडुप्पान पूविळिच्चू

पोन्नुमोळ्क्कु मिन्नु केट्टान

पोन पणिक्कर तालि तन्नू

पोन् विळक्कुम् कोळुत्तिवेच्चु

निषलिडाते तालि केट्टी।"[1]

उसीप्रकार हिन्दी प्रदेश में विजयदशमी, होली, दीपावली आदि के समय लोग इकट्ठा होकर अनेक गीत गाते हैं तथा खुशियाँ मनाते हैं। फागुन महीने में होली मनाया जाता है। इस अवसर पर लोग वसन्त के उन्माद में मस्त होकर होली तथा रसिया गाते हैं। होली के इन गीतों का प्रधान विषय राधा

1 सिप्पी पळ्ळिप्पुरम् ऊञ्ञालो चक्कियम्मा - नाडन् पाट्टुकळ् पृ सं 20

और कृष्ण का होली खेलना है। इन गीतों में अबीर, गुलाल, रंग पिचकारी आदि का उल्लेख किया जाता है। किसी किसी गीत में शिवजी से होली न खेलने का वर्णन भी मिलता है -

"तोतै होरी को खेलै तेरी लट में बिराजनि गंगा।"[1]

होली के गीतों में अनेक सामाजिक विषयों का समावेश भी होता है फिर भी अधिकतर चौवन और प्रेम की उमंग का उल्लेख है। उदा :-

"मत मारौ दगन की चोट, रसिया
होरी खेलै तौ आई जइयो फागुन में।
सीस दूध की मटुकी सौहे,
एजी हातन लग्चौ गुलाल।
रसिया होरी......

*　*　*　*　*

भर भर कै पिचकारी मारो लाला,
और उडाओ गुलाल।
रसिया होरी....."[2]

मूलतः होली फसल का त्योहार है। इसलिए इस अवसर पर गाये जानेवाले गीतों में इतना उल्लास एवं उमंग दिखायी पड़ता है। इन गीतों में विशेष प्रकार की मादकता का दर्शन होता है।

---

1 मधुर उप्रेती - ब्रज लोक साहित्य - पृ. सं. 41
2. वहीं - पृ सं. 41

इसप्रकार लोकसाहित्य में अनेक सांस्कृतिक विशेषताएं विद्यमान हैं। डॉ विद्या चौहान के अनुसार "देश और समाज में व्याप्त सांस्कृतिक अनुष्ठानों का वर्णन भी लोकसाहित्य का एक अंग है। लोक मानस की सांस्कृतिक उन्नति एवं अवनति का प्रामाणिक मानचित्र लोकसाहित्य से ही प्राप्त होता है।"[1]

2.6.7 भारतीयता की अवधारणा के आधारों की प्राप्ति

श्रीमति पूरन सरमा ने भारतीयता के सन्दर्भ में लोकसाहित्य के महत्व को स्पष्ट करते हुए बताया है कि "भारतीयता की अवधारणा में हम एक ऐसे आधार को पाते हैं, जो हमारे ठेठ लौकिक जीवन तथा आदर्श नैतिक जीवन की भावभूमि को उजागर करता है। यह भावभूमि हज़ारों-हज़ार वर्ष की सतत साधना के परिणाम स्वरूप हमारे समाज को मिली तथा यही नहीं संपूर्ण विश्व में भी सभ्यता संस्कृति के विकास में सहायक रही। हम जिस अर्थ में संस्कृति को अपनी थाती मानकर उसे सहेजना चाहते हैं, वही तो संपूर्ण मानव समाज का आधार स्तंभ थी। इंस संदर्भ में भी हम भारतीय समाज की मूल्यपरकता पर सहज ही आस्था व्यक्त करते है और विवेचन में पाते है कि हमारा जनमानस नीति एवं आदर्श मान्यताओं के ठोस धरातल पर केन्द्रित था तथा उसे इनसे विमुख किया जाना असंभव था। इसी के प्रतिफल में जिस साहित्य की रचना हुई वही हमारा लोकसाहित्य भी था। इससे स्पष्ट है कि जीवन मूल्यों तथा भारतीय समाज की परंपराओं से जुडा होने के कारण

---

1 डॉ विद्या चौहान - लोक साहित्य - पृ. सं 18

लोकसाहित्य समय की धरोहर है तथा इसका मूल श्रोत हमारी भारतीयता है। क्योंकि स्वाभाविकता, स्वच्छन्दता, सरलता और पवित्रता हमारी पावन संस्कृति की ही देन है और इनके बना रचा गया साहित्य निरर्थक माना गया है। अपितु उसका स्वर और प्रभाव शाश्वत, चिरंतन तथा हर युग में अपनी एक ही पहचान बनाये रखने वाला। किसी भी स्थिति में अप्रासंगिक न हो सका तथा उसे मानव समाज जब तब अपने जोहन में पीढ़ी दर पीढ़ी संजोये चला आ रहा है तथा हमारे मानवीय मूल्यों को बनाने का सतत प्रयत्न ज़ारी है। प्राचीन कथा कहानियों में हमारे आदर्श मूल्य आज भी सुरक्षित है।"[1] इससे स्पष्ट है कि भारतीय संस्कृति के मूल्यों को बनाये रखने में लोकसाहित्य का महत्वपूर्ण हाथ है। भारतीय संस्कृति के अनुभवजनित पारंपरिक जगत् सभी क्षेत्रों, वर्गों तथा विश्वासों के आधार पर जहाँ रोचक मनोरंजन को जन्म देता रहा, वहाँ ज्ञान का भण्डार भी बढ़ाता रहा।

2.6.8 जानकारियों का प्रसारण

शिक्षा के क्षेत्र में भी लोक साहित्य का महत्वपूर्ण स्थान है। आदिवासियों ने लोक साहित्य के माध्यम से अपनी सभी जानकारियाँ अगली पीढ़ी तक पहूँचायी थी। आधुनिक सभ्य समाज में भी मानव को एक सामाजिक प्राणी होने के नाते अपनाने योग्य अनेक आम जानकारियाँ लोक साहित्य के अन्तर्गत है। बच्चों से लेकर बूढों तक के विभिन्न आयु-वर्गों के लोगों के लिए अनेक ऐसी जानकारियाँ लोकसाहित्य में प्राप्त हैं।

---

1 गगनाञ्चल लोक साहित्य और भारतीयता - पूरम सरमा अंक वर्ष 97 अक्तूबर-दिसंबर पृ.सं. 21

2.6.9 भाषाशास्त्रीय एवं मनोवैज्ञानिक महत्व

लोक साहित्य का भाषा शास्त्रीय दृष्टि से भी महत्व है। डॉ विद्या चौहान की राय में "लोकभाषा में वर्णित होने के कारण लोक साहित्य का भाषावैज्ञानिक महत्व भी है। भाषा विकास के क्रम में बोली का असाधारण योग है। शब्दों के प्रामाणिक निरुक्त ज्ञान के हेतु भी हम बोलियों का अध्ययन करते हैं। लोक बोलियों के प्राकृतिक शब्द रूप लोक साहित्य में ही प्राप्त होते हैं। वैसे ही लोकसाहित्य की एक विशेषता यह है कि इसमें मनोविज्ञान की अभिव्यक्ति सहज रूप में हैं। साहित्य में मनोविज्ञान अधिकतः शास्त्रीय है लेकिन लोकसाहित्य में जिस मनोविज्ञान की अभिव्यक्ति है वह मनोविज्ञान का सहज रूप होता है।"[1] डॉ गोविन्द त्रिगुणायत ने एक भोजपूरी लोकगीत के माध्यम से इस बात की पुष्टि की है :-

"नीले नीले घोड़वा छयल अरवरवा कि
कुरखत हनई निशान।
खिरकी उघारि के अम्मा जी निरखे धिया
दश ओरहि होई।।
भयल विआई पटेल सिर सिन्दूर
नौलख दायज थोर।
भितरा माड़ बाहर दई मरईली सतरू के
धिया न जनमे कोई।।"[2]

इसमें कोई माँ अपने भावी दामाद - जो कि नीले घोड़े पर सवार, सजीला और सुन्दर जवान दिखायी पड़ रहा है - को देखकर मन में सोचने

---

1 डॉ विद्या चौहान लोक साहित्य - पृ सं 18

2. डॉ गोविन्द त्रिगुणायन नवीन साहित्यिक निबन्ध पृ सं 240

लगती है कि काश! मेरी दस लडकियाँ होती तो मेरे घर इसी प्रकार के दस दामाद आते, किन्तु जब उसके विवाह में दस लाख का दहेज भी कम पड गया तो वह एक बेटी की उत्पत्ति को ही कोसने लगती है। इसमें एक माता की हृदय की भावनाओं का सहज चित्रण है।

उसी प्रकार मलयालम के इस लोक गीत में एक गरीब किसान के मनोव्यापारों का सहज चित्रण है। इसमें ज़मीन्दार अपने घर में बडी-बडी, कीमती चीज़ों का इस्तेमाल करते देखकर गरीब किसान अपनी गरीबी के बारे में सोचकर विलाप करने के बजाय अपने पास की छोटी छोटी चीज़ों से तृप्त हो जाता है।

"हुजूर जब अपने असारे में केले के गुच्छे
टांगते हैं, तो मैं अपने बरामदे में पुराना
सूप लटकाऊंगा। जब हुजूर रेश्मी धोती
पहनने लगते है तो मैं अपनी पुरानी
धोती से कछौटी बांधूगा।
हुजूर जब नारियल के पेड़ पर हाथी को बांधते
है तो मैं अपने पेड़ पर बकरी बांधूगा"[1]

---

1 सिप्पी पळ्ळिप्पुऱम् ऊञ्आलो चक्कियम्मा - नाड़न् पाट्टुकळ् पृ. सं 39
"तम्प्रान्टे पन्तलिल् पषक्कुला तूक्कुम्पम्
एनेन्टे पन्तलिल् पषमुऱम् तूक्कुम्
तम्प्रानोरु कुत्तु पट्टुडुक्कुम्पम्
एनेन्टे पषमुण्डु तट्टुडुक्कुम्
तम्प्रान्टे तेङ्ङुम्मेलाने केट्टुम्पम्
एनेन्टे तेङ्ङुम्मेलाडिने केट्टुम्"

लेकिन कभी कभी इससे रुष्ट होकर ज़मीन्दारों से सवाल करने का प्रयास भी वे करते हैं। उस समय समाज की वर्ण व्यवस्था में छुआ छूत की समस्या प्रबल थी। जब ज़मीन्दार दलित काश्तकर से अपने रास्ते से हट जाने को कहता है तब वह पूछता है कि वे क्यों रास्ते से हट जायें? क्योंकि ज़मीन्दार एवं किसान दोनों की नसों में एक ही रंग का खून बहता है, दोनों को काटने पर एक जैसा खून ही बाहर निकलता है :-

"वयि तेट्ट वयि तेट्ट चिन्नप्पुलया
वयि तेट्ट वयि तेट्ट चिन्नप्पुलयी
उक्कलु कुटटीण्डु तलयिल् कव्ळुण्ड्
अप्पुरम् काडुण्डु इप्पुरम् मेट्टुण्डु
पिन्नेप्पुरम् नाङ्कळ् वयि तिरियेण्डु
पिन्नेप्पुरम् नाङ्कळ् वयि तिरियेण्डु
नाङकले कोत्यालुम् चोरेन्ने चोव्वरे
नीङकळे कोत्यालुम् चोरेन्ने चोव्वरे
पिन्नेन्तिनु नाङकळ् वयि तिरियेण्डु
पिन्नेन्तिनु नाङ्कळ वयि तिरियेण्डु।"[1]

इसप्रकार देखा जा सकता है कि लोक साहित्य का भाव पक्ष बडा ही मार्मिक, बडा ही सरल और बड़ा ही कोमल है तथा इसका मूलाधार सहज मनोविज्ञानिक है।

---

1 एस. मोहनचन्द्रन नाडन् पाट्टुकळ्-2 पृ. सं 23

2.6.10 इतिहास संबंधी सामग्रियों की उपलब्धता

इतिहास से संबन्धित अनेक सामग्रियाँ लोकसाहित्य में संचित हैं। समय के आघात से विलुप्त एवं विस्मृत घटनाएँ लोकानुभूति द्वारा लोक साहित्य में प्रश्रय पाती हैं। इसप्रकार इतिहासकारों को लोकसाहित्य के माध्यम से अतीत संबंधी अमूल्य सामग्री प्राप्त होती है जो उनके ज्ञान को पुष्ट करती है। श्री कृष्णदेव उपाध्याय के अनुसार "पंजाब, गुजरात, महाराष्ट्र, बंगाल आदि राज्यों में अनेक ऐतिहासिक लोककथाएँ प्रचलित हैं जिनके अध्ययन से प्रचुर ऐतिहासिक सामग्री प्राप्त हो सकती है। स्वतंत्रता आन्दोलन के दिनों में बटोइया, फिरंगिया आदि जिन लोकगीतों की रचना हुई थी उनसे अंग्रेज़ों द्वारा भारतीयों पर किये गये अत्याचारों का पता चलता है। विभिन्न प्रकार के व्यापार तथा व्यापार के साधनों, अवागमन के साधनों, विभिन्न ऋतुओं तथा देशानुकूल जलवायु वातावरण आदि का वर्णन भी उपलब्ध होता है।"[1]

2.6.11 जनजीवन की आर्थिक स्थितियों का विवरण

प्रत्येक युग के जनजीवन की आर्थिक स्थिति का चित्रण लोकसाहित्य में लक्षित होता है। राहुल सांकृत्यायन ने लोक साहित्य की भूमिका में लोकसाहित्य में वर्णित आर्थिक स्थिति के बारे में यों कहा है कि "लोकगीतों में जनजीवन के आर्थिक पक्ष की झाँकी भी दिखायी पडती है। गीतों एवं कथाओं में सोने की थाली में भोजन करने और अभूषणों की प्रचुरता का वर्णन उपलब्ध होता है।"[2] लेकिन पूरा समाज इस प्रकार संपन्न नहीं था। डॉ. विद्या चौहान की

1 श्री कृष्णदेव उपाध्याय हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास - प्रस्तावना पृ सं. 171

2. राहुल सांकृत्यायन - लोकसाहित्य की भूमिका पृ. सं. 159

राय में "जहाँ लोक साहित्य धन-धान्य पूर्ण समाज में 'सोने की थाली' में छप्पन प्रकार के 'पकवान' परोसने का वर्णन होता है, वहीं दरिद्रता ग्रस्त परिवारों का निराहार दिन काटने की करुणा पूर्ण स्थिति का भी उल्लेख है।"[1]

2.6.12 बौद्धिक विकास को योगदान

लोकसाहित्य का बुद्धितत्व की दृष्टि से भी महत्व है। डॉ गोविन्दत्रिगुणायन ने 'नवीन साहित्यिक निबन्ध' में इसपर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि "बहुत से लोगों की यह धारणा है कि लोक गीतों में बुद्धि तत्व की मात्रा कम होती है, वे केवल जनभावना की विभूति होते हैं, किन्तु ऐसी बात नहीं है। लोकसाहित्य में हमें जीवन की गंभीर से गंभीर समस्याओं का समाधान मिलता है। ऊँचे से ऊँचे भाव उन्में प्रतिबिंबित मिलते हैं। जीवन की नश्वरता, परम शक्तिमान की शक्तिमत्ता आदि के महत्व की व्यंजना लोकगीतों में भरपूर मिलती है। एक उदाहरण पेश है

लिहौ बसेरा कउने बन हंसा।
उड़िगै है हंस रहिगौ है पिंजडा
सब दुनियाँ के छुटा बसेरा।।
कंकड चुनि महल उठावैं लोग
कहैं घर मेरा।
ना घर मेरा, न घर तेरा चिड़िया
रैन बसेरा।।

---

1 डॉ विद्या चौहान फोकलोर पृ सं. 17

उडिकै हंस डार पर बइठें डारें सरन

बिच डेरा।

सब सखियाँ देखन आईं।

नयन भरि आये नीरा।।

चार चनै मिली लइके चलै हैं ऊपर

ताने चदरिया

गंगा घाट पर उतार दिहिन हैं

तूरत झूरि लड़कियाँ।।"[1]

पहेलियाँ और बुझौवल भी बुद्धि तत्व से भरपूर है।

2.6.13 साहित्यिक और कलापरक महत्व

लोक साहित्य का सहज कला की दृष्टि से भी बडा महत्व है। सामान्यरूपक, सहज प्रतीकात्मकता और लाक्षणिकता लोकगीतों की साहित्यिकता का आधार रहे हैं। लोक साहित्य में जनता की धार्मिक भावनाएँ भी प्रतिबिंबित हुई हैं। किसी समुदाय के धार्मिक जीवन के महत्व का पता लोक साहित्य से ही मिलता है।

श्री राघवन पय्यनाडु की राय में "अज्ञातकर्तृत्व, मौखिकी परंपरा एवं परिणाम स्वभाव लोकसाहित्य की प्रमुख विशेषताएँ हैं।"[2] लोक साहित्य के मूल रचनाकार कौन हैं इसका किसी को भी पता नहीं। लोकसाहित्य पुरानी

---

1 डॉ गोविन्द त्रिगुणायत - नवीन साहित्यिक निबन्ध - पृ. सं. 244

2. श्री राघवन पय्यनाडु फोकलोर पृ. सं. 13

पीढ़ी से नयी पीढ़ी तक मौखिक रूप से पहूँचता है। यह किस काल से शुरू हुआ यह कहना भी मुश्किल है। लोकसाहित्य के रचयिता तो अज्ञात है इसलिए इसके रचनाकाल का ठीक पता नहीं चलता। आज का जो फोकलोर है वह कल इसी रूप में नहीं रहा और आज का फोकलोर कल इसी रूप में रहेगा भी नहीं। यह बिलकुल ही परिवर्तनशील है। लोकसाहित्य की रचना एवं प्रसार के लिए निश्चित नियम नहीं है। परिवर्तन की गति से लोक साहित्य कुछ बातों को स्वीकारता है तथा कुछ बातों का बहिष्कार करता है। हर एक पीढ़ी के प्रचारक उनका व्यक्तित्व उसमें मिलाकर अगली पीढ़ी तक पहूँचाता है। इतना ही नहीं यह परिवर्तन कालानुसार ही नहीं बल्कि देशानुसार भी है। लोकसाहित्य पीढियों से ही नही, देशों से भी गुज़रती है। इसप्रकार लोक साहित्य भूतकाल का प्रतिनिधित्व करता है साथ ही वर्तमानकाल की सशक्त ध्वनि को भी अंकित करता है।

संक्षेप में, लोक साहित्य अत्यधिक समृद्ध है और सरलता, मार्मिकता, सांस्कृतिक चित्रण, हास-परिहास, व्यंग्य-विनोद, जीवन की यथार्थता, चरित्र की आदर्शात्मकता आदि अनेक दृष्टियों से इसका अतुलनीय महत्व है। लोकजीवन की सच्ची, मनोवैज्ञानिक, वास्तविक, सहज एवं अकृत्रिम झाँकी लोकसाहित्य में ही मिलती हैं।

2.7 लोकसाहित्य के प्रकार

मनुष्य की शैशवावस्था से लेकर प्रौढ़ावस्था तक के समस्त जीवन पर लोक-साहित्य का अप्रतिम प्रभाव है खास तौर से ग्रामीण जीवन पर। लोगों

के कार्यकलाप सामाजिक जीवन में विभिन्न रूपों में व्याप्त हैं। लोक-जीवन में इन कार्य कलापों की अभिव्यक्ति स्वाभाविक और प्रभावशील ढंग से होती है। आयु की सीमा में बाँधा हुआ जीवन जिन कार्य कलापों की सृष्टि करता है वे सब हमारे जीवन के ही तो दर्शन हैं। इसलिए लोकसाहित्य का भी मूल जीवन की इन्हीं विविध सरणियों की परिचय सूची बनकर हमारे सामने आता है। इस दृष्टि से श्रीमति सरोजनी रोहतगी[1] ने लोक साहित्य का स्थूल विभाजन इसप्रकार किया है -

1) लोकगीत

2) लोक गाथाएँ

3) लोककथाएँ, लोरियाँ, बुझौल

4) लोक मंच, नौटंकी, रहस नृत्य आदि

5) लोकोक्तियाँ, मुहावरे व पहेली और

6) लोक विश्वास, टोने टटके, ढ़कोसले, व्रत-उपवास अनुष्ठान आदि

लेकिन यह विभाजन उतना उचित नहीं लगता, क्योंकि उन्होंने लोककथाओं के साथ-साथ लोरियों तथा बुझौल को रखा है। लोरियाँ वास्तव में गीत है तथा बुझौल को भी लोकसाहित्य के अन्तर्गत नहीं रखा जा सकता। इसप्रकार इस विभाजन में अनेक कमियाँ हैं।

---

1 सरोजनी रोहतगी - अवधी का लोकसाहित्य - पृ सं 17

डॉ सत्येन्द्र[1] ने लोकसाहित्य के प्रमुखतः दो भेद किये है -

लोकसाहित्य

1 लोकवार्ता साहित्य

2. वाणी विलास या इतर लोक साहित्य

उनके अनुसार लोकवार्ता साहित्य वह साहित्य है, जिसमें किसी समुदाय की लोकवार्ता अभिव्यक्त हुई है अथवा जो स्वयं लोकवार्ता का एक अनुष्ठानिक अंग है। इस क्षेत्र से बाहर का समस्त लोकसाहित्य इतर लोकसाहित्य है। इस समस्त लोकसाहित्य को उन्होंने आगे निम्नलिखित भेदों में विभक्त किया है।[2]

लोकसाहित्य

लोकगीत लोककथा लोककहानी चुटकुले कहावतें पहेलियाँ मंत्र

उन्होंने अन्य दृष्टियों से भी लोकसाहित्य का वर्गीकरण प्रस्तुत किया है।[3]

---

1 डॉ सत्येन्द्र लोकसाहित्य विज्ञान पृ सं 13

2. डॉ कुन्दनलाल उप्रेति (सं) लोकसाहित्य के प्रतिमान पृ सं 20, 21

3. वहीं पृ सं 20, 21

लोकसाहित्य

पुरुषों का साहित्य (पौरुषेय वाङमय)
- गीत साहित्य
- कथाएँ
- गीत कथाएँ
- लोकोक्तियाँ
- मुहावरे
- बुझौवल व ढ़कोसले

स्त्रियों का साहित्य (अपौरुषेय वाङ्मय)
- गीत सभी प्रकार के
- व्रत उपवास की कथाएँ
- पहेलियाँ
- गीत कथाएँ

बच्चों का साहित्य

बालकों का का साहित्य
- गीत
- क्रमसंवर्द्धक कथाएँ
- वार्ताएँ

बलिकाओ का साहित्य
- गीत
- क्रमसंवर्द्धक कथाएँ
- वार्ताएँ

'पद्मावत' में लोकतत्व नामक ग्रन्थ में डॉ रवीन्द्र भ्रमर ने लोकसाहित्य को मुख्यतया तीन वर्गों में विभक्त किया है तथा इसकी अनेक शाखाएँ तथा उपशाखाएँ में बतायी है।[1]

लोकसाहित्य

1 गीत	2 कहानी	3 वार्ता
1 उत्सवों के गीत	1 व्रत उपवास की कथाएँ	1 बुझौवल
2. ऋतुओं के गीत	2. पौराणिक कथाएँ	2 पहेलियाँ
3 पूजा के गीत	3 वीरों की कथाएँ	3 मुहावरे
4 कथानक गीत	4 राजा रानी की कथाएँ	4 लोकोक्तियाँ
5 नाट्य गीत (कोरस)	5 भूत-प्रेत की कहानियाँ	5 गप्पें
6. नृत्य गीत	6. पशु-पक्षियों की कहानियाँ	6 अनुश्रुतियाँ
7 मनोभावाभिव्यंजक व्यक्तिगत सुख-दुःख के गीत	7 उपदेशात्मक कहानियाँ	7 क्रीडालाप
	8. विविध मनोरंजन की कहानियाँ (बच्चों की)	

1 डॉ. रवीन्द्र भ्रमर पद्मावत में लोकतत्व पृ सं 31

डॉ चन्द्र शेखर भट्ट की राय में लोकसाहित्य में जनता की अनुभूतियों का सहज प्रकाशन होता है। यह प्रकाशन अनेक शैलियों द्वारा संभव है। उन शैलियों के आधार पर लोक साहित्य को प्रमुखतया पाँच वर्गों में उन्होंने वर्गीकृत किया है।[1]

1 लोकगीत (Folk songs or Lyrics)
2. लोककथा (Folk Tales)
3 लोक गाथा (Folk Ballads)
4 लोक नाट्य (Folk Drama)
5 प्रकीर्ण साहित्य (Miscellaneous folk literature)

इसके अलावा उन्होंने गेयत्व एवं अगेय के आधार पर भी वर्गीकरण किया है।[2]

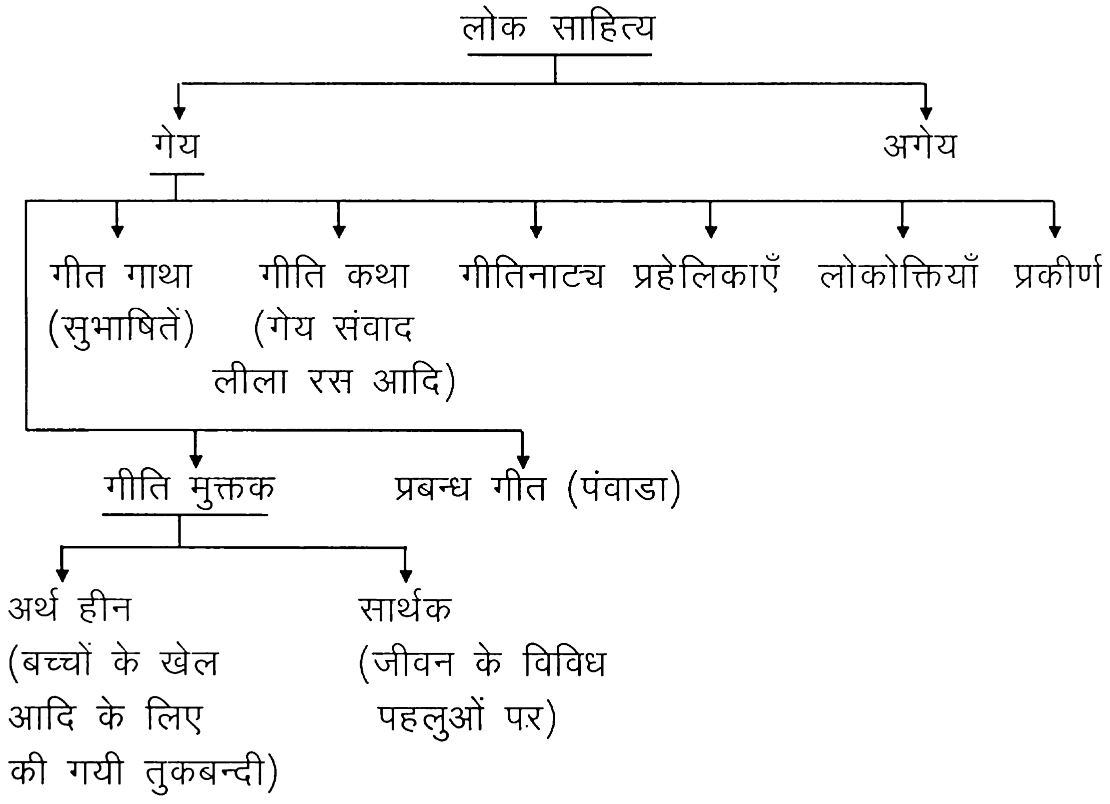

1 डॉ चन्द्रशेखर भट्ट हडौती लोकगीत पृ सं 5
2. डॉ विद्या चौहान लोकसाहित्य पृ. सं 21

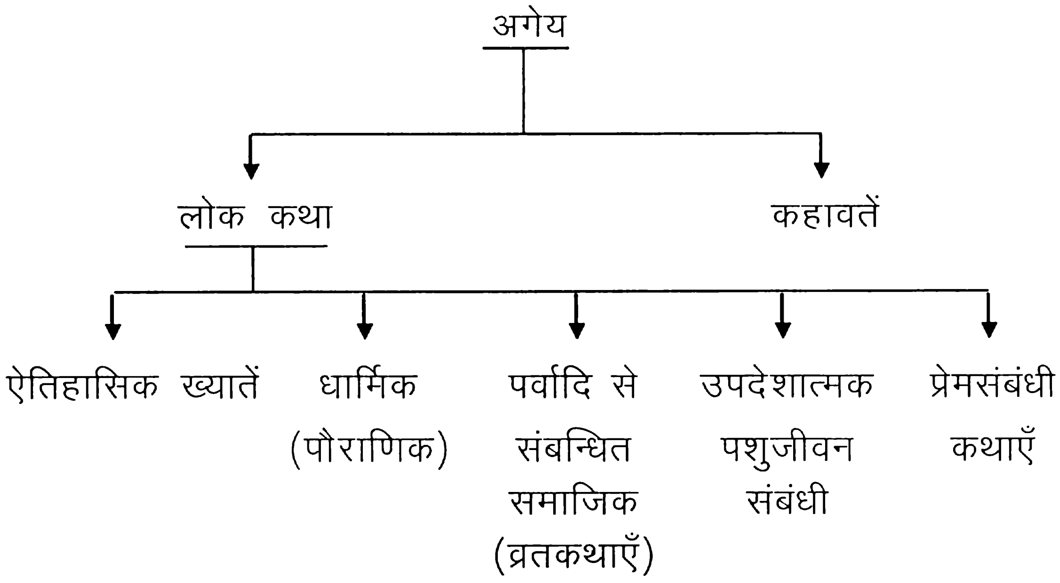

'लोकसाहित्य की भूमिका' में राहुल सांकृत्यायन ने लोकसाहित्य को प्रमुखतया पाँच वर्गों में रखा है।[1]

1) लोक गीत (folk lyrics)

2) लोक गाथा (folk ballads)

3) लोक कथा (folk tales)

4) लोक नाट्य (folk dramma)

5) प्रकीर्ण साहित्य (miscellanius literature)

डॉ विधा चौहान ने भी लोक साहित्य को प्रमुख रूप में पाँच भागों में विभक्त किया है।[2]

1) लोक गीत

2) लोक गाथा

---

1 राहुल सांकृत्यायन - लोक साहित्य की भूमिका पृ. सं. 16

2. डॉ. विद्या चौहान - लोकसाहित्य - पृ. सं. 21

3) लोक कथा

4) लोक नाट्य

5) विविध

उसी प्रकार 'हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास' में श्री कृष्णदेव उपाध्याय ने भी लोकसाहित्य को प्रधानतया पाँच वर्गों में विभक्त किया है।[1]

1) लोक गीत (फोक लिरिक्स)

2) लोक गाथा (फोक बैलेड्स)

3) लोक कथा (फोक टेल्स).

4) लोक नाट्य (फोक ड्रामा)

5) लोक सुभाषित (फोक सेईंग्स)

इसमें लोक सुभाषित के अन्तर्गत मुहावरे, लोकोक्तियाँ, सूक्तियाँ, बच्चों के गीत, पालने के गीत, खेल के गीत आदि सभी प्रकार के विषयों का अन्तर्भाव किया जा सकता है। इन सूक्तियों तथा सुभाषितों का उपयोग ग्रामीण जनता अपने प्रतिदिन के व्यवहार में किया करता है। लोकसाहित्य के इस अंतिम प्रकार को प्रकीर्ण साहित्य की संज्ञा दी जा सकती है।

इसप्रकार अनेक विद्वानों ने विभिन्न दृष्टियों से लोक साहित्य का वर्गीकरण किया है। इनका विवेचन करने से पता चलता है कि अधिकाँश

---

1 डॉ कृष्णदेव उपाध्या हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास - पृ. सं 51

विद्वानों ने लोकसाहित्य को प्रमुखतया पाँच भागों में विभक्त किया है - लोकगीत, लोक गाथा, लोक कथा, लोकनाट्य तथा प्रकीर्ण साहित्य या विविध। विषय की व्यापकता के कारण लोक साहित्य का सम्यक् वर्गीकरण एक समस्या है। इसलिए सुविधा के लिए लोकसाहित्य को इसप्रकार विभक्त करना ही उचित है।

2.8 लोकसाहित्य में बाल साहित्य

किसी भी भाषा के साहित्य का आरंभिक रूप लोक साहित्य के अन्तर्गत ही माना जाता है। इसप्रकार बालसाहित्य का भी मूलस्रोत लोकसाहित्य है। लोकसाहित्य में बच्चों के लिए पृथक् और विशिष्ट साहित्य न होते हुए भी इतना सूक्ष्म अवसर अवश्य था कि रुचियों के आधार पर बडों तथा बच्चों के लिए रचनाओं को अलग अलग किया जा सके।

डॉ. हरिकृष्ण देवसरे की राय में "लोक जीवन में व्याप्त विश्वासों, परम्पराओं तथा अनुभवों ने जिन कहानियों एवं गीतों को जन्म दिया, वे सभी वर्गों को उनकी रुचियों और आयु के अनुसार मनोरंजन और ज्ञान देते रहे हैं। ये विश्वास, परंपराएँ तथा अनुभव जब भी बदले, वहाँ नयी रचना को जन्म मिला। इस तरह गीतों का एक बहुत बडा भण्डार तैयार होता रहा। इस संपत्ति के जिस भाग के अधिकारी बच्चे हैं, वह भी अपने आप में कम महत्वपूर्ण नहीं है।"[1]

डॉ कृष्णदेव उपाध्याय ने लोकसाहित्य की व्यापकता पर टिप्पणी करते हुए बताया है कि "गाँव के बूढे जाडे के दिनों में आग के पास बैठकर कहानियाँ सुनाया करते हैं। बूढी दादियाँ तथा माताएँ बच्चों को सुलाने के लिए

---

1 डॉ. हरिकृष्ण देवसरे हिन्दी बालसाहित्य एक अध्ययन - पृ सं 70

लोरियों तथा छोटी छोटी कथाओं का प्रयोग करती हैं। जनमन के अनुरंजन के लिए गाँवों में स्वाँग या नाटक भी खेले जाते है जिन्हें देखने के लिए दूर से लोग आते हैं। गाँव के लोग अपने दैनिक व्यवहार में सैकडों मुहावरों तथा कहावतों का प्रयोग करते हैं। छोटे छोटे बच्चे खेलते समय अनेक प्रकार के हास्यजनक गीत गाते हैं। ये सभी गीत तथा कथाएँ लोक साहित्य के अन्तर्गत आती हैं। इसप्रकार लोक साहित्य की व्यापकता मानव के जन्म से लेकर मृत्यु तक है तथा यह स्त्री, पुरुष बच्चे, जवान तथा बूढे सभी लोगों की सम्मिलित संपत्ति हैं।"[1] इससे स्पष्ट है कि लोक साहित्य के अन्तर्गत बच्चों की रुचि के अनुसार अनेक चीज़ें मिलती हैं।

चालर्स पार्टर ने समस्त लोक साहित्य को बच्चों से संबद्ध करते हुए यहाँ तक कह दिया है कि "लोक साहित्य तो बच्चों का आनन्द है क्योंकि यह किसी भी जाति के बचपन का काव्यात्मक पाण्डित्य होता है। यह उन बूढों के आनन्द की भी अभिव्यक्ति होता है ज़ो अपने यौवन का नवीनीकरण; जीवनचक्र में आन्तरिक सरलताओं के पुनः संस्कार द्वारा करने में सक्षम होते हैं। यहाँ जीवनचक्र में आन्तरिक सरलताओं के पुनः संस्कार द्वारा यौवन के नवीनीकरण से आशय-उन अनुभवों के आदान-प्रदान से है जो वे बूढे लोग अपने बच्चों को समय समय पर देते रहे है।"[2]

---

1 श्री कृष्णदेव उपाध्याय प्रस्तावना - हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास पृ सं 15

2. Hence, folklore is always the delight of children because it is the poetic wisdom of the childhood of the race. It is also the pleasure of the old who are wise anought to renew their youth by rebaptism in the eternal simplicities in completing the circle of life.

- Charles Francis Potter

' standard dictionary of Folklore, Mythology and Legend, P. 401

डॉ हरिकृष्ण देवसरे ने लोकसाहित्य में जो बच्चों के लिए है उसे अति मनोवैज्ञानिक और संवेदनात्मक बताया है। उन्होंने इसको स्पष्ट करते हुए बताया है कि "बच्चों को अपने अनुभव तथा कहानी सुनाते समय बडों को बच्चों जैसी मनोवृत्ति तथा रुचि का अनुभव अपने आप में करना पड़ता था और तब वे अपनी उस 'अनुभव कथा' का तादात्म्य बालबुद्धि के साथ स्थापित कर पाते थे। बच्चों की ज़िद मानना उनकी इच्छा पूर्ती करना तथा उनके संग उनके ही जैसा साथी बनकर खेलना - भावनाओं के नवीनीकरण के ही द्योतक हैं। यदि ऐसा न हो तो ये क्रियाएँ संभव नहीं हैं। आज भी जो व्यक्ति अपनी इन आन्तरिक सरल भावनाओं का पुनः संस्कार करने में सक्षम नहीं होते वे बच्चों के साथ न तो तादात्म्य स्थापित कर पाते है और न बच्चे ही उनमें कोई रुचि लेते हैं। कहानियों में कौशलपूर्ण दृश्यों का संयोजन, बच्चों के प्रिय पशु-पक्षियों का पात्रीकरण, छोटे-छोटे गीतों में शब्दों की पुनरावृत्ति तथा क्रम संवर्धन आदि ऐसे गुण हैं जो बाल मनोविज्ञान के अनुकूल हैं। खेल के गीतों में बच्चों की निरर्थक भावाभिव्यक्ति लोरियों में लयात्मकता तथा बालक के विकास की कामना आदि ऐसे तत्व जो उन्हें मनोवैज्ञानिक तथा बालोपयोगी बनाते हैं।"[1] इसप्रकार देवसरेजी ने ऐसे समस्त लोक साहित्य को बाल लोकसाहित्य मान लिया है। इस बाल लोक साहित्य को उन्होंने निम्नलिखित प्रकार से वर्गीकृत भी किया है।[2]

---

1 डॉ हरिकृष्ण देवसरे हिन्दी बालसाहित्य एक अध्ययन - पृ सं 70

2. वहीं - पृ सं 71

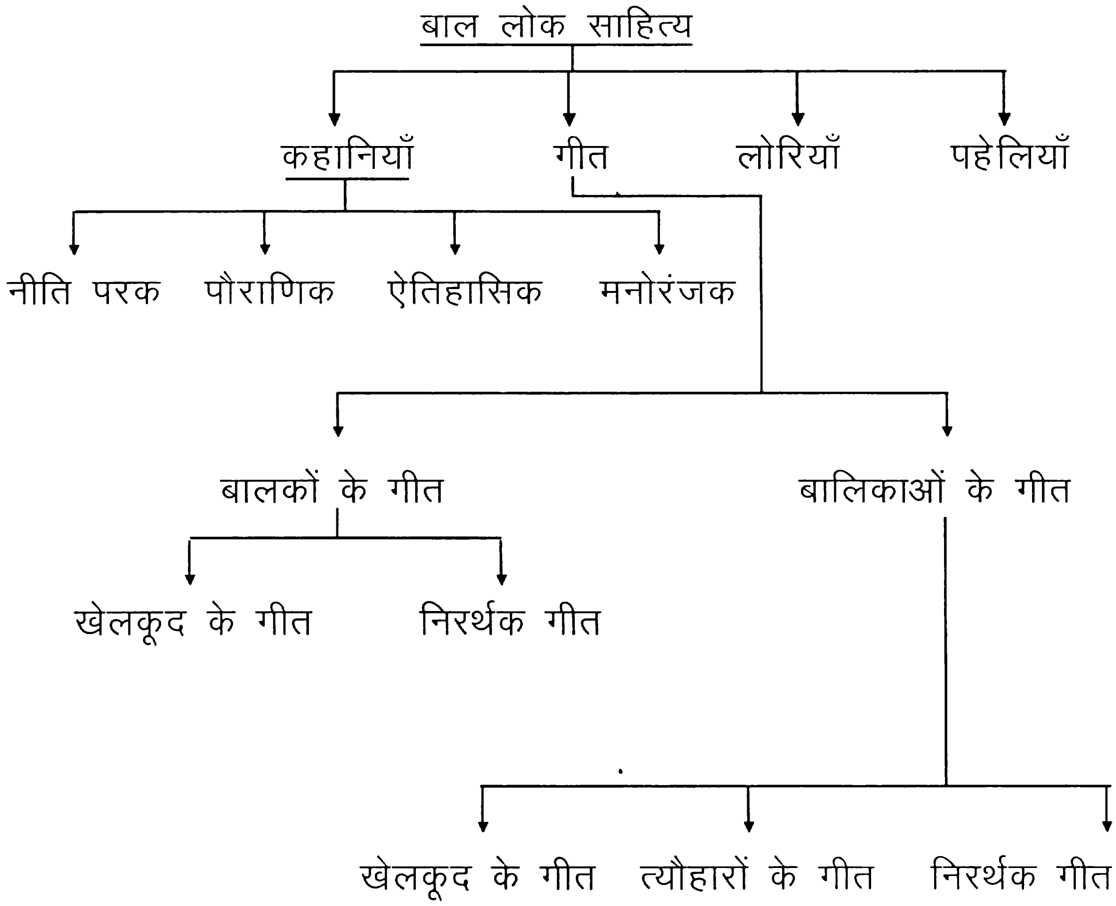

इसप्रकार देवसरे जी न केवल लोकसाहित्य के अन्तर्गत आनेवाले बालसाहित्य को पहचाना है बल्कि उसे बाललोकसाहित्य नाम देकर उसका विशद रूप से विभाजन करने का प्रयास भी किया है।

श्रीमति पूरन सरमा ने लोक साहित्य के अन्तर्गत आनेवाले बाल साहित्य के महत्व को व्यक्त करते हुए बताया है "लोक साहित्य पीढ़ी दर पीढ़ी को जीवन्त बनाता रहा तथा बालक के मानसिक विकास का महत्वपूर्ण कार्य करता रहा। बालक के कुतूहल को बढ़ाने, उसे हँसाने तथा संवेदना जगानेवाले इस लोक साहित्य से व्यक्ति के जीवन मूल्य निर्धारित हुए। मनोवैज्ञानिक प्रभाव का ही तो परिणाम था कि बालक इन रचनाओं से कई मायने में समर्थ हो जाता था।"[1]

---

1 श्रीमति पूरन सरमा लोकसाहित्य में भारतीयता पृ सं 23

इससे स्पष्ट है कि लोक साहित्य में बाल साहित्य का महत्वपूर्ण स्थान है। जो भी लोक समाज के लिए उपयोगी सिद्ध हुआ वही लोक साहित्य की जड़ है। बच्चे समाज का अंग ही नहीं भविष्य समाज का निर्माणकर्ता भी है। आज जब आयातीत संस्कृति हमारे घरों पर शासन करती है, मम्मी ड़ाड़ी जैसे संबोधन घरों में घुस गये हैं औऱ भाई-दद्दा धीरे धीरे बाहर निकले जा रहे हैं तथा बच्चे कंप्यूटर जैसे बनते जा रहे हैं, तब लोक साहित्य का और उसमें निहित बच्चों के साहित्य का अत्यधिक महत्व हैं। यह ज़रूर बच्चों को आयातीत, यांत्रिक, दिखावे की संस्कृति से बाहर लायेगा। आज का व्यक्ति भौतिकता की होड़ और जीवन की यांत्रिकता से पूरी तरह घिर गया है। कुंठित और हताश मानसिकता से व्यस्त उसका खण्डित मन पारिवारिक कलह और टूटन तथा सामाजिकता की उपेक्षा जैसी परिणिति को पोसता रहता है। बिखराव और अलगाव की प्रवृत्ति अधिक हो जाती है और जुडाव की प्रवृत्ति कमज़ोर पड़ जाती है। लोक साहित्य जुडाव की संजीवनी बूटी है तथा सांप्रदायिकता की शक्ति के घातक घाव का उपचार भी है। समाज का भविष्य सुन्दर बनाने के लिए बच्चों को ही पहले बदलना है। क्योंकि वही समाज का भविष्य कर्णाधार है। लोक साहित्य को इसतरह बदलाने की क्षमता है। किसी भी तरह के भेदभाव से मुक्त होने के कारण लोक साहित्य की पाचन शक्ति बहुत तेज़ है।

2.9 निष्कर्ष

लोकसाहित्य लोकजीवन की यथार्थ अभिव्यक्ति है। वह लोकसंस्कृति का एक अंग भी है। प्रत्येक देश के साहित्य का आरंभिक रूप लोससाहित्य में ही मिलता है। लोकसाहित्य की प्रासंगिकता इसमें हैं कि यह हमें व्यावहारिक ज्ञान देता है। लोक साहित्य मुख्य रूप से अलिखित होता है तथा यह लोककंठ में जीवित रहता है। मौखिक होने के कारण लोकसाहित्य परिवर्तनशील है। लोकसाहित्य वास्तव में व्यक्ति विशेष क़ी कृति नहीं बल्कि यह समाज की ही अभिव्यक्ति है।

हिन्दी और मलयालम में लोक साहित्य अत्यन्त समृद्ध है। हिन्दी लोक साहित्य के अन्तर्गत खडीबोली, ब्रज, भोजपुरी, बुन्देलखण्डी, मालवी, कुमाऊँनी, अवधी, निमाड़ी आदि अनेक जनभाषाओं के साहित्य आते है। क्योंकि हिन्दी प्रदेश बहुत विशाल है। उपर्युक्त भाषाएँ हिन्दी प्रवेश की विभिन्न जनभाषाएँ हैं। इसलिए हिन्दी लोक साहित्य बहुत विशाल तथा बहुत प्राचीन भी है।

हिन्दी तथा मलयालम के लोक साहित्य में आचरण नियम नैतिक तथा सामाजिक मूल्य सम्बन्धी जानकारियाँ आदि लोक साहित्य के माध्यम से मिलते हैं। हिन्दी की तुलना में मलयालम लोक साहित्य में समाज में प्रचलित कुरीतियों का चित्रण अधिक तीक्ष्ण रूप से अंकित है। कहीं-कहीं इसमें सामाजिक व्यवस्था पर तीखा व्यंग्य भी है।

हिन्दी और मलयालम के लोक साहित्य में बच्चों के अनुरूप अनेक गीत, कहानियाँ और पहेलियाँ प्रचलित हैं जो आज भी बच्चों को मनोरंजन के साथ ज्ञान भी देते हैं।

अध्याय - तीन

हिन्दी और मलयालम के लोकगीतात्मक बालगीत

मेनोन का 'शैशवचित्रङ्ङळ्' (शैशव तस्वीरें), कुञ्ञुण्णिमाष के 'उलक्कयुम् इरट्टा मरणवुम्' (मूसला और दोहरा मरण), 'वार्षिकोत्सवनाटकङ्ङल' (वार्षिकोत्सव नाटकें), एन कृष्णपिल्लै के 'चेंकोलुम् मरवुरियुम्' (राजदण्ड और वत्कल), ए.पी.पी. नंपूतिरी के 'कुषञ्ञुवीणा पूमोट्टु' (मुरझाई हुई कलियाँ) 'काबूलिवाला' जॉन टी.वी. का 'वळर्त्तुमक्कळ्' (पालन् संथानें), सी. वासुदेवन का 'कोट्टुम् चिरियुम्' (बाजा और हँसी), 'निषलुम् वेळिच्चवुम्' (छाया और रोशनी) आदि भी प्रसिद्ध है।

सृजनात्मक बालसाहित्य के समान सूचनाप्रधान एवं लोकप्रिय वैज्ञानिक साहित्य भी मलयालम में बालसाहित्य के क्षेत्र में रचा गया। वह कहीं अधिक गंभीर भी रहा है। सूचना-प्रधान में देश-विदेश का यात्रावर्णन, ऐतिहासिक स्थानों, दृश्यों का चित्रण, विभिन्न विषयों पंर फीचर जैसे लेख, छोटे निबन्ध आदि शामिल हैं। इस दिशा में अनेक लोगों का योगदान रहा है। उनमें श्री पी.टी. भास्करप्पणिक्कर का नाम अग्रणी है। उनके और मित्रों के सतत प्रयत्न से समस्त केरल शास्त्र साहित्य परिषद् की स्थापना की गयी। इससे 800 से अधिक वैज्ञानिक बालसाहित्य ग्रन्थ प्रकाशित किये हैं। 'यूरीका' इसकी बालपत्रिका है। साक्षरता के प्रचार में इसका योगदान भी प्रसिद्ध हैं। इसके नेतृत्व में बच्चों के लिए खास तौर पर अनेक कार्यक्रम चल रहे हैं जिसमें विज्ञानपरीक्षाएँ, बाल कलोत्सव आदि बहुत ही प्रसिद्ध हैं।

श्री भास्करप्पणिक्कर के नेतृत्व में प्रभात बुक हाउस द्वारा प्रकाशित 'बालविज्ञानकोशम्' बालकों के लिए रचा गया मलयालम का पहला 'विश्व-विज्ञानकोश' हैं। इसमें भूगोलविज्ञान भूमि में जीवन का उद्भव और विकास,

संस्कृति के विभिन्न सीढ़ियाँ, इतिहास, कला, साहित्य आदि विषयों के सम्बन्ध में कई जानकारियाँ समाहित हैं। इसप्रकार वैज्ञानिक साहित्य पर लिखनेवाले अन्य लेखकों में श्री केशवन वेल्लिकुलङ्ङरा डॉ. सी.जी. शान्तकुमार, के.के वासु, तेक्किनकाड जोसफ, के.एम. माथ्यू, कुमारपुरम देवदास आदि प्रमुख हैं। बालसाहित्य इन्स्टिट्यूट, समस्त केरल शास्त्र साहित्य परिषद्, राज्य शिक्षा संस्थान, कैरली चिलड्रन्स बुक ट्रस्ट, स्टेप्स स्टेट इन्स्टिट्यूट आफ चिल्ड्रन्स लिटरेचर, साहित्य प्रवर्तक सहकारी संघ आदि संस्थाओं ने बालसाहित्य को प्रोत्साहन दिया। बाल-साहित्य की बढ़ती लोकप्रियता को देखते हुए सारे प्रमुख प्रकाशक बढ़िया साज-सज्जा की बालकृतियाँ प्रकाशित करते रहते हैं।

1.5.2.5 सरकारी, गैर सरकारी संस्थाएँ तथा बालपत्रिकाएँ

कई सरकारी और निजी संस्थाएँ मलयालम के बालसाहित्य को पुरस्कार से प्रोत्साहन देती आयी है। इन संस्थाओं में कुछ हैं - केरल साहित्य अकादमी, साहित्यप्रवर्तक सहकारी संघ, कैरली चिल्ड्रन्स ट्रस्ट, भीमा ट्रस्ट, एनसी ई आर टी, केरल बाल साहित्य संस्थान आदि।

मलयालम बालसाहित्य की एक प्रमुख धारा के रूप में बालपत्रिकाओं का महत्वपूर्ण स्थान हैं। वर्षों पहले एकमात्र पत्रिका 'बालन' थी। किन्तु बाद में प्रसिद्ध समाचार पत्रों और साप्ताहिक पत्रिकाओं में बालक स्तंभ प्रारंभ किया तो बहुत ही अच्छी प्रतिक्रिया मिली। इससे प्रोत्साहित होकर कुछ पत्रिकाओं ने अलग से बाल-पत्रिकाएँ प्रारंभ की। मलयालम में बाल-पत्रिका का प्रारंभ करने की प्रेरणा वास्तव में तमिल की 'अंबिलिमामन्' से मिली। अंबिलिमामन का मलयालम संस्करण 'अम्बिलियम्मावन्' नाम से चल पड़ा। मलयालम की प्रसिद्ध

बाल पत्रिकाओं में 'यूरीक्का' 'शास्त्रकेरलम्' 'बालभूमि' 'बालरमा' 'पूम्पाट्टा' 'बालमंगलम्' 'कुट्टिकळुडे दीपिका' 'मुत्तश्शि' 'बाल तारा' 'उण्णिक्कुट्टन' 'मण्डूस' 'कलिक्कुडुक्का' 'तत्तम्मा' 'बोबनुम् मोलियुम्' आदि प्रसिद्ध हैं। पहले 'लालु लीला' 'मलरवाडी' 'काट्टुमैना' 'तेनरुवि' 'चिलम्पोलि' आदि पत्रिकाएँ थीं जो अब नहीं है। इसके अलावा 'क्लासिक्स' 'अमरचित्रकथा' 'कॉमिक्स' आदि भी सचित्र आते हैं।

1.5.2.6 समकालीन मलयालम बालसाहित्य

मलयालम बालसाहित्य के समकालीन लेखकों में सिप्पी पल्लिप्पुरम का नाम मशहूर हैं। उन्होंने लोकगीतों से बालगीतों को चुनकर संकलित करके बच्चों के सामने प्रस्तुत किया। उनकी 'ऊञ्ञालो चक्कियम्मा' (झूला और चक्कियम्मा) नामक पुस्तक इसका उदाहरण हैं। इसके अलावा कुञ्ञुण्णि (कडम्कथकळ्), ए. बी.वी. काविल्पाड (101 नाटन पाट्टुकल), सव्यसाची (पषम्चोल कथकल), जोबि जोस (1001 कटमकथकल), एस मोहनचन्द्रन (नाडन पाट्टुकल, भाग-1 भाग-2), शंकरनारायणन् पी.ऐ. (एन्तुत्तरम्?), सन्तोष कुमार के.सी. (उण्णिकळ्क्कु कडम्कथकळ्), विश्वंभरन किळिमानूर (नम्मुडे नाडन् पाट्टुकळ्) आदि ने भी इस प्रकार लोक से सामग्रियाँ चुनकर बच्चों के सामने प्रस्तुत किया।

मलयालम के अन्य समकालीन लेखकों में एवूर् परमेश्वरन, शूरनाटु रवि, मलयत्त अप्पुण्णि, मुहम्मा रमणन, डॉ. विजयन, वी.बी. मुहम्मद, किळिरूर राधाकृष्णन, विमलामेनोन, सजिनी पवित्रन, बाबु भरद्वाज, चवरा के.एस पिल्लै,

टी.के.डी. मुषप्पिलङ्ङाड, के श्रीकुमार, राधिका सी. नायर, राधाकृष्णन अडुत्तिला, मीनाड कृष्णनकुट्टि, पिंडाणि एन.वी. पिल्लै, गोतुरुत्त जोस, वेणु वारियत्त, पी.पी.के पोतुवाल, डी. आर्यन कण्णनूर, के.एस. रामन, एन.पी. हाफिस मुहम्मद, के.वी. बेबी, ए.के कुट्टिप्पुषा, प्रभाकरन पषश्शि, चोप्पाड भास्करन नायर, जी. बालचन्द्रन, उत्तमन पप्पिनिश्शेरी आदि प्रमुख है।

1.6 निष्कर्ष

हिन्दी तथा मलयालम बाल साहित्य को आधार भूमि के रूप में संस्कृत के गौरव ग्रन्थों की संपदा मिली और पोषण के रूप में लोक संस्कृति का जीवन रस भी प्राप्त हुआ। दोनों भाषाओं के लोक साहित्य में बच्चों के लिए पृथक रूप में बालसाहित्य नाम से कुछ न होते हुए भी बच्चों के अनुकूल अनेक गीत, कहानियाँ, पहेलियाँ, आदि बहुत मिलते हैं। हिन्दी तथा मलयालम के प्रमुख आलोचकों ने बालसाहित्य का स्कूली साहित्य से भिन्न होकर अलग अस्तित्व बताया है। बाल साहित्य की विशेषता भी यह है कि यह स्कूली साहित्य के समान एक परिनिष्ठित योजना एवं पाठ्य क्रम के अन्तर्गत तैयार किया गया नहीं है और इसमें बच्चों की रुचि के अनुसार पुस्तकों का चयन किया जाता है।

यद्यपि बालसाहित्य की परंपरा प्राचीन है तो भी बाल साहित्य नामक खास शाखा की उपलब्धियों एवं संभावनाओं पर प्राचीनकाल से अधिक ध्यान नहीं दिया गया था। बच्चों के प्रिय गीत, कविताएँ, कहानियाँ, पहेलियाँ आदि अवश्य मौजूद रहे लेकिन हिन्दी तथा मलयालम में उन्नीसवीं सदी में ही इस विषय पर विद्वानों और सृजनशील लेखकों ने गंभीरतापूर्वक विचार किया।

हिन्दी तथा मलयालम में सबसे पहले पाठ्य पुस्तकों के लिए बाल साहित्य रचनाएँ होने लगीं। दोनों भाषाओं में बालसाहित्य का विकास प्रवृत्तिगत दृष्टि से समान रूप में हुआ हैं। लेकिन हिन्दी की तुलना में मलयालम में बालसाहित्य रचनाएँ गणना में कम हैं। इसका मूल कारण हिन्दी भाषी प्रदेश का क्षेत्र विस्तार हैं। आजकल हिन्दी और मलयालम में बहुत अधिक रचनाएँ निकल रही हैं, पर हिन्दी की तुलना में मलयालम में मौलिक रचनाएँ कम हैं, तथा पुनराविष्कार ही अधिक हो रहे हैं। आज अनेक प्रतिष्ठित साहित्यकार मलयालम बालसाहित्य में रचनाएँ कर रहे हैं लेकिन हिन्दी बालसाहित्य के समान वह उतना विकसित नहीं है। यह बात निर्विवाद है कि मानव समाज के विकास में बालसाहित्य के योगदान को इनकार नहीं किया जा सकता और इसकी महत्ता बढती जा रही है।

अध्याय - दो

हिन्दी और मलयालम का लोकसाहित्य

अध्याय दो

हिन्दी और मलयालम का लोकसाहित्य

2.0 प्रस्तावना

प्रत्येक देश के साहित्य का प्रारंभिक रूप लोकसाहित्य में ढूँढा जा सकता है। आज हमारा साहित्य एवं समाज दोनों अपने विकास की चरम स्थिति को ढूँढना चाहते हैं। तब शंका उठना स्वाभाविक है कि हम लोकसाहित्य जैसे प्राचीन साहित्य को क्यों अपना विषय बनायें। वास्तविक बात तो यह है कि समकालीन साहित्य की जडें उस प्राचीन साहित्य में ही विद्यमान है जो आज भी मज़बूत है। डॉ. राहुल सांकृत्यायन ने हिन्दी साहित्य के बृहत् इतिहास की योजना के संपादकीय वक्तव्य में इस बात की पुष्टि देते हुए लिखा है कि "किसी भी देश के शिष्ट साहित्य से पूर्णतया परिचित होने के लिए उसके लोक साहित्य का अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है। शिष्ट साहित्य का लोकसाहित्य से घनिष्ठ सम्बन्ध है। वास्तविक बात तो यह है कि शिष्ट साहित्य लोकसाहित्य का ही विकसित, संस्कृत तथा परिमार्जित रूप है।[1] इसप्रकार साहित्य एवं संस्कृति को परिमार्जित करते-करते कहीं कहीं इसमें कृत्रिमता और दिखावा अधिक आ गये हैं। इससे साहित्य कम जीवन्त एवं अधिक जड बन जाता है। साहित्य को इस जड़ता से मुक्त करने के लिए भी लोक साहित्य का अध्ययन एवं पहचान आवश्यक है।

---

1 हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास संपादकीय वक्तव्य डॉ राहुल सांकृत्यायन - पृ.सं 13

लोक साहित्य हर काल में प्रासंगिक और समीचीन रहा है। आज भले ही हमारे जीवन में परिवर्तन आ गया है, लेकिन ज्ञान देने की परंपरा का यह माध्यम आज भी प्रभावोत्पादक है। लोकसाहित्य की परंपरा का पुनर्जीवन हमें हमारे संस्कारों से अभी भी जोडने में सक्षम है तथा समसामयिक जीवन में प्रासंगिक भी है। आज हम उपभोक्तावादी संस्कृति के दास बन गये हैं जो लोक साहित्य से कटने का ही दुष्परिणाम है।

2.1 'लोक' शब्द की उत्पत्ति और व्याख्या हिन्दी में

'लोक' एवं 'साहित्य' मिलकर लोकसाहित्य बन गया है। अंग्रेज़ी में यह 'फोकलिटरेचर' है। अंग्रेज़ी 'फोक' शब्द के लिए हिन्दी में अधिकाँश विद्वानों ने 'लोक' शब्द का ही प्रयोग किया है।

डॉ कृष्णदेव उपाध्याय ने पुराणों, उपनिषदों एवं प्राचीन ग्रन्थों का चयन करके 'लोक' शब्द की व्याख्या इसप्रकार की है - "लोक शब्द संस्कृत के 'लोकृ दर्शने' धातु से प्रत्यय करने पर निष्पन्न हुआ है। इस धातु का अर्थ देखना' होता है जिसका लट् लकार में अन्यपुरुष एकवचन का रूप 'लोकते' हैं। अतः लोक शब्द का अर्थ हुआ 'देखनेवाला'। अतः वह समस्त जनसमुदाय जो इस कार्य को करता है 'लोक' कहलाएगा। 'लोक' शब्द अत्यन्त प्राचीन है। साधारण जनता के अर्थ में इसका प्रयोग ऋग्वेद में अनेक स्थानों पर किया गया है। ऋग्वेद में 'लोक' शब्द के लिए 'जन' का भी प्रयोग उपलब्ध होता है। ऋग्वेद के सुप्रसिद्ध पुरुष सूक्त में लोक शब्द का व्यवहार जीव तथा स्थान दोनों अर्थों में किया गया है। उपनिषदों में अनेक स्थानों में 'लोक' शब्द व्यवहृत

हुआ है। जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण में यथार्थ ही कहा गया है कि यह लोक अनेक प्रकार से फैला हुआ है। प्रत्येक वस्तु में यह प्रभूत या व्याप्त है।"[1]

महावैयाकरण पाणिनी ने अपने अष्टध्यायी में 'लोक' तथा 'सर्वलोक' शब्दों का उल्लेख किया है तथा इससे ठञ् प्रत्यय करने पर 'लौकिक' तथा 'सार्व लौकिक' शब्दों की निष्पत्ति की है। भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र के चौदहवीं अध्याय में अनेक नाट्य धर्मी तथा लोक धर्मी प्रवृत्तियों का उल्लेख किया है। भगवत् गीता में 'लोक' तथा 'लोक संग्रह' आदि शब्दों का प्रयोग अनेक स्थानों पर किया गया है। भगवान् श्रीकृष्ण ने 'लोक संग्रह' पर बडा बल दिया है। कहने की आवश्यकता नहीं कि यहाँ लोक संग्रह का अर्थ आदर्श है।"[2] इसप्रकार श्री कृष्णदेव उपाध्याय के अनुसार प्राचीन ग्रन्थों में 'लोक' शब्द आम जनता के लिए प्रयुक्त है।

डॉ विद्या चौहान ने लोक साहित्य नामक अपने पुस्तक में वेदों और उपनिषदों से उद्धृत करके 'लोक' शब्द का अर्थ 'भुवन' कहा है। उनके अनुसार "भारत में आर्यों के आगमन के उपरान्त आर्य एवं आर्येतर जातियों के मध्य 'वेद' वेदेतर स्थिति का आविर्भाव हुआ। उस दशा में लोक शब्द का प्रयोग 'वेदेतर' तथा 'शास्त्रेतर' के लिए होने लगा। यहाँ 'लोक' शब्द वेद विरोधी अर्थ का सूचक है। किन्तु आगे चलकर 'लोक' शब्द वेदेतर संस्कृति की संकुचित सीमा तोड़कर ऊँचा उठ गया। वेद के तुल्य ही यह शब्द अपने स्वतंत्र

---

1 डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय - हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास पृ सं 1

2. वहीं पृ. सं 2

अस्तित्व का अधिकारी हो गया। गीता में 'अतोऽस्ति लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः' के रूप में लोकशास्त्र तथा लौकिक नियमाचारों का महत्व स्थापित हो गया। सम्राट अशोक के शिलालेखों में 'लोक' शब्द का प्रयोग समस्त प्रयोजनों के लिए हुआ है। बौद्ध धर्म के विकास के साथ मानव भावना का महत्व बढ़ने लगा और 'लोक' शब्द मानवीय उत्कृष्टताओं का बोधक बन गया। प्राकृत एवं अपभ्रंश में प्रयुक्त 'लोकजता' (लोक यात्रा) एवं 'लोकप्पाय' (लोक प्रवाद) शब्द भी लौकिक आचारों का महत्व प्रकट करते हैं। तुलसीदास जी ने लोक और वेद की भेदात्मक स्थिति स्पष्ट की है।"[1] इसप्रकार 'भुवन' अर्थ को लेकर 'लोक' शब्द की उत्पत्ति के बारे में बताते हुए उसने 'लोक' शब्द की व्याख्या अपनी ओर से यों दी है कि "यह लोक अनेक रूपों में परिव्याप्त है। अखिल संसार के समस्त मानव समूहों, मानवीय क्रियाकलापों तथा विचार परम्पराओं के रूप में लोक की अवस्थिति है। देश-काल की सीमाओं से सर्वथा अनवरुद्ध यह सामाजिक विकास की एक प्रगतिशील चेतना है। इसप्रकार लोक का अर्थ सरल स्वाभाविक मानव समाज है, जिसकी भावनाओं, विचारों परम्पराओं, क्रियाओं एवं मान्यताओं में वास्तविक कल्याण के तत्व विद्यमान रहते हैं।"[2]

श्री श्रीरामलाल के अनुसार "लोक शब्द अत्यन्त व्यापक और सम है, यह ब्रह्म की ही तरह अनन्त, अक्षर और असीम है, जीवन का प्रतीक और जन का पर्याय हैं।"[3]

---

1 विद्या चौहान - लोक साहित्य - पृ. सं 11

2. विद्या चौहान - लोक साहित्य पृ. सं. 11

3. श्रीरामलाल भारतीय लोक संस्कृति की अध्यात्म भूमि - पृ सं 86

श्री मार्कण्डेय के अनुसार "स्पष्टतः 'लोक' शब्द को हम अंग्रेज़ी के 'फोक' शब्द के अर्थ में लेते है, जिसका भावानुगत अर्थ असल में जनसमुदाय संस्कृति से कुछ दूर हो। समस्त मानव प्रकृति की एकरूपता ही आदिम मानव की मूल प्रवृत्ति थी। एक सा कार्य, एक सी संवेदनाएँ, एक सी चेष्टाएँ, एक से रागात्मक संबंध इत्यादि उसकी विशेषताएँ थी। वस्तुतः 'लोक' शब्द की आदिम मर्यादा का ही फल है कि आज भी उसकी व्यापकता का बोध रह गया है। लेकिन सभ्यता और संस्कृति के विकास के कारण आदिम मानवता में एक ऐसा वर्ग बनता गया जो 'लोक' या 'फोक' से अंपने को अलग समझने लगा। वैसे लोकगीत (folk song) जर्मन के 'वोकसलैड' (vokslied) का अपभ्रंश माना जाता है, जिससे भी जनता के समग्र सौन्दर्यमूलक भावों का प्रतिपादन होता है। यहाँ भी 'लोक' शब्द का प्रयोग जनता की समग्रता का ही सूचक है।"[1]

श्री भोलानाथ तिवारी ने 'फोक' शब्द की व्युत्पत्ति के बारे में डॉ बर्कर की परिभाषा को स्वीकार करते हुए बताया है कि "फोक शब्द ऐँग्लो सैक्सन शब्द 'फोक' (folk) का विकसित रूप है। जर्मन में यह 'volc' हो गया है। डॉ बर्कर ने 'फोक' शब्द को समझाते हुए लिखा है कि 'फोक' किसी सभ्यता से दूर रहनेवाली पूरी जाति का बोध होता है या यदि इसका विस्तृत अर्थ किया जाय तो सुसंस्कृत राष्ट्र के सभी लोग इस नाम से पुकारे जाते है।"[1]

'फोक' शब्द के लिए उन्होंने आगे 'लोक' 'जन' 'ग्राम' तीन शब्दों को लिया है जिनमें 'लोक' शंब्द को अधिक उपयुक्त माना है। उनके

---

1 श्री मार्कण्डेय लोक कला का उदय - पृ. सं. 353

अनुसार 'ग्राम' शब्द 'लोक' की विशाल भावना को सीमित बना देता है। यदि पतला आवरण उठाकर देखें तो नगर में भी इसका राज्य हैं और इसप्रकार ग्राम और पुर का इसमें भेद नहीं है। 'जन' शब्द''जन्' धातु से बना है जिसका अर्थ 'उत्पन्न होना' होता है। इसप्रकार इसमें सभी उत्पन्नवाले सम्मिलित हैं। साथ ही वेदों में सामान्य जनता के अर्थ में यह शब्द प्रयुक्त भी हुआ है।

'लोक' शब्द की व्युत्पत्ति को लेकर बहुत से अन्य शब्दों की भाँति पाणिनीय विद्वानों और पश्चिम के भाषा-विज्ञान विशारदों के बीच मतभेद है। एक वर्ग इसका सम्बन्ध 'लोक दर्शने' से मानता है तो दूसरा रुक या रोक् (चमकना) से। प्रयोगतः इस शब्द का अर्थ मिलता है 'स्थान' और इस दृष्टि से ऋग्वेद में यह प्रयुक्त हुआ है। इसप्रकार 'ग्राम' शब्द सीमित है, 'जन' अपेक्षया 'फोक' के निकट है पर 'लोक' शब्द में शुद्ध फोक की भावना है और शास्त्रेतर ज्ञान की अर्थ में भी उसका प्रयोग चल रहा है; अतः वही 'फोक' का समीचीन पर्याय है।[1]

लेकिन 'फोकलोर' की व्याख्या करते समय श्री भोलानाथ तिवारी ने फोक शब्द का अर्थ 'असंस्कृत लोग' माना है जो उतना उपयुक्त नहीं लगता। अधिकाँश लोग गाँव में रहनेवाले को असंस्कृत और नगर में जन्मे, पले आधुनिक शिक्षा स्वीकृत लोगों को सुसंस्कृत कहते है। वास्तव में दोनों संस्कृत ही है। दोनों की अपनी-अपनी संस्कृतियाँ हैं। यह सच है कि उनके द्वारा असंस्कृत माननेवाले उन गाँवारू लोगों की प्राचीन संस्कृति में अनेक कुप्रदाएँ

---

1 भोलानाथ तिवारी लोकायन और लोकसाहित्य - पृ. सं. 421

एवं अनाचार देखने को मिलते हैं जो सामाजिक विकास के साथ-साथ कम होते आये हैं। लेकिन उनकी संस्कृति में अनेक गुण भी देखने को मिलते हैं। ये गुण भी आज कम होते जा रहे हैं। हमें इन अच्छाईयों को ढूँढना तथा उसका प्रसार करना चाहिए जो आज के अपने को सुसंस्कृत माननेवाला, दिखावा संस्कृति के लोगों को अपनाने योग्य हैं। इसप्रकार यह बात स्पष्ट है कि 'लोक' माने असंस्कृत लोग नहीं है तथा लोक साहित्य असंस्कृत लोगों का साहित्य नहीं है। इस दृष्टि से डॉ. हज़ारी प्रसाद द्विवेदी की 'लोक' संबंधी परिभाषा अधिक उपयुक्त लगती है।

डॉ हज़ारीप्रसाद द्विवेदी ने 'लोक' के सम्बन्ध में अपना विचार प्रकट करते हुए लिखा है कि 'लोक' शब्द का अर्थ 'जनपद' या 'ग्राम्य' नहीं है बल्कि नगरों और गाँवों में फैली हुई वह समूची जनता है जिनके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियाँ नहीं है। ये लोग नगर में परिष्कृत, रुचि संपन्न तथा सुसंस्कृत समझे जानेवाले लोगों की अपेक्षा अधिक सरल और अकृत्रिम जीवन के अभ्यस्त होते हैं और परिष्कृत रुचिवाले लोगों की समूची विलासित और सुकुमारता को जीवित रखने के लिए जो भी वस्तुएँ आवश्यक होती है उनको उत्पन्न करते है।[1]

श्री दिनेश्वर प्रसाद ने भी इस बात की पुष्टि करते हुए बताया है कि "कृषक वर्ग या गाँवों और नगरों में रहनेवाला अल्प-संस्कृत, अशिक्षित या अद्‌र्धशिक्षित समुदाय ही लोक नहीं है। 'लोक' क्षेत्र विशेष का पूरा जन

1 डॉ हज़ारी प्रसाद द्विवेदी - जानपद वर्ष-1 पृ. सं. 65 अंक-1

समुदाय है। यह विभिन्न सांस्कृतिक आर्थिक इकाईयों की वह समष्टि है जिसे समस्त जनता या समूचा जनसमुदाय कहा जाता है और जिसके अन्तर्गत शिक्षित और अशिक्षित तथा साधारण और सर्वसाधारण सभी प्रकार के लोग आ जाते हैं।[1]

इसप्रकार प्राचीन ग्रन्थों में 'लोक' शब्द का प्रयोग आम जनता तथा भुवन आदि के लिए किया है और अधिकाँश आधुनिक आलोचकों ने इसका विशाल अर्थ देने का प्रयास किया है। पैनी दृष्टि से परखने पर यह बात स्ष्ट होता है कि 'लोक' शब्द के अन्तर्गत वह विशेष जन विभाग आता है जो सहज, अकृत्रिम, सरल एवं परिश्रमी हैं। उनका पुस्तकज्ञान नहीं था इसलिए वे अनुभव से जानकारियाँ प्राप्त की और अगले पीढियों को मौखिकी रूप से अपने अनुभवों को प्रदान किया। वे प्रकृति के सबसे निकट थी, ज़मीन के निकट थी इसलिए उनके अनुभव आज भी जीवन्त है, सहज एवं सीधा है।

2.2 'फोक' का अर्थ और व्याख्या मलयालम में

मलयालम लोक साहित्य के क्षेत्र में शोध या अध्ययन अभी तक ज़्यादा नहीं हुआ है। बहुत कम विद्वानों ने ही इस क्षेत्र में कार्य किया है। उनमें भी अधिकाँश विद्वानों ने 'फोक' शब्द के लिए मलयालम में भी 'फोक' शब्द का ही प्रयोग किया है।

श्री कावालम् नारायणप्पणिक्कर, श्री एम.वी. विष्णु नंबूतिरि जैसे कुछ आलोचक 'फोक' शब्द के पर्यायवाची शब्द के रूप में 'नाड़ोड़ि' शब्द का

1 दिनेश्वर प्रसाद लोकसाहित्य और संस्कृति पृ. सं. 154

प्रयोग किया है। श्री. शिवशंकरपिल्लै जैसे कुछ आलोचकों ने लोक के लिए 'नाडन्' शब्द का प्रयोग किया है। ऐसा अंनुमान लगाया जा सकता है कि 'नाडोडि' तथा 'नाडन' शब्दों का उद्भव 'नाडु' शब्द से है। 'नाडु' शब्द का अर्थ प्रत्येक प्रदेश, गाँव, जनपद आदि है। प्रत्येक 'नाडु' के व्यक्ति के लिए मलयालम में 'नाट्टुकारन' शब्द का प्रयोग मिलता है।

मलयालम की "शब्दावली" में 'नाडु' शब्द का अर्थ प्रदेश दिया गया है। 'नाडोडि' शब्द का प्रयोग प्रत्येक प्रदेशवाले, आम मानव आदि के लिए प्रयुक्त है। उसमें अपरिष्कृत लोगों के लिए भी 'नाडन्' शब्द का प्रयोग मिलता है।[1] डॉ. हेरमन गुंडर्ट के कोश में भी 'नाडु' शब्द का अर्थ प्रदेश है। नाडोडि भाषा के लिए उन्होंने प्रचलित भाषा-अर्थ दिया है।[2] शायद उस समय आम लोगों के बीच प्रचलित भाषा नाडोड़ि भाषा रही है।

मलयालम में अब नाडोडि शब्द का प्रयोग सामान्य रूप में उस जनविभाग के लिए है जो हमेशा चलते फिरते हैं, कही टिकता नहीं। नाडोडि लोग एक प्रदेश से दूसरी प्रदेश में और वहाँ से अन्य एक प्रदेश में गमन करते रहते है। इसप्रकार देखा जाय तो 'नाडोडि' शब्द के प्रयोग से 'फोक' शब्द का अर्थ एक प्रत्येक जनविभाग में सीमित रह जायेगा। 'नाडु' शब्द से भी एक विशेष प्रदेश का ही भाव बोध होता है। इस दृष्टि से 'नाडन' शब्द से 'फोक' की विशाल भावना व्यक्त नहीं होती।

---

1 शब्द तारावली श्रीकण्ठेश्वरम् जी पद्मनाभ पिल्लै पृ. सं 1068

2. गुंड़र्ट निखण्डु डॉ हेरमन गुंडर्ट पृ. सं. 514

मलयालम के प्रसिद्ध लोकसाहित्यकार राघवन पय्यनाडु की राय में 'फोक' वह जनसमूह है जो रूढ़ी ग्रामप्रदेश के है और नागरिक नहीं है।[1] मलयालम में फोकलोर की व्याप्ति को समेटने योग्य दूसरा शब्द नहीं है। कुछ आलोचक फोकलोर के लिए 'जनजींवित पठनम्' 'नाडोडिविज्ञानीयम्' आदि शब्दों का प्रयोग किया है, लेकिन ये भी उतना प्रचलित नहीं है। श्री पी.के शिवशंकरपिल्लै एछ.के संतोष आदि आलोचकों ने अंग्रेज़ी फोकलोर शब्द के लिए उसके लिप्यंकन का ही प्रयोग किया है। आज फोकलोर के लिए मलयालम में 'फोकलोर' शब्द ही ज़्यादा प्रचलित है।

2.3 लोकसाहित्य और लोकसंस्कृति

लोकसाहित्य को अधिकाँश .लोग प्राचीन साहित्य या अनपढ़ लोगों का साहित्य मानते हैं। यह तो सच है कि साहित्य के रूप में इसको स्वीकृति मिलकर अधिक काल नहीं हुआ है। वास्तव में इस विषय को लेकर प्राथमिक गंभीर अनुसंधान भी अच्छी तरह नहीं हुआ है। कुछ लोग आज भी लोक साहत्य को साहित्य के अन्तर्गत रखने में हिचकते हैं क्योंकि इसका कोई लिखित रूप नहीं है, इसके रचयिता अज्ञात है और रचना के लिए कोई लिखित नियम भी नहीं है। पर अपनी परंपरा एवं संस्कृति के बारे में पढने और जानने की तृष्णा एवं जिज्ञासा ने लोकसाहित्य को जनता तक पहूँचाया।

पहले लोक साहित्य का पृथक् रूप नहीं था। लोकसंस्कृति के अन्तर्गत एक मिला-जुला रूप में ही यह विद्यमान था। श्री भोलानाथ तिवारी के

---

1 फोकलोर राघवन पय्यनाडु पृ. सं 19

अनुसार "लोकसाहित्य के अध्ययन की ओर सबसे पहले यूरोप का ध्यान गया है। वहाँ बहुत से पुरातत्व और नृविज्ञान के अध्ययन के लिए लोक साहित्य का अध्ययन किया जाता रहा है। इस सन्दर्भ में सर्वप्रथम नाम जोन औब्रे का लिया जा सकता है, जिन्होंने 1981 ई में 'रोमेन्स आव् जेण्टिलिज़्म एण्ड जुडाइज़्म' पुस्तक लिखी थी। प्रायः सौ वर्ष बाद जान बैण्ड ने ब्रिटीश द्वीप-समूह की 'पाप्यूलर एण्टीक्टीज़' पर एक पुस्तक लिखकर इस अध्ययन को ओर आगे बढाया। आगे चलकर भाषा-विज्ञान और माईथोलजी (धर्म गाथा) के लिए लोकसाहित्य का अध्ययन होने लगा तथा इस दृष्टि से जर्मनी के ग्रिम बन्धुओं ने पर्याप्त कार्य किया और दो पुस्तकें भी प्रकाशित की। उस समय तक इस क्षेत्र के अध्ययन का नाम 'पाप्यूलर एण्टीक्टीज़' था। आज से सौ वर्ष से कुछ ही अधिक हुए होंगे जब 1846 ई में थाम्स महोदय ने इसे नया नाम 'फोकलोर' दिया।"[1]

"एम लीच ने 'द टिक्शनरी आफ फोकलोर मिथयलजी एण्ड लजण्ड में फोकलोर के लिए इक्कीस लोगों की परिभाषा दी है। इसमें कुछ परिभाषाएँ इस प्रकार हैं :- जॉन बेयली के अनुसार फोकलोर एक जनता से संबन्धित शास्त्र ही न होकर परंपरागत शास्त्र एवं लोकगीत हैं। मौखिक रूप से आनेवाले सांस्कृतिक परंपरा को बि. ए. बोटकिन ने फोकलोर के अन्तर्गत रखा है। लेकिन विल्यम वास्कमिन् के अनुसार मौखिकी रूप से मिलनेवाले कला मात्र है फोकलोर। एम.एस. पिनोसा क़े अनुसार आदिमानव के सीधा एवं

---

1 भोलानाथ तिवारी लोकायन और लोकसाहित्य पृ सं 421

सच्चा प्रदर्शन है फोकलोर। फ्रानसिस पोटर के अनुसार मृत्यु का अतिजीवन करनेवाला और आज भी हमारे बीच प्रकट एक जीवाश्म है फोकलोर। कारवेलो नेटो ने किसी भी जनता के सांस्कृतिक प्रक्रियाओं का शास्त्रीय अध्ययन को फोकलोर माना है और उनके अनुसार यह नृतत्वशास्त्र का भाग है।"[1]

सम्मेलन पत्रिका के 'लोक संस्कृति' विशेषांक को आशिर्वाद देते हुए आचार्य जुगल किशोर ने लिखा है कि "भारतीय जीवन के अनन्त स्रोतों का मूल उद्गाम लोकसंस्कृति है।"[2] लोक संस्कृति को केवल ग्राम्य संस्कृति माननेवालों का विरोध करते हुए श्री दिनेश्वर प्रसाद ने लिखा है कि कोई भी संस्कृति एकपक्षीय नहीं होती - वह अनेकानेक स्थानीय, जातीय और धार्मिक संस्कृतियों के अन्तरावलंबन से विकसित होती है। जिसे लोकसाहित्य या लोकवार्ता कहा जाता है वह कोई एकाधिकृत और अक्षत ग्रामीण संपत्ति नहीं है। इसलिए इसे ग्राम संस्कृति नाम देना उचित नहीं।[3]

पं. रामनारायण मिश्र के अनुसार "संस्कृति शब्द विशिष्ट जनसमुदाय के विचारों का बोधक है और लोकसंस्कृति साधारण जनसमुदाय का।"[4] डॉ रवीन्द्र भ्रमर के अनुसार "किसी भी देश की संस्कृति जिसे लोकसंस्कृति कहते हैं - उन असभ्य और अशिक्षित समझे जानेवाले मनुष्यों के प्राणों का स्पन्दन होता है जो वहाँ की जनसंख्या का विशाल अंग होते हैं। इन्हीं तथा कथित

---

1 एम. लीच द डिक्शनरी ऑफ फोकलोर मिथॉलजी एण्ड लजण्ड पृ सं 398-403

2. आचार्य जुगल किशोर सम्मेलन पत्रिका लोकसाहित्य विशेषांक पृ. सं 15

3. दिनेश्वर प्रसाद लोक साहित्य और संस्कृति पृ सं 152

4 पं रामनारायण मिश्र - लोक संस्कृति क्या है? पृ सं 76

अशिक्षितों और असभ्यों के सामाजिक जीवन के विविध पहलू, सामूहिक एवं पारिवारिक जीवन के बहुरंगी चित्र, अपनी अटूट परंपरा के कारण उन तत्वों का रूप धारण कर लेते हैं जिन्हें लोक तत्व कहा जाता है और जिनके योग से लोक संस्कृति का निर्माण होता है।"[1]

श्री नर्मदेश्वर का मत है कि "लोक संस्कृति विकासशील लोकसंस्कार पर आश्रित है और संस्कार परंपरागत होकर भी रूढ़ी का पर्याय नहीं है। वह व्यक्तिगत संस्कार से किंचित् भिन्न है, जो व्यक्ति की भाँति जन्म से लेकर मरता नहीं अपितु विकसित होता रहता है। वह गतिशील, वृद्धिशील और प्रवाह प्रवण है। आनन्द उसका स्त्रोत है और मंगल भावना प्राण। परन्तु वह आनन्द एक व्यक्ति मानस का न होकर लोक के लिए होता है।"[2]

यूनेस्को की तकनीकी एवं विधिक समिति द्वारा 1987 मई को प्रस्तावित परिभाषा यों है - "लोक संस्कृति (व्यापक अर्थों में पारस्परिक लोक प्रिय लोक संस्कृति) समूहोन्मुख एवं परम्परा आधारित वह संस्कृति है जो समुदाय के लोगों की रचना एवं उनकी इच्छाओं एवं आकांक्षाओं की संवाहिका तथा उनकी सांस्कृतिक अस्मिता की परिछाया भी है। इसके मूल्य एवं मानव मौखिक रूप से प्रवाहित होते हैं। भाषा, सांहित्य, संगीत, नृत्य, खेल, मिथक, कर्मकाण्ड, संस्कार, दस्तकारी, वस्तुकृति एवं अन्य कलाएँ इसके रूप होते हैं।"[3]

---

1 डॉ. रवीन्द्र भ्रमर पद्मावत में लोकतत्व पृ सं 20, 21

2. नर्मदेश्वर लोकसंस्कृति की आत्मा पृ. सं 119

3 बद्री नारायण लोकसंस्कृति और इतिहास से उद्धृत पृ सं 73

श्रीमति विद्या चौहान ने लोकगीतों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के बारे में बताते वक्त लोकसंस्कृति की भी परिभाषा दी है। वह इसप्रकार है संसार के समस्त मनुष्यों की मूल भावनाओं में साम्य है। अनादि काल से ही जब भाषा और लिपि, कविता और कला, संगीत और नृत्य आदि का कोई सुसंस्कृत और शास्त्रीय रूप निर्धारित नहीं हुआ था, उस समय भी दुःख और सुख, युद्ध और शान्ति, हार और जीत, विरह और मिलन, जीवन और मृत्यु, पावस और वसन्त आदि जगत् के स्वाभाविक कार्य-व्यापारों ने सर्वत्र मानव के अंतः करण को आलोकित करके समान प्रतिक्रियाओं एवं भावों को उद्रेक किया था। यही सहज स्वाभाविक भावोद्रेक लोकसंस्कृति की संपदा है। इसप्रकार लोक संस्कृति का विशाल अर्थ है। इसमें लोक जीवन से सम्बन्धित सभी वस्तुएँ आते हैं।

भारत में आर्यों के आगमन के उपरान्त आर्य एवं आर्येतर जातियों के बीच 'वेद' एवं 'वेदेतर' स्थिति का आविर्भाव हुआ। उस दशा में लोक शब्द का प्रयोग वेदेतर अथवा शास्त्रेतर के लिए होने लगा और लोक संस्कृति वेदेतर या शास्त्रेतर संस्कृति के रूप में जानने लगा। लेकिन आगे चलकर यह वेदेतर संस्कृति की समुचित सीमा तोडकर ऊँचा उठ गया। अंग्रेज़ी में इसे फोकलोर कहते हैं।

'फोकलोर' के लिए हिन्दी में अनेक शब्द प्रयुक्त हैं जैसे 'लोकज्ञान' 'लोक विज्ञान' 'लोकशास्त्र' 'लोकसंस्कृति' 'लोकयान' 'लोकायन' 'लोक परंपरा' 'लोक प्रतिभा' 'लोक-प्रवाह' 'लोक-पथ' 'लोक-विधान' 'लोक-संग्रह' तथा 'लोकवार्ता' आदि।

डॉ वासुदेवशरण अग्रवाल ने 'फोकलोर' शब्द की हिन्दी पर्यायवाची शब्द का चुनाव वैष्णव संप्रदाय में प्रचलित 'चौरासी वैष्णवों की वार्ता' तथा 'दो सौ वैष्णवों की वार्ता' आदि ग्रन्थों के 'वार्ता' शब्द के आधार पर किया है।[1] लोकवार्ता शब्द में अधिक से अधिक लोककथा या लोकचर्चा का भाव वहन करने की क्षमता है।

डॉ विद्या चौहान के अनुसार "भाषा शास्त्र की दृष्टि से रूढ़ प्रयोगों द्वारा विशिष्ट अर्थ एवं महत्व प्राप्त कर लेने के कारण 'लोक वार्ता' फोकलोर का समानार्थक शब्द है।"[2] डॉ कृष्णदेव उपाध्याय ने 'लोकवार्ता' शब्द को अवाचक तथा अव्याप्ति दोषों से ग्रसित होने के कारण फोकलोर के पर्यायवाची अर्थ में रखना अस्वीकार किया है। उनके अनुसार 'लोकवार्ता' की अपेक्षा 'लोक संस्कृति' शब्द का प्रयोग नितान्त उपयुक्त एवं समीचीन है। उन्होंने इसे स्पष्ट करते हुए लिखा है कि लोकसंस्कृति के अन्तर्गत जन जीवन से संबंधित जितने आचार-विचार, विधि निृषेध, विश्वास, प्रथा, परंपरा, धर्म, मूढ़ाग्रह, अनुष्ठान आदि है वे सभी आते हैं। अतः लोक संस्कृति शब्द 'फोकलोर' के व्यापक तथा विस्तृत अर्थ को प्रकाशित करने में सर्वथा समर्थ है।"[3] डॉ हज़ारीप्रसाद द्विवेदी ने भी फोकलोर के पर्यायवाची शब्द के रूप में 'लोक संस्कृति' शब्द को माना है।

---

1 डॉ सत्येन्द्र ब्रज लोकसाहित्य का अध्ययन पृ सं 11

2. डॉ विद्या चौहान - लोक साहित्य पृ. सं. 13

3. कृष्णदेव उपाध्याय - हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, सोलहवाँ भाग प्रस्तावना - पृ.सं.11

4. डॉ विद्या चौहान लोकसाहित्य - पृ. सं 12

डॉ सुनीतिकुमार चाटर्जी ने 'लोक यान' शब्द के पक्ष में मत प्रकट करते हुए उसे फोकलोर का समानार्थी बताया है। लेकिन डॉ कृष्णदेव उपाध्याय के अनुसार यह शब्द 'हीनयान' 'महायान' आदि शब्दों के अनुकरण पर निर्मित है। इस संबंध में इतना ही कहना पर्याप्त है कि ये उपयुक्त शब्द बौद्ध धर्म के एक विशिष्ट समुदाय के द्योतक हैं तथा वज्रयान शब्द धर्म से संबंधित होने के कारण इसी अर्थ में रूढ बन गये हैं। अतः इनके अनुकरण पर जो 'लोकयान' शब्द बनाया जायेगा उससे जन साधारण के धर्म का तो बोध हो सकता है किन्तु उनके रहन-सहन, रीति-रिवाज़, विश्वास, परंपरा तथा प्रथाओं का बोध नहीं हो सकता। अतः अव्याप्ति दोष से मुक्त है।[1]

श्री भोलानाथ तिवारी ने 'लोकयान' शब्द में लोक जीवन की विकासशीलता का निरूपण करते हुए उसे सर्वथा फोकलोर के उपयुक्त बताया है। लेकिन 'लोकयान' से सहमत होते हुए भी व्यक्तिगत रूप से उन्होंने 'लोकायन' शब्द का सुझाव दिया है। उन्होंने लिखा है "मेरे मस्तिष्क में, 'फोकलोर' पर विचार करते समय़ लोक शास्त्र, लोक विज्ञान, लोकज्ञान (ये तीनों 'फोकलोर' के शाब्दिक अर्थ के अधिक निकट है।) लोक परंपरा, लोक प्रतिभा, लोक प्रवाह, लोक पथ, लोक विधान तथा लोक संग्रह आदि कई शब्द आये, पर किसी में भी अपेक्षित भाव नहीं मिला। मेरे एक मित्र श्री नर्मदेश्वर चतुर्वेदी ने इसी विषय पर बातचित के सिलसिले में 'लोकायन' शब्द का 'फोकलोर' के प्रतिशब्द होने का सुझाव दिया था। इसमें 'अयन' शब्द का अर्थ

---

1 डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास पृ. सं 11

'यान' की ही भाँति गति, चाल या जाना आदि है। यह शब्द भी 'लोकायन' की ही भाँति 'फोकलोर' के पर्याय होने की लगभग पूरी क्षमता रखता है।[1]

डॉ सत्येन्द्र ने 'लोकाभिव्यक्ति' और 'लोकतत्व' - दो शब्द प्रस्तुत किये हैं। इनमें लोकाभिव्यक्ति तो केवल लोककला और लोकसाहित्य के लिए ही प्रयुक्त कहा जा सकता है और दूसरी ओर 'लोक तत्व' शब्द 'फोक एलिमेण्ट' के पर्याय के रूप में अधिक युक्ति संगत है और प्रयोग में भी आता है। इसमें संकीर्ण अर्थ की व्यंजना होने के कारण भी इनको 'फोकलोर' के समकक्ष रखना उपयुक्त नहीं हैं।[2]

इसप्रकार फोकलोर के लिए हिन्दी में अनेक शब्द प्रयुक्त हैं। इसमें अधिकाँश शब्द 'फोकलोर' शब्द की व्याप्ति को समेटने योग्य नहीं है। 'फोकलोर' में लोकसमाज में व्याप्त समस्त विचार, आदर्श, मनोभाव, विश्वास, परम्पराएँ, साहित्य, रहन-सहन, रीति-रिवाज़, अनुष्ठान क्रियाएँ आदि सभी बातें आती हैं। संस्कृति में ये सभी कार्य कलाप अन्तर्निहित है। इसलिए फोकलोर के लिए हिन्दी में लोकसंस्कृति शब्द ही अधिक उचित लगता है।

'फोकलोर' के हिन्दी पर्यायवाची शब्द के लिए विद्वानों ने अनेक शब्दों का नाम निर्देशित किया है लेकिन इसके अन्तर्गत आनेवाले 'फोक लिटरेचर' के लिए अधिकाँश विद्वानों ने 'लोक साहित्य' शब्द को ही चुन लिया है। पहले लोक साहित्य नाम से पृथक् रूप में अध्ययन या शोधकार्य नहीं हुआ

---

1 भोलानाथ तिवारी लोकायन और लोकसाहित्य पृ सं 421

2. डॉ सत्येन्द्र लोकसाहित्य विज्ञान पृ सं 17

था। लोकसंस्कृति के अन्तर्गत इसका नामोल्लेख ही था। लेकिन अब लोकसाहित्य पर विशेष रूप से अनेक शोध एवं अध्ययन के कार्य चल रहे हैं।

2.3.1 लोक साहित्य लोक संस्कृति का एक अंग

लोकसाहित्य लोकसंस्कृति का एक अंग है। डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय ने लिखा है "लोकसाहित्य लोकसंस्कृति का एक भाग है, उसका एक अंश है। यदि लोकसंस्कृति की उपमा किसी विशाल वट वृक्ष से की जाय तो लोकसाहित्य उसका एक अंश है। यदि लोक संस्कृति शरीर है तो लोक साहित्य उसका एक अवयव है। लोक संस्कृति का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है, परन्तु लोक साहित्य का विस्तार संकुचित है। लोकसंस्कृति की व्यापकता जन जीवन के समस्त व्यापारों में उपलब्ध होती है। परन्तु लोकसाहित्य जनता के गीतों, कथाओं, गाथाओं, मुहावरों और कहावतों तक ही सीमित है। एक का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है तो दूसरे का सीमित तथा संकुचित। लोकसाहित्य अंग है तो लोकसंस्कृति अंगी है।"[1]

श्री कृष्णदेव उपाध्याय ने लोकसाहित्य और लोक संस्कृति में अंग-अंगी का सम्बन्ध बताया है। उनकी राय में "अनेक विद्वान इन दोनों शब्दों के पार्थक्य को बिना समझे-बूझे एक शब्द का दूसरे के लिए प्रयोग भ्रमवश कर दिया करते हैं जिससे अनेक भावों को समझने में भी बडी कठिनाई होती है।"[2] इसलिए दोनों की भिन्नता को स्पष्ट करने के लिए उन्होंने अंग्रेज़ी के 'फोक लिटरेचर' और 'फोक लोर' शब्दों को लेकर इसके समानार्थक शब्द यथाक्रम 'लोक संस्कृति' और 'लोकसाहित्य' बताया है।

---

1 श्री कृष्णदेव उपाध्याय हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास प्रस्तावना पृ सं 14
2. वहीं - पृ. सं. 14

2.4 लोकसाहित्य का स्वरूप एवं परिभाषा

लोक मानव का सहज आविष्कार है लोकसाहित्य। यह एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को मौखिक रूप से मिलने वाली अमर संपत्ति है। अनेक विद्वानों ने लोकसाहित्य के सम्बन्ध में अपना विचार प्रस्तुत किया है। श्री सरोजनी रोहतगी ने लोक साहित्य की परिभाषा के सन्दर्भ में कुछ लोक साहित्यकारों के मत का समाहार किया है, जो इसप्रकार है -

1) एक ऐसा साहित्य जो असभ्य और अपढ लोगों के विषय में लिखा गया हो।

2) जंगली जातियों के जीवन से संबंधित साहित्य।

3) ग्रामीण या गाँवों के लोगों का साहित्य।

4) लोक साहित्य किसी काल विशेष का न होकर युग-युग से चला जाता हुआ वह साहित्य है जो हमें जन जीवन के बीच प्रायः मौखिक रूप में ही प्राप्त होता रहा है।

5) लोक साहित्य वह है जिसमें हमारे अपढ समाज के लिए मनोरंजन की व्यापक सामग्री प्राप्त होती हो। मनुष्य कठिन परिश्रम के पश्चात् थोडा सा समय अपने मनोरंजन के लिए भी चाहता है। वही मनोरंजन मानव गीत गाकर और कथा सुनकर प्राप्त करता है।

इन परिभाषाओं के आधार पर श्रीमति सरोजनी ने पाश्चात्य भाषाओं के लोकसाहित्य का संकुचित अर्थ ही माना है तथा उनकी राय में पाश्चात्य लोकसाहित्य की तुलना में भारतीय भाषा के लोकसाहित्य शब्द से

व्यापक भाव की व्यंजना होती है। उनके अनुसार मानव के संपूर्ण रीतिरिवाज़ आचार-विचार और उसके व्यवहार का स्वरूप जो किसी प्रकार के बन्धनों से जकड़ा नहीं होता वरन् जिन व्यवहारों के द्वारा मानव स्वतंत्र रूप से एक आत्म संतोष प्राप्त करता है आदि इस लोक साहित्य के अन्तर्गत आते हैं।[1]

डॉ सत्येन्द्र के अनुसार लोकसाहित्य के अन्तर्गत वह समस्त बोली या भाषागत अभिव्यक्ति आती है, जिसमें आदिम मानस के अवशेष उपलब्ध हों, परम्परागत मौलिक क्रम से उपलब्ध बोली या भाषागत अभिव्यक्ति हो जिसे किसी की कृति न कहा जा सके, जिसे श्रुति ही माना जाता हो, और जो लोक में मानस की प्रवृत्ति में समायी हुई हो, कृतित्व हो किंतु वह लोकमानस के समन्वय तत्वों से युक्त हो कि उसके किसी व्यक्तित्व के साथ सम्बद्ध रहते हुए भी लोक उसे अपने ही व्यक्तित्व की कृति स्वीकार करें।[2]

'हाडौती लोकगीत' नामक ग्रन्थ में डॉ. चन्द्रशेखर ने लोक साहित्य को जनता की अनुभूतियों का सहज प्रकाशन माना है।[3]

श्री मेरट ने कहा है कि 'लोकसाहित्य एक गतिशील विज्ञान है।' एनसाईक्लोपीडिया ऑफ सोशल साइनसेज़ में फोकलोर का शाब्दिक अर्थ 'असंस्कृत लोगों का ज्ञान' कहा गया है। इस दृष्टि से लोकसाहित्य असंस्कृत लोगों का साहित्य है।[4]

---

1 सरोजनी रोहतगी - अवधी का लोकसाहित्य पृ सं 4

2. डॉ. सत्येन्द्र लोकसाहित्य विज्ञान - पृ. सं 4

3. डॉ चन्द्रशेखर भट्ट हाडौती लोकगीत पृ. सं. 5

4. एनसाइक्लोपीडिया ऑफ सोशियल साइंसस - पृ सं. 411

डॉ कुन्दनलाल उप्रेती की राय में "आदिम मानव के मस्तिष्क की सीधी तथा सच्ची अभिव्यक्ति ही लोकवार्ता तथा लोकसाहित्य है। हमारे विचार में लोकसाहित्य लोक समूह द्वारा स्वीकृत व्यक्ति की परम्परागत मौखिकी क्रम से प्राप्त वह वाणी है जिसमें लोकमानस संग्रहीत रहता है।"[1]

श्रीमति पूरम सरमा ने भारतीय के सन्दर्भ में लोकसाहित्य के महत्व को स्पष्ट करते हुए लोकसाहित्य को परिभाषित करने का प्रयास यों किया है - "भारतीयता की अवधारणा में हम एक ऐसे आधार को पाते हैं, जो हमारे ठेठ लौकिक जीवन तथा आदर्श नैतिक जीवन की भावभूमि को हज़ारों-हज़ार वर्ष की सतत साधना के परिणाम स्वरूप हमारे समाज को मिली तथा यही नहीं संपूर्ण विश्व में भी सभ्यता संस्कृति के विकास में सहायक रही। हम जिस अर्थ संस्कृति को अपनी थाती मानकर उसे सहेजना चाहते हैं, वही तो संपूर्ण मानव समाज का आधार स्तंभ थी। इस सन्दर्भ में भी हम भारतीय समाज की मूल्यपरकता पर सहज ही आस्था व्यक्त करते हैं और विवेचन में पाते है कि हमारा जनमानस नीति एवं आदर्श मान्यताओं के ठोस धरातल पर केन्द्रित था तथा उसे इनसे विमुख किया जाना असंभव था। इसी के प्रतिफल कालांतर में जिस साहित्य की रचना हुई वही हमारा 'लोकसाहित्य' भी था।"[2]

'पद्मावत् में लोकतत्व' नामक पुस्तक में डॉ. रवीन्द्र भ्रमर ने लोक साहित्य की परिभाषा यों दी है - "लोक साहित्य जैसा कि उसके नाम

---

1 डॉ कुन्दनलाल उप्रेती (सं) - लोक साहित्य के प्रतिमान - पृ. सं 19

2. वहीं - पृ. सं. 19

से ही स्पष्ट हो जाता है - लोक का साधारण, अशिक्षित जनता का साहित्य होता है। इसमें लोक जीवन के विविध चित्र मिलते हैं।"[1]

मलयालम के वरिष्ठ लेखक श्री कावालम नारायण पणिक्कर ने लोकसाहित्य को मलयालम में वामोषि साहित्य बताया है जिसका अर्थ होता है मौखिकी साहित्य। उनके अनुसार "लोक साहित्य प्राचीन एवं मूल प्रकृति के है, इसका कोई स्वरूप नहीं होता और इसके रचनाकार भी अज्ञात होते हैं। निरक्षर लोगों द्वारा उनकी बोलचाल की भाषा में बनाया गया साहित्य है लोक साहित्य।"[2]

उसीप्रकार श्री दिनेश्वर प्रसाद ने भी लोक और साहित्य पर पृथक्-पृथक् विचार करते हुए बताया है कि "लोक और साहित्य (या वार्ता) के अभिप्रायों पर पृथक् पृथक् विचार करने पर लोकसाहित्य की जो सम्मिलित संकल्पना उभर कर सामने आती है, वह केवल यही है कि यह लोक का सामुदायिक मौखिक साहित्य है। इसके अन्य लक्षण अपरिहार्य न होकर सापेक्ष और किन्हीं उदाहरणों में वैकल्पिक हैं। ऐसे ही सापेक्ष लक्षण है इसका परम्परागत होना और इसे अज्ञात रचयिताओं की कृति मानना।"[3]

मलयालम के लोकवार्ताकार श्री राघवन् पय्यनाडु की राय में लोकसाहित्य को परिभाषित करना उतना आसान नहीं है, फिर भी फोकलोर

---

1 डॉ रवीन्द्र भ्रमर पद्मावत में लोकतत्व - पृ. सं. 31

2. कावालम् नारायणप्पणिक्कर केरळत्तिले नाडोडि संस्कारम् पृ सं 119

3. श्री दिनेश्वर प्रसाद लोकसाहित्य और संस्कृति पृ सं 156

के बारे में बताते समय उन्होंने संक्षिप्त रूप में स्पष्ट किया है कि पुरानी पीढी से नये पीढ़ी को इन्द्रियों के माध्यम से मिलनेवाला साहित्य है लोकसाहित्य।[1]

श्री कृष्णदेव उपाध्याय ने लोकसाहित्य का सामान्य परिचय देते हुए लोकसाहित्य की परिभाषा यों दी है कि "सभ्यता के प्रभाव से दूर रहनेवाली, अपनी सहजावस्था में वर्तमान जो निरक्षर जनता है उसकी आशा-निराशा, हर्ष-विषाद, जीवन-मरण, लाभ-हानि, सुख-दुःख आदि की अभिव्यंजना जिस साहित्य में प्राप्त होती है उसी को लोकसाहित्य कहते हैं। इस प्रकार लोक साहित्य जनता का वह साहित्य है जो जनता द्वारा, जनता के लिए लिखा गया हो।"[2]

इसप्रकार लोकसाहित्य के सम्बन्ध में अनेक विद्वानों ने अपना मत प्रकट किया है। इसमें कुछ विद्वान लोक साहित्य को निरक्षर, जंगली, ग्रामीण लोगों का साहित्य माना है। लेकिन अब लोक साहित्य के महत्व को लोग पहचानने लगे हैं इसलिए इसे अनपढ़ लोगों का साहित्य कहकर सीमित नहीं रखते हैं। चौमासा पत्रिका के एक अंक में डॉ. राजेन्द्र रंजन चतुर्वेदी ने कहा है 'लोकवार्ता को आदिवासी लोगों का ज्ञान समझने का विचार अब पुरातन पड चुका है। अधुनातन मानवशास्त्रियों और मनोवैज्ञानिकों का निष्कर्ष है कि मनुष्य बीते युगों का एपिटोम अर्थात् युगान्धर है और इस प्रकार आधुनिकतम मानस लोक चेतना का अभिन्न अंग है। आज सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी के लोकवार्ता विदों के द्वारा की गयी फोक की परिभाषा ही नहीं बदल गयीं,

---

1 श्री राघवन पय्यनाडु फोकलोर - पृ. सं. 5

2. श्री कृष्णदेव उपाध्याय - हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास - पृ. सं 16

अपितु लोकवार्ता अध्ययन के सरोकार, प्रविधि और संगठन का स्वरूप भी बदला है।[1] याने लोकसंस्कृति के अध्ययन का एक सशक्त माध्यम होने के नाते लोकसाहित्य को अधिक महत्व प्राप्त हुआ है।

2.5 लोक साहित्य एवं साहित्य

किसी भी भाषा के साहित्य का उद्‌भव लोक साहित्य से ही माना जाता है। श्री राघवन पय्यनाडु ने इस बातं का स्पष्टीकरण करते हुए बताया है कि कुछ लोगों की राय में रामायण और महाभारत की कहानियाँ वास्तव में समाज में प्रचलित कथागान थी और बाद में इसका समाहार एवं परिष्करण करके लिखित रूप तैयार किया गया। इस वाद में सच्चाई का अंश है क्योंकि प्राचीन समाज में रामायण एवं महाभारत की कहानियों, के विभिन्न रूप देखने को मिलते हैं।[2]

समकालीन साहित्य में भी लोक साहित्य का गहरा प्रभाव है। लोकसाहित्य से प्रभावित होते हुए भी दोनों में अनेक भिन्नताएँ हैं क्योंकि लोकसाहित्य अपनी विशेषताओं के साथ आज भी मौजूद है।

डॉ. रवीन्द्र भ्रमर ने लोक साहित्य से भिन्न साहित्य को अभिजात साहित्य माना है। उनके अनुसार लोकसाहित्य साधारण अशिक्षित जनता का साहित्य होता है। अभिजात साहित्य सुशिक्षित एवं सुसंस्कृत जनता की कृति होता है। एक में लोक जीवन के विविध चित्र मिलते हैं तो दूसरा सीमित शिष्ट

---

1 डॉ. राजेन्द्र रंजन चतुर्वेदी - चौमासा अंक - 62 जुलाई-अक्तूबर - 2003 लोकवार्ता अध्ययन के नये क्षितिज

2. श्री राघवन् पय्यनाडु फोकलोर - पृ. सं. 22

समाज का दर्पण। अभिजात साहित्य लिखित होता है, लोक साहित्य लिपिबद्ध नहीं। वह जनता की विराट अलिखित पुस्तक पर अंकित रहता है एवं लोक कंठ में जीवित रहता है। उसकी एक विशाल मौखिक परंपरा होती है। गीतों, कहावतों और कथाओं का रूप धारण करके यह लोक साहित्य एक कंठ से दूसरे कंठ एवं एक युग से दूसरे युग तक यात्रा करता रहता है। अपनी इस मौखिक रूप के कारण लोक साहित्य परिवर्तनीय होता है इसके विपरीत अभिजात साहित्य की अपेक्षा सरल अधिक सुबोध और व्याकरणिक नियमों से स्वतंत्र होती है। लोक साहित्य वस्तुतः सामूहिक जन चेतना का फल होता है, व्यक्ति विशेष की कृति नहीं।[1]

इसप्रकार लोक साहित्य और साहित्य के बीच विद्वानों ने अनेक अंतर बताये है। ज्यादात्तर विद्वानों ने जिन जिन बातों पर अंतर बताया है वे इसप्रकार हैं :-

लोक साहित्य	साहित्य
1 लोक साहित्य में अशिक्षित समुदाय की संवेदन क्षमता आलोड़ित रहती है।	साहित्य समाज के सुशिक्षित व्यक्तियों की सृष्टि है।
2. लोक साहित्य में मानव अनुभूतियाँ सर्वथा नियममुक्त होकर विचरण करती हैं।	साहित्य का संपूर्ण स्वरूप नियमबद्ध होता है। भाषाशैली, रस-छन्द, अलंकार तथा भाव आदि समस्त तत्वों का निर्धारित नियमों के अनुकूल साहित्य में प्रवेश होता है।

1 डॉ. रवीन्द्र भ्रमर - पद्मावत में लोकतत्व पृ. सं. 29

3 लोकसाहित्य मौखिक रूप से जीवित रहनेवाली परंपराशील सत्ता है।	साहित्य लिखित रूप में सुरक्षित रहता है।
4 लोकजीवन के सांस्कृतिक तत्व लोकसाहित्य में समाहित रहते हैं।	लोकजीवन के सांस्कृतिक तत्व साहित्य में गृहीत होते हैं।
5 लोक साहित्य पर देश-काल का त्वरित प्रभाव नहीं पड़ता।	साहित्य प्रायः देशकाल की सीमाओं से प्रभावित होता है।
6 लोक जीवन से सारभूत जीवनी शक्तियों के धरातल को लोक साहित्य कभी छोड नहीं पाता।	लोकजीवन से सारभूत जीवनी शक्तियों को ग्रहण करके साहित्य उसके धरातल से ऊपर उठकर अपने अस्तित्व का निर्माण करता है।
7 लोकसाहित्य समाज की ही अभिव्यक्ति है। विशिष्ट व्यक्तित्व का वहाँ लोप होता है।	समाज व्याप्त सत्यानुभूतियों की वैयक्तिक अभिव्यक्ति साहित्य में होता है। याने व्यक्ति के माध्यम से होनेवाली सामाजिक अभिव्यक्ति साहित्य है।
8. लोकसाहित्य का आधार लोक भाषा या 'बोली' है। सहज स्वाभाविक शब्दों का नियमहीन उन्मुक्त प्रयोग इसमें रहता है।	साहित्य की अभिव्यक्ति परिनिष्ठित भाषा के माध्यम से होती है। परिष्कृत और परिमार्जित शब्द रूपों का विन्यास वहाँ होता है।

9 लोकसाहित्य संस्कार की अति-नियमितता से मुक्त होने के कारण ही अधिक नैसर्गिक एवं स्वाभाविक हैं।	साहित्य में संस्कार का अधिक योग है।
10 लोकगीतों का प्रदेय संकेत मात्र करके बैठ जाता है।	साहित्य पाठक को कुछ देकर प्रभावित करता है।

इसके अलावा डॉ. विद्या चौहान ने अपनी 'लोकसाहित्य' नामक पुस्तक में रसास्वादन एवं रूपसन्तात्मक दृष्टि से साहित्य एवं लोकसाहित्य में अंतर व्यक्त किया है - "रसास्वादन की दृष्टि से भी साहित्य के अध्येता और लोकसाहित्य के श्रोता में अन्तर हैं। साहित्यिक रसानुभूति के लिए व्यक्ति की हार्दिक संवेदनशीलता के अतिरिक्त कतिपय बौद्धिक अर्हताओं का अर्जन करना आवश्यक है परन्तु लोक-साहित्य की आनन्दानुभूति के लिए मन की कोमल वृत्तियों की जागृति मात्र अपेक्षित है। साहित्य और लोकसाहित्य में रागात्मक साम्य होने पर भी रूप सत्तात्मक अंतर है। साहित्य में यदि वह काव्य है तो अलंकार, रस और छन्द का नियमित उपयोग किया जाता है। इसी प्रकार यदि वह साहित्य की कोई अन्य विधा हो तो संबंधित विधा के निर्धारित लक्षणों की रक्षा उसके लिए अनिवार्य है, परन्तु नियतिकृत नियमरहित होने पर लोक साहित्य की कोई रूपात्मक सीमा निर्धारित नहीं की जा सकती। अन्त्यानुप्रास के नाद-सौन्दर्य के बिना भी लोकगीत अपना पूरा प्रभाव श्रोता पर अवश्य ही डालता है। इसलिए लोकगीतों का आनन्द उनके लिए सहज और नैसर्गिक होता है।"[1]

1 डॉ. विद्या चौहान लोकसाहित्य - पृ. सं 20

इसप्रकार लोकसाहित्य और साहित्य में अनेक भिन्नताएँ हैं तथा दोनों की अलग अलग विशेषताएँ भी हैं।

2.6 लोकसाहित्य की विशेषताएँ एवं महत्व

लोकसाहित्य की परिभाषा के सन्दर्भ में अनेक विद्वानों ने इसे अशिक्षित लोगों का साहित्य बताया था। लेकिन लोक साहित्य केवल अशिक्षित लोगों का साहित्य या ज्ञान नहीं है। क्योंकि, जो लोग अशिक्षित हैं उनके लिए लोक साहित्य स्कूलों एवं ग्रन्थालयों का काम करता है तथा जो शिक्षित हैं उन्हें लोकसाहित्य पुस्तकीय जानकारियों से भिन्न मूल्यों संबंधी अनेक आम जानकारियाँ देता है। आदिवासियों एवं जंगली जातियों में सभी जानकारियाँ अगले पीढ़ियों तक लोकसाहित्य के माध्यम से पहुँचाया जाता है। आचरण नियम एवं नैतिक तथा सामाजिक मूल्यों संबन्धी जानकारियाँ आज भी हमें लोकसाहित्य के माध्यम से ही मिलता हैं। उदाहरण के लिए जब कोई बच्चा कुछ गलती करता है तो कहावत या कहानी के माध्यम से उसे इसका पता दिलाता है और आगे न करने का उपदेश भी देता है। बच्चों को जीवन मूल्यों से परिचित कराने के लिए इस प्रकार की अनेक कहानियाँ प्रचलित हैं। पंचतंत्र इसका उदाहरण है। लोकसाहित्य की सबसे बडी विशेषता एवं महत्व यह है कि वह बहुत ही सरल मार्ग से शिक्षा देता है।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। इसलिए उन्हें अपनी व्यक्तिगत सत्ता के संरक्षण के साथ-साथ सामाजिक सत्ता पर भी विचार करना है। वास्तव में आचरण नियमों का निर्माण सहज ही इस सामाजिक सत्ता के अस्तित्व के

लिए हुआ है। इस सामाजिक सत्ता को कायम रखना लोक साहित्य का प्रमुख कार्य है। समाज की संस्कृति एवं सभ्यता की पुष्टि करना लोकसाहित्य का काम है। इसलिए समाज के आवश्यकतानुसार इसका निर्माण हुआ है। श्री राघवन पय्यनाडु की राय में "किसी भी लोक साहित्य का जब समाज में कोई कर्तव्य नहीं रहता तब वह अपने आप गायब हो जाता है।"[1] इसप्रकार सामाजिक दृष्टि से लोकसाहित्य का बडा महत्व है।

डॉ विद्या चौहान के विचार में "लोक साहित्य समाज की अभिव्यक्ति है अतः इसमें समाज के समस्त पहलुओं का सुख-दुःख, राग-विराग, आशा-निराशा, ईर्ष्या, द्वेष आदि मनोभावों का, रीति-रिवाज़, आचार-विचार, रहन-सहन, विश्वास और परम्पराओं का सजीव चित्रण प्राप्त होता है। समाज में व्याप्त समस्त सम्बन्धों का भावनात्मक निरूपण तथा विभिन्न जातियों का पारस्परिक अनुबन्ध इसमें प्राप्त होता है। किसी समाज का सर्वाधिक सच्चा और स्पष्ट रूप देखना हो तो उसके लोकसाहित्य में देखना चाहिए।"[2]

2.6.1 जनजीवन का सच्चा और स्वाभाविक वर्णन

लोक साहित्य की भूमिका नामक पुस्तक में लोक साहित्य के सामाजिक महत्व स्पष्ट करते हुए डॉ. राहुल सांकृत्यायन ने लिखा - "लोक साहित्य में जन-जीवन का जितना सच्चा और स्वाभाविक वर्णन उपलब्ध होता है उतना अन्यत्र नहीं। सच तो यह है कि यदि किसी समाज का वास्तविक

---

1 राघवन पय्यनाडु फोकलोर पृ. सं. 11

2. डॉ. विद्या चौहान - लोकसाहित्य - पृ. सं. 17

चित्र देखना हो तो उसके लोक साहित्य का अध्ययन करना चाहिए। लोक साहित्य में समाज का जो चित्रण किया गया है वह उच्च शिष्ट और सभ्य है। पति-पत्नी, भाई-बहन, माता-पुत्री, पिता-पुत्र आदि का जो वर्णन हमारे सामने उपलब्ध होता है उससे समाज का सारा चित्र हमारे हृदय पर अंकित हो जाता है। समाजशास्त्री विद्यार्थी के लिए बहुत सी उपयोगी सामग्री लोक साहित्य में पायी जा सकती है।"[1]

2.6.2 सामाजिक कुरीतियों की ओर इशारा

डॉ गोविन्द त्रिगुणायन के अनुसार "लोक साहित्य में सामाजिक कुरीतियों के सुन्दर चित्रण भी मिलते हैं। भारतीय समाज में बेटी को जो आदर मिलता है वह बहू को नहीं मिलता। भोजपुरी के एक लोकगीत में जब अपनी लड़की के प्रति संबोधिन 'बड़ी रे पंडितवा के धीय' है तो बहू के लिए 'हर जुतवा के री धीय' संबोधन है। उसी प्रकार अनमेल विवाह का चित्रण भी है। उदाहरण के लिए एक गीत में इस प्रकार का एक वर्णन है - लड़का अभी नादान और बालक ही है, जबकि लड़की युवती है, किन्तु माता-पिता दहेज से बचने के लिए इसप्रकार के अनमेल विवाह कराते हैं। बालक पति को देखकर युवती में जो भाव उदित होते हैं। उसका वर्णन है इस भोजपुरी लोकगीत में इस प्रकार है :-

"सुतल दहली माई के कोरवा,
हाय रे रमवा,

---

1 राहुल सांकृत्यायन - लोकसाहित्य की भूमिका - पृ सं. 18

मोहि के काहे विहलासि

हाय रे रमवा।

ओरिया झाँकि देखि लौ,

खिडकियाँ झाँकि देखि लौ,

सइया मोरे निपटे नदनवा,

हाय रे रमवा,

अस मन करे की नडवा पठइंती,

नइहर संइया बुलझती,

हाय रे रमवा।

दनवा खिअइती अरु दुधवा पिचइती,

सइया के करती सयंनवा! हाय रे रमवा!"[1]

इसप्रकार जीवन को दूभर करनेवाली अनेक प्रथाएँ प्राचीन काल में समाज में प्रचलित थीं। लोक-जीवन में प्रचलित बहु-विवाह प्रथा भी इसका उदाहरण है। इसप्रकार की प्रथाओं को लेकर लोकगीतों में व्यंग्य भी मिलता है। उदाहरण के लिए दो स्त्रीयों के पति की अवस्था का वर्णन करनेवाला लोकगीत देखिए -

"कईसे जियैं जिनके हुई दुई नारी।

बड़की कहै हम लुगरा बनवाईबे,

---

1 डॉ. गोविन्द त्रिगुणायन - नवीन साहित्यिक निबन्ध - पृ. सं. 242

छोटकी कहै लुगरावारी सारी।

बड़की कहै ककना बनवइबे,

छोटकी कहै ककनवारी खारी।

बडकी कहै हम गंगा नाहइबे,

छोटकी करै जमुना की तैयारी।

बड़की कहै हम तांगा में जइबें,

छोटकी कहै मोटर की सवारी।"[1]

लेकिन इस प्रकार की सामाजिक प्रथाएँ स्त्रियों पर अधिक दबाव डालती थीं। लोक समाज में पुरुष को अधिक महत्व था। पिण्डदान करने के लिए पुत्र का होना आवश्यक माना गया था। इसलिए स्त्रियों का पुत्रहीन होना निरादर का कारण बनता था। पुत्रहीन निरादरित स्त्रियों की मनोव्यथा का चित्रण हमें इस अवधी लोकगीत में मिलता है -

"चलहु न सखिय सहेलिय

जमुनहिं जाइय हो।

जमुना का निरमल नीर कलस

भरि लाइय हो।

कोतु सखी जल भरै कोउ मुख

ध्यावहिं हो।

कोउ सखी ठाढ़ी नहाँय कि तिरिया

---

1 डॉ गोविन्द त्रिगुणायन - नवीन साहित्यिक निबन्ध - पृ. सं. 242

यक र्वावई हो। (रोवहु)

की तुम्हें सास ससुर दुःख की

मइके दूरि बसै।

बहिनी की तुम्हरा पिय परदेस

कवन दुख र्वावहु हो।

ना मोहे सासु ससुर दुःख,

ना मईके दूर बसै,

ना मोरे पिय परदेस कोखि दुःख

र्वावहुँ हो।"[1]

लोक जीवन में केवल पुत्रहीन होना ही निरादर का कारण नहीं बनता था बल्कि पुत्री को जन्म देनेवाली स्त्रियों का भी समाज में सम्मान नहीं होता था। इसका एक प्रमुख कारण हमारे समाज में प्रचलित दहेज प्रथा और आर्थिक समस्याएँ हैं जो आज भी कायम हैं। लेकिन कुछ प्रदेश के लोकगीतों में इससे विभिन्न सभी को समान दृष्टि से देखने का प्रयत्न भी है। उसमें हिन्दू-मुसलमान या नारी, पुरुष आदि भेदाव नहीं है। लोकजीवन में नारी को कितना महत्व था यह बात लोकगीत की निम्न पंक्ति से जाहिर है -

"रानी तुम का रखिहौं पगाडिया की

पेंच नयनवा के भीतर।"[2]

---

1 डॉ. गोविन्द त्रिगुणायन - नवीन साहित्यिक निबन्ध - पृ. सं 242

2. वहीं - पृ सं 244

उसी प्रकार मलयालम के कुछ लोकगीतों में इस समानता की दृष्टि का परिचय हमें मिलता हैं। उदाहरण के लिए ओणम त्योहार के समय गानेवाले एक गीत देखिए -

"मावेली के शासनकाल में
मानव थे समान सब के सब
छल नहीं था, झूठ नहीं था
और नहीं थी कुछ भी बुराइयाँ।"[1]

वास्तव में केरल के लोग प्राचीनकाल की सुख-समृद्धि की याद में ओणम मनाते हैं। केरल में मावेली (महाबली) नामक एक राजा था। उनका शासनकाल सभी दृष्टियों से सुखपूर्ण एवं सुन्दर था। बाद में यह स्मृति मात्र रह गया। लगता है कि प्राचीन द्राविड समाज में ऊँची-नीची जातियाँ नहीं थीं। शायद आर्यों के आगमन के बाद इसप्रकार की सामाजिक व्यवस्था का निर्माण हुआ होगा और समानता का भाव भी नष्ट हो गया होगा। वेद संस्कृति और वेदेतर संस्कृति या लोक संस्कृति के रूप में दो संस्कृतियों का अविर्भाव इसप्रकार होने लगा तथा वेदेतर संस्कृति वालों को असभ्य तथा असंस्कृत मानने लगा।

वेद संस्कृतिवाले आर्यों की भाषा संस्कृत थी, जिन्हें संस्कृत का ज्ञान नहीं था उसे असंस्कृत (असभ्य) माना गया। उन असंस्कृत लोगों को नीची जाती मानने लगा। समाज में भेदभाव का आविर्भाव हुआ। इस भेदभाव को बरकरार रखने के लिए नीची जातिवालों को संस्कृत भाषा का अध्ययन निषिद्ध कर दिया गया था। स्त्रियों को भी संस्कृत पढने से मना किया गया। इसी लक्ष्य को आगे रखकर नये सामाजिक मूल्यों एवं नियमों का निर्माण किया

---

1 डॉ. एन. पी. कुट्टन पिल्लै - मलयालम लोक साहित्य में संस्कृतिक परिवेश पृ. सं. 10

शर्मा, मन्नन द्विवेदी गजपुरी, पं. सुखराम चौबे गुणाकर, सुखदेव प्रसाद चौबे, रामनरेश त्रिपाठी आदि प्रमुख हैं। बालमुकुन्द गुप्त, भारतेन्दु और द्विवेदी युग के सन्धिकाल के लेखक है। उन्होंने बच्चों के लिए मुख्यतः दो पुस्तकें लिखी थीं - 'खेल तमाशा' और 'खिलौना'। बच्चों के लिए कुछ स्फुट कविताएँ भी उन्होंने लिखी थीं जो उनकी 'स्फुट कविता' में संग्रहीत हैं।

'बालसखा के प्रथम अंक में श्री मैथिलीशरण गुप्त की एक लम्बी बाल कविता 'गोदी भरे लाल' प्रकाशित हुई थी। उन्होंने द्विवेदी जी की प्रेरणा से अनेक बालोपयोगी कविताएँ लिखी थीं। गुप्तजी बाल कविताओं के लिए भारतीय संस्कृति और परंपरा से ही विषय चुनते थे। वह बच्चों में विशुद्ध भारतीयता के संस्कार लाना चाहते थे तथा.उनके गीतों में मनोरंजन एवं शिक्षा का सुन्दर समावेश हुआ है। श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' की कविताएँ 'बालसखा' 'शिशु' 'बालविनोद' आदि पत्रिकाओं में प्रकाशित होती थीं। 'बाल विभव' 'बाल विलास' 'फूल पत्ते' 'पद्य प्रसून' 'चन्द्र खिलौना' और 'खेल तमाशा' उनके बाल कविता संग्रहों के नाम हैं। उन्होंने अपनी कविताओं के विषय का चुनाव बालरुचि के अनुसार किया था।

व्याकरण ग्रन्थों के रचयिता पण्डित कामताप्रसाद गुरु को बच्चे बहुत पसन्द करते थे। उन्होंने बच्चों के लिए सरल भाषा में अनेक सुन्दर कविताएँ तथा निबन्ध लिखे। 'बाल सखा में 'डाकघर' शीर्षक से उनकी लेखमाला प्रकाशित थी जिसमें डाकघर की व्यवस्था एवं प्रणाली के बारे में बच्चों के लायक सरल रूप में प्रस्तुत किया था। सरल और रोचक बालकविता लिखने में भी वे सिद्धहस्त थे। उनकी 'हमारी छड़ी' कविता बहुत प्रसिद्ध है।

इसकी विशेषता यह है कि इसमें गेयता के साथ अभिनेयता भी है। उनकी अन्य कविताओं में 'चिट्टीवाला' 'तरूवर' 'बगीचा' आदि प्रसिद्ध हैं। उन्होंने एक वर्ष तक 'बालसखा' का संवादन कार्य भी किया।

रामजीलाल शर्मा के बालोपयोगी पुस्तकों में 'बाल रामायण' 'बाल भागवत' टके सरे मुक्ति' 'टके सरे लक्ष्मी' 'बालचरितमाला' आदि प्रमुख हैं। 'बालसखा' के आरंभ में पहली रचना 'ईश विनय' हुआ करती थी जिसके प्रथमांक में मन्नत द्विवेदी की प्रार्थना दी गयी है।

श्री सुखराम चौबे गुणाकर ने बच्चों के लिए कई पाठ्यपुस्तकें लिखी और 'बलसखा' एवं 'खिलौना' में छोटी छोटी उपदेशात्मक कहानी तथा चुटकुले, पहेलियाँ आदि लिखीं। उन्होंने 'पंचतंत्र' और 'हितोपदेश' की अनेक कहानियों को पद्यबद्ध किया था। उनकी एक प्रसिद्ध कविता है 'दो बिल्लियाँ और बन्दर।' श्री सुखदेवप्रसाद चौबे के अनेक प्रार्थनाएँ बालसखा में प्रकाशित हुई थीं। उनकी बालकहानियों में 'मगर और म्यार' 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' और निबन्धों में 'मकडी' 'अमेरिका के धन कुबेर' 'राकफेलर' आदि प्रसिद्ध है।

बच्चों के लिए कहानियाँ तथा निबन्ध लिखकर बालसाहित्य को समृद्ध बनाने में रामचन्द्र रघुनाथ सर्वरेजी का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। उनकी ऐतिहासिक कहानियों में 'जहानआरा' 'बालक की वीरता' 'बलवीर पायकी' आदि प्रसिद्ध हैं। उनके अन्य कहानियों में राक्षस से लडनेवाला लड़का, बिच्छू का विवाह, और लेखों में 'समाचार पत्र' 'मिट्ठी का तेल' 'तर्क राज्य की सैर' आदि प्रमुख हैं।

श्री रामनरेश त्रिपाठी बच्चों के लिए 'वानर' नाम से एक पत्रिका निकाली थी। उनकी बालसाहित्य रचनाओं में 'मेरी कहानी' (6 भाग) 'खेल खिलौने' 'लाल खिलौना' 'खेलो भैया' 'गुडिया' 'चन्दा' 'बबुआ' 'फुलबगिया में' 'गोबर गणेश' 'ढपोर संख' 'लाल बुझककड' 'शेख चिल्ली' 'चार हाथी' 'पाँच पंखुरियाँ' 'राष्ट्रीय राग' 'चुनमुन जादूगर' आदि प्रमुख है।

द्विवेदीयुग के अन्य बालसाहित्यकारों में पं सुदर्शनाचार्य ('डल्लू और मल्लू' 'विज्ञान वाटिका' 'अनूठी कहानियाँ' 'नानी की कहानियाँ' 'बच्चू का ब्याह') सुदर्शन ('सौ साल की उम्र' 'स्वामि भक्त मोती' ('भला होगा भला') गोपालशरण सिंह ('अपार हर्ष' 'व्रत' 'विपन' 'धेनुओं' 'क्षीर' 'मृदु मंजु' 'कलिन्दजा') देवीदत्त शुक्ल ('गुडिया') शालग्राम शर्मा ('डिकविटिंगरन' 'सुहराम रुस्तम') डॉ. रामकुमार वर्मा ('विनय' 'स्वदेश संगीत' 'उचित उपदेश' 'विविध विषय' 'कुछ कहानियाँ' 'तारे') रघुनन्दन प्रसाद त्रिपाठी, शंभूदयाल सक्सेना ('पालना' 'मधु लोरी' 'लोरी और प्रभाती' 'फूलों का गीत' 'चन्द्र लोरी' 'आ री निन्दिया' 'रेशम का सूला' 'शिशुलोरी' 'नाचो गाओ' 'दुपहरिया के फूल' 'बालकवितावली') चन्द्रमौली शुक्ल ('जादू का किला' 'जीव जन्तुओं का घर' 'समुद्र के किनारे की सैर') गुलाबराय ('मधुमक्खी') श्री रामानुज लाल श्रीवास्तव ('दयालू लडका') आदि प्रसिद्ध है।

द्विवेदी युग में बालसाहित्य के प्रति लोगों में खास जागरूकता आ गयी थी। बडों के लिए सरस्वती पत्रिका के प्रकाशन के साथ बच्चों के लिए भी मासिक पत्र प्रकाशित हुए। डॉ. हरिकृष्ण देवसरे की राय में इस समय के बालसाहित्य की प्रवृत्तियाँ प्रमुखतया बच्चों का मनोरंजन, भारतीय संस्कृति

और परंपरा के अनुरूप बच्चों का विकास, बच्चों का ज्ञानवर्धन तथा उन्हें भारतीय साहित्य से परिचित कराना, पौराणिक तथा धार्मिक कथाएँ सुनाकर देश के धर्म तथा नीतियों की रक्षा आदि हैं। द्विवेदी युग में बालसाहित्य की अभिवृद्धि पर ज़्यादा ध्यान दिये गये थे।

1.5.1.4 स्वातंत्र्योत्तर बालसाहित्य

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद बाल विकास की दिशा में अधिक मात्रा में प्रयत्न हुए। इसलिए बालसाहित्य के विकास के लिए यह समय बहुत ही महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ। याने स्वतंत्रता के बाद बाल साहित्य की कई विधाएँ विकास की ओर अग्रसर हुई। बालकहानियों में आधुनिक जीवन मूल्यों से सम्बन्धित कहानियों की रचना होने लगी। एक विशेष रोचक बात यह है कि इस समय वैज्ञानिक विषयों को लेकर कई कथाएँ लिखने लगीं।

स्वातंत्र्योत्तरकालीन लेखकों में नर्मदाप्रसाद खरे, निरंकार देव सेवक आदि उल्लेखनीय हैं। डॉ. हरिकृष्ण देवसरे श्री नर्मदाप्रसाद खरे को "नयी और पुरानी पीढ़ी के सेतु"[1] मानते हैं। उनकी बालसाहित्यिक रचनाओं में 'वीरों की कहानियाँ' पूज्यचरण' 'मेरी भी सुनो' 'बाल नाटकमाला' 'नयी कहानियाँ' आदि प्रसिद्ध हैं।

बालसाहित्य के सम्बन्ध में सबसे पहले आलोचनात्मक निबन्ध लिखने का श्रेय उन्हीं को है। उनकी 'बालगीत साहित्य' हिन्दी की पहली आलोचनात्मक पुस्तक है जिसने हिन्दी बाल साहित्य की आलोचना दिशा में

---

1 हरिकृष्ण देवसरे हिन्दी बालसाहित्य एक अध्ययन - पृ.सं 198

नया मोड़ दिया। उनकी प्रमुख प्रकाशित बालसाहित्यिक रचनाओं में 'मुन्ना के गीत' 'धूप छाया' 'चाचा नेहरू के गीत' 'दूध जलेबी' 'माखन मिसरी' 'रिमझिम' 'फूलों के गीत' 'पंचतंत्री' 'मटर के दाने' 'टेसू के गीत' 'महा पुरुषों के गीत' 'हाफिज़ का सपना' 'शेखर के बालगीत' 'पंखू के बालगीत' 'ईसप की गीत कथाएँ (2 भागों में)' 'फ्रांस की कहानियाँ' 'रूस की कहानियाँ' 'जापान की कहानियाँ' आदि हैं।

आधुनिक बालसाहित्य के अन्य रचनाकारों में श्री रामकृष्ण शर्मा 'खद्दरजी' का नाम भी प्रसिद्ध है। हमेशा खद्दर पहनने के कारण बच्चे उन्हें खद्दरजी बुलाते थे। इसलिए उन्होंने बालसाहित्य रचते समय अपना नाम खद्दरजी रखा। उन्होंने बच्चों के लिए 'हमारे बालक' नाम से एक मासिक पत्रिका का प्रकाशन किया था।

श्री विश्वदेव शर्मा बच्चों के लिए कहानियाँ तथा गीत लिखे हैं। उनकी कहानियों का संकलन 'प्रतिनिधि हास्य कहानियाँ' 'प्रतिनिधि ऐतिहासिक कहानियाँ' आदि हैं। गीत की पुस्तकें हैं - 'फूल पत्ती' 'धरती के गीत' 'श्रम के स्वर' 'बाल संकेत विज्ञान' आदि।

बच्चों के लिए हास्यप्रधान गीत लिखनेवालों में चिरंजीत का नाम प्रमुख है। उनके अनेक गीत नाटक, कहानियाँ आदि बच्चों के कार्यक्रम में आकाशवाणी से प्रसारित होते रहे हैं।. उनकी प्रमुख बालसाहित्यिक रचनाएँ हैं - 'नटखट के गीत' 'बच्चे गाओ गीत' 'एक था राजा एक था रानी' आदि।

श्री इकबाल बहादुर देवसरे प्रेमचन्द के मित्रों में एक है और उनसे प्रेरणा पाकर साहित्य की सेवा की। स्वतंत्रताप्राप्ति के पश्चात् उन्होंने प्रचुर मात्रा में बालसाहित्य लिखा। उनकी कविताओं में बालरुचि और बालमनोविज्ञान का सुन्दर समावेश है। इस समय के अन्य लेखकों में रमेशचन्द्र प्रेम, द्रोणवीर कोहली, शिवमूर्तीसिंह वत्स, बालकृष्ण एम.ए. विराज, हिमांशु श्रीवास्तव आदि प्रमुख हैं।

स्वातंत्र्योत्तर युग में बालसाहित्य के महत्व को अधिकाधिक समझे जाने लगा है। बच्चों को नयी नयी सामग्री देने की ओर लेखक सजग हैं। पुराना स्वर बदलने की आवश्यकता लेखकों को महसूस हुई। बालसाहित्य लिखने वालों ने नयी विचारधारा और मान्यताओं को आगे रखकर बालसाहित्य की रचना की।

इस समय अनेक सुन्दर और उपयोगी बाल साहित्य पुस्तकें प्रकाशित हुए। राजकमल प्रकाशन, राजपालं एण्ड सन्स, आत्माराम एण्ड सन्स, शकुन प्रकाशन, उमेश प्रकाशन 'चिल्ड्रन्स बुक ट्रस्ट, वीरो आण्ड कम्पनी, किताब महल, वारणसी का हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय आदि प्रकाशकों ने इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिये। आत्माराम एण्ड सन्स दिल्ली द्वारा उस समय दो महत्वपूर्ण प्रकाशन हुए। वे हैं "प्रतिनिधि सामूहिक गीत" और प्रतिनिधि बाल सामूहिक गीत। इसका संपादन योगेन्द्रकुमार लल्ला और श्रीकृष्ण ने किया।

इस समय के लेखकों में श्री प्रसाद ने बच्चों के लिए निबन्ध लिखे। बच्चों के लिए सुरुचिपूर्ण साहित्य लिखने में श्री प्रसाद सिद्‌ध हस्त हैं।

उनके निबन्ध भी बच्चों की रुचियों तथा समस्याओं पर आधारित हैं। राष्ट्रबन्धु ने मुख्यतः कविताएं लिखीं। बच्चों के लिए लिखने में उन्हें विशेष रुचि है। वे बालसाहित्य के विकास तथा उसके अस्तित्वनिर्माण की दिशा में भी प्रयत्नशील हैं। उनकी प्रकाशित पुस्तकों में 'बाल भूषण' 'कन्तक थेया' 'वीणा के गीत' 'ये महापुरुष कैसे बने' आदि उल्लेखनीय हैं।

डॉ. रामधारी सिंह दिनकर बच्चों के लिए बहुत सरस और उपयोगी काव्य कृतियों की रचना की है। उनकी कविताओं में परंपराओं से मुक्त होकर आधुनिक जगत् और विज्ञान से युक्त विषय मिलते है। उनके द्वारा लिखित प्रमुख बालसाहित्यिक पुस्तकें हैं - 'धूप छाँह' 'मिर्च का मज़ा' चितौर का साका' आदि।

श्री चन्द्रबालसिंह यादव मयंक जी बच्चों को मनोरंजक साहित्य देनेवाले एवं शिक्षा देनेवाले साहित्य के पक्ष में हैं। उनकी कविताएँ मनोरंजक, सरल और यथार्थ के निकट होती है। उनके बालसाहित्य पुस्तकों में 'किसान गीत' 'साहसी सेठानी' 'परियों का नाच' 'सैर सपाटा' आदि प्रमुख है। श्री राम वचन सिंह आनन्दजी तो बच्चों के लिए सुन्दर और प्रेरक कविताएँ लिखी हैं। उनके 'अंगलू मंगलू' 'बात बात में वर्णमाला' आदि पुस्तकें प्रकाशित हैं। श्री विनोदचन्द्र पाण्डेय 'विनोद' जी बच्चों के प्रतिष्ठित कवियों में एक है। उनकी 'विनोदवाटिका' 'वीर सौभद्र' आदि पुस्तकें प्रकाशित हैं।

मनहर चौहान जी अपने विद्यार्थी जीवन से ही बालसाहित्य रचनाएँ कर रहे हैं। उनके 'जादूगर कबीर' जो गुजराती उपन्यास से अनूदित उपन्यास

है जो साप्ताहिक हिन्दुस्तान में प्रकाशित हुआ था। उन्होंने बच्चों के लिए अनेक कहानियाँ और उपन्यास लिखे हैं। उनके उपन्यासों में 'खूब लडी मर्दानी' 'हल्दी घाटी' तथा 'जय भवानी' आदि प्रमुख है। उनके उल्लेखनीय कहानी संकलन हैं - 'देश देश की परियाँ आईं' 'रंग विरंगी परियाँ' 'हाथी का शिकार' 'रूप और लल्ली' तथा 'पूपू'। आधुनिक जीवन के विविध पहलुओं पर कहानियाँ लिखने में उन्हें विशेष सफलता मिली है।

श्री जयप्रकाश भारती जी बालसाहित्य के अनन्य सेवक हैं। बालसाहित्य के लगभग सौ से अधिक पुस्तकों का संपादन उन्होंने किया है। उनकी रोचक पुस्तकों में 'बर्फ की गुड़िया' 'विज्ञान की विभूतियाँ' तथा 'अर्थ शास्त्र' है। बालमनोविज्ञान के अनुकूल लि्खने में भारती जी सिद्धहस्त है। 'बर्फ की गुडिया' में जहाँ परी लोक की कल्पना है वहीं उसमें विज्ञान के आधुनिक जग का भी रूप झलकता है। उनकी 'बचपन यूं बीता' शीर्षक पुस्तक में हज़ारों महापुरुषों के बचपन की बहुत ही रोचक तथा प्रेरक घटनाएँ वर्णित हैं। भारती जी बालसाहित्य के वि्कास में मिशनरी भावना से काम करने के पक्षपाती है। उनको बालसाहित्य के अखिल भारतीय पुरस्कार भी प्राप्त हो चुके हैं। उनके कुशल निर्देशन में बाल साहित्य की प्रमुख प्रकाशन संस्था 'शकुन प्रकाशन' ने केवल बालसाहित्य प्रकाशन का ही व्रत लिया।

श्री योगेन्द्र कुमार लल्ला जी कुशल लेखक एवं चित्रकार भी हैं। 'प्रतिनिधि बाल सामूहिक गान' 'प्रतिनिधि राष्ट्रीय एकांकी' 'प्रतिनिधि वैज्ञानिक कथाएँ' आदि लल्ला जी द्वारा संपादित पुस्तकें हैं। लल्लाजी ने बच्चों में 'खेल खेल में विज्ञान तथा अन्य क्रियात्मक भाव उत्पन्न करनेवाले खेलों से सम्बन्धित

पुस्तकें भी लिखी हैं। श्रीकृष्ण जी को बालसाहित्य से विशेष लगाव है। उन्होंने विशेषकर नाटक ही लिखे है। श्रीकृष्णजी रेडियो एकांकी एवं मंच एकांकी लिखने का प्रयास किया। बच्चों के लिए बाल उपन्यास मासिक के प्रकाशन का साहस हिन्दी में पहली बार श्री रत्नप्रकाश शील ने किया। सीमित साधनों के बावजूद भी 'मिलिन्द' निकला। उनकी 'विज्ञान की कहानियाँ' नामक पुस्तक भारत सरकार द्वारा पुरस्कृत हो चुकी है। इन लेखकों के अलावा शत्रुघ्नलाल शर्मा, दयाशंकर मिश्र दद्दा, वेद मित्र, देवराज दिनेश, रामकृष्ण शर्मा आदि के नाम भी विशेष उल्लेखनीय है।

1.5.1.5 समकालीन हिन्दी बालसाहित्य

समकालीन हिन्दी साहित्य में बच्चों के लिए अनेक ज्ञानप्रद, रोचक एवं मनोरंजक पुस्तकों की रचनाएँ हो रही हैं। समय के अनुसार बच्चों की मानसिक भूख को तृप्त करानेवाली पुस्तकें समकालीन हिन्दी बालसाहित्य के क्षेत्र में बहुत अधिक प्रचलित हैं। आजकल बालोपयोगी पुस्तकें बच्चों की आयु तथा उनकी रुचि के अनुसार विभिन्न रूप भावों में निकल रही हैं। उदाहरण के लिए नवसाक्षरोपयोगि नाम से बहुत छोटे बच्चों के लिए अनेक पुस्तकें निकली हैं। प्रमोद जोशी के 'स्याही की कहानी' 'पेन की कहानी' 'पेंसिल की कहानी' 'किताब की कहानी' 'कागज़ की कहानी' 'रंगों की कहानी' 'प्लास्टिक की कहानी' जगतराम आर्य के 'लाला लजपतराय' 'लक्ष्मी भाई' 'महात्मागांधि' 'वीर सवरकर' 'चन्द्रशेखर आज़ाद' 'वीर ऊधम सिंह' 'वासुदेव बलवंत फटके' 'शंकर बाम के पुत्त' 'झलकारी' 'मैना' 'जालिम सिंह स्कन्द' 'ताजकुँवारी' गौरी द्विवेदी का 'भुवन का घर संसार'

जनकराज जय का 'नागरिक और उसके अधिकार' मनोहर लाल के 'जात पाँत पूछै नहीं कोई' 'सेवा के सौ बकाम' हीरालाल बाछोतिया का 'आँगन का पेड' आदि इसके उदाहरण हैं।

समकालीन बाल उपन्यासकारों में रतन शर्मा (काजू और किशमिश) क्षमा शर्मा (होम वर्क), बानो सरताज (जंगल में मंगल), विनोद त्यागी इन्द्र (रहस्यमय लूटेरे), जयव्रत चटर्जी (आवारा लडका), नारायणलाल परमार (हरिये न हिम्मत), रामकुमार भ्रमर (भूत महल), चित्रा मुद्गल (जीवक, मणि मेखलै, जंगल का राज, सबक), शंकर बाम (भाग्य का खेल, ताना जी मालुसरे, मर्द मराठा) आदि प्रमुख है।

समकालीन बाल कहानीकारों में विजय गुप्त (फीस की जिम्मेदारी), शिवानी चतुर्वेदी (वन्य जीवों की रोमांचक कहानियाँ), शम्भूनाथ पाण्डेय (प्रेरक कथाएँ), रामेशबेदी (तेन्दुए ने इन्सान के बच्चे को पाल लिया), संजीव गुप्ता (साहसी बच्चों के कारनामे), जगतराम आर्य (अच्छी अच्छी कथाएँ), मस्तराम कपूर (पहाड़ी मैना चुलबुल), अंजु संदल (टिंकू चला नाना के घर, सपना के साथी), तनु मलकोटिया (चुनमुन और गोपा), वीरेन्द्र जैन (तीन चित्रकथाएँ) आदि प्रमुख हैं।

समकालीन बालकविता का क्षेत्र अत्यन्त सफल है। बहुत अधिक साहित्यकार इस क्षेत्र में स-जनरत है। उन्में प्रमुख कुछ बालगीतकार हैं - रेखा राजवंशी (छोटे छोटे पंख), प्रभाकिरण जैन (प्रभा किरण जैन की बाल कविताएँ), श्री प्रसाद (गीत भी पहेली भी), निरंकार देव सेवक (अक्षर गीत), अमृतलाल

नागर (सात भाई चम्पा), विनोद शर्मा (बूझो तो जानें), शेरजंग गर्ग (गीतों की आँख मिचौनी, गाओ गीत बजाओ ताली, गीतों का इन्द्रधनुष), ईशकुमार ईश (महाकवि तुलसी, प्यारे भारत तुम्हें प्रणाम); दिविक रमेश (अगर खेलता हाथी होली, तस्वीर और मुन्ना), धर्मपाल गुप्ता (लालची ब्राह्मण), चन्द्रपाल सिंह 'मयंक' (भारत के रत्न भाग-1), अशोक आन्द्रे (चूहे का संकट), रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु' (हुआ सवेरा, कुकड़ूँ कूँ), शिवनारायण सिंह (आसमान को छू आऊँ, उड़ी पतंग), अशोक (धूल के फूल, जागरण गीत), पार्थसारथि डबराल (लाक की लात), भारत भूषण (माँ तेरी सौगन्ध), शकुन्तला कालरा (करे तमाशा प्यारी मुनिया), गोपालप्रसाद घास (कदम कदम बढ़ाए जा), लता पंत (प्यारे प्यारे गीत तुम्हारे), कुलभूषण लाल मखीजा (प्यारे लगते अच्छे बच्चे), राष्ट्र बन्धु (तीस तितलियाँ), विश्वनाथ गुप्त (भारत के बच्चे), रामनिरंजन शर्मा 'ठिमाऊ' (बाल कविता बाडी), विनोद चन्द्र पाण्डेय (पढ़ते जाये बढ़ते जायें), तेजपाल सिंह 'तेज' (खेल-खेल में), अशोक एम.ए. (खिलती कलियाँ महकते फूल), सन्तराम वत्स्य (हमारा स्वास्थ्य) आदि प्रमुख है।

इनके अलावा बच्चों के लिए अनेक वैज्ञानिक साहित्य पुस्तकों तथा नाटकों की भी रचना हुई हैं। अन्य् विधाओं की तुलना में आजकल बालनाटक बहुत कम ही है। राजेन्द्र चन्द्रकान्त राय ने पर्यावरण पर नुक्कड नाटकों की रचना की है जो सात भागों में विभक्त हैं। वे हैं - 'दिन फेरें फूल के' 'बिन बुलाए मेहमान' 'तरला-तरला तित्तली आई' 'आओ पकड़ें टोंटी चोर' 'काले मेघा पानी दे' 'चलो करें वन का प्रबन्धन' 'क्योंकि मनुष्य एक विवेकवान प्राणी है' आदि।

ज्ञान-विज्ञान की पुस्तकों के रचनाकारों में हीरालाल बाछोतीया (रोग और प्रार्थमिक चिकित्सा, हमारे त्योहार) संज्ञा बाछोतिया (स्वस्थ रहेंगे स्वस्थ रहेंगे), चन्द्रपाल सिंह मयंक (हम अपना कर्तव्य करेंगे) राजेन्द्र चन्द्रकान्त राय (पेडों ने पहने कपड़े हरे) शुकदेव प्रसाद (पौधों का रोचक संसार) हरिकृष्ण देवसरे (नन्हे हाथ खोज महान, डॉ बोमा की डायरी, दुनिया की खोज) आज़ाद रामपुरी (आविष्कारों की कहानियाँ) अजय शर्मा यात्री (खेल खेल में विज्ञान) संतराम वत्स्य (हमारा शरीर, हवा की कहानी, प्रकाश की कहानी, पानी की कहानी) जगन्नाथ प्रभाकर (प्रकृति के उद्यान) आदि प्रमुख हैं।

1.5.1.6 महिला बाल साहित्यकार

इसमें ज़रा भी शंका नहीं है कि बालमन को सबसे अधिक माँ ही समझ सकती है। श्री निरंकार देव सेवक की राय में "पुरुष प्रयत्न करके भी भावों की वह कोमलता और कल्पनाओं की वह बारीकी नहीं ला सकते जिनके आधार पर सरस और मधुर लोरियाँ लिखी जाती हैं।"[1] इस प्रकार लेखकों की तुलना में लेखिकाएँ अधिक सूक्ष्म दृष्टि से बालसाहित्य रचनाएँ कर सकती हैं। हिन्दी बाल साहित्य में लेखिकाओं का योगदान उतना अधिक नहीं हैं जितने लेखकों का फिर भी प्रत्येक समय में कुछ लेखिकाओं ने हिन्दी बालसाहित्य को समृद्ध बनाने का यत्न किया है।

हिन्दी बाल साहित्य की सबसे प्रथम महिला रचनाकार गोपालदेवी है। श्रीमति गोपालदेवी 'शिशु' की संपादिका भी थीं। गोपालदेवी की अनेक

---

1 निरंकार देव सेवक - बालगीत साहित्य - पृ.सं 691

कहानियाँ 'शिशु' में प्रकाशित हुई हैं। इसमें कुछ प्रमुख कहानियाँ हैं - 'बंशीवाला' 'राजा बेटी' 'जादू का हंस' आदि।

श्रीमति तारा पांडे ने बच्चों के लिए अनेक सुन्दर गीत लिखे। श्रीमति सुभद्राकुमारी चौहान के बालगीत बडे ही मार्मिक एवं बालमन के अनुकूल थे। सुभद्राजी की 'अजय की पाठशाला जाना' बच्चों को बहुत ही पसन्द आयी थी। बाल कल्पना की उडान कितनी निश्छल, स्वाभाविक और सरल होती है, इसका सुन्दर उदाहरण सुभद्राजी की 'यह कदम्ब का पेड' कविता है। बच्चों में राष्ट्रीय भावना जगानेवाली कविताएँ भी सुभद्राजी ने लिखी हैं। 'सभा का खेल' पुस्तक की पहली कविता इसका उदाहरण है।

श्रीमति शकुन्तला सिरोठिया ने बच्चों के लिए साहस, रोचक एवं गेय गीत लिखी। उनकी प्रकाशित पुस्तकों में 'काँटों में खिलते हैं फूल' 'चमकीले फूल' 'आरी निन्दरिया' 'गीतों भरी कहानी' 'उन्होंने शिकार खेला' 'नन्ही चिडिया' 'शिशु नगर' 'बादल' और 'काली मेघा पानी दे' आदि प्रमुख हैं।

इन लेखिकाओं के अलावा श्रीमति शान्ति अग्रवाल, शकुन्तला मिश्र ('मैं उदासीन नहीं हूँ' 'सूखे सन्तरे') सुशील कक्कड़ विद्यापति कोकिल, शान्ति मेहरोत्रा, सुमित्राकुमारी सिन्हा ('अंगन का फूल' 'दादी का मटका' 'कथाकुंज'), श्रीमति गुप्त ('उर्मिला'), कुमारी कृष्णा सरीन, शोभा मिश्र, शान्तिप्रभा श्रीवास्तव, शशिप्रभा शास्त्री, विभा देवसरे डाली रिज़वी, सावित्री देवी वर्मा, मोहिनी राव, चित्रा मुद्‌गल आदि उल्लेखनीय है।

इसप्रकार मानव सभ्यता के विकास के साथ बच्चों के विकास में ज़्यादा ध्यान आने लगा। बालविकास में बालसाहित्य की भूमिका को अधिकाधिक

समझने लगा और विकास भी करने लगा। बालसाहित्य में नये नये प्रयोग, बदलते जीवन परिस्थितियों से प्रभावित है। आज बालसाहित्य जीवन यथार्थ की वास्तविक अभिव्यक्ति में ज़्यादा ज़ोर देता है। एक ओर बालसाहित्य के विकास के लिए प्रयत्न हो रहा है तो दूसरी ओर इलक्ट्रोनिक मीडिया का प्रभाव भी बच्चों पर पड़ रहा है। फिर भी बालपत्रिकाओं की संख्या एवं बालसाहित्यिक रचनाओं की छपाई की संख्या में बहुत अधिक बढावा हुआ है। हिन्दी में आज अनेक ऐसी पुस्तकें छपती है जिसकी तुलना विश्वसाहित्य से की जा सकती है।

1.5.2 मलयालम बालसाहित्य का उद्‌भव और विकास

बालसाहित्य का यदि सही मायने में इस्तेमाल करें तो यह एक देश को सीधे रास्ते पर चलाने में सक्षम हैं। लेकिन यह सचमुच निराशा की बात है कि कोई सही रूप में इसका प्रयोग करता ही नहीं है। हमारे पत्र-पत्रिकाओं एवं साहित्य समारोहों में बालसाहित्य को छोड देने की प्रवृत्ति ज़्यादा है। बच्चों का साहित्य है, इसमें गंभीर सोच-विचार की क्या बात है, सोचकर शायद लोग इसकी ओर ध्यान नहीं देते हैं। लेकिन समाज के भविष्य कर्णधारों के गढने में बाल साहित्य का जो महत्व है, इसे समझनेवाले लोग भी हर भाषा में हैं।

केरल का बालसाहित्य बहुत पुराना नहीं है और मलयालम के बाल साहित्य की वास्तविक प्रगति स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद ही हुआ है। हिन्दी बाल साहित्य के समान मलयालम बालसाहित्य का भी आरंभिक रूप लोक साहित्य में मिलता हैं। मलयालम लोकसाहित्य में भी बालसाहित्य नाम से

पृथक रूप में कुछ मिलता नहीं है। दादा नानियों की कहानियों एवं गीतों के रूप में ही यहाँ बालसाहित्य हमें प्राप्त है। हिन्दी बाल साहित्य एवं संस्कृत साहित्य से इस दृष्टि से बहुत अधिक ऋणी है। 'पंचतंत्र' 'हितोपदेश' 'कथा सरित्सागर' आदि ग्रन्थों की अनुवाद मलयालम के अनेक साहित्यकारों ने प्रस्तुत किया है। इसके अलावा रामायण, महाभारत जैसे पुराण ग्रन्थों से भी कहानियाँ एवं विषय चुनकर सरल रूप में बच्चों के लिए प्रस्तुत किया है। 'माली' एवं 'सुमंगला' इसप्रकार की पुस्तकों की रचना बहुत ही दिलचस्पी से की है। पंचतंत्र की कथाएँ, भूतों-परियों की कथाएँ, विक्रमादित्य कथाएँ तथा पुराण कथाएँ पहले से ही विभिन्न रूप में चलीं।

मलयालम के साहित्य इतिहासकार बालसाहित्य को उतनी गंभीर दृष्टि से लिया ही नहीं है। मलयालम में बालसाहित्य के बारे में पहली बार श्री एन. कृष्णपिल्लै ने ही लिखा है जो बालसाहित्य के बारे में एक खण्ड में केवल एक परामर्श ही है। वह भी मलयालम के बालसाहित्य की दयनीय दशा पर है, और आगामी वर्षों में इसके विकास की प्रत्याशा के रूप में। उनके अनुसार उस समय अनेक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। लेकिन बाल स्वभाव के अनुसार शिक्षा विधियों के अनुरूप पुस्तकों की रचना करने का प्रयत्न वैज्ञानिक रीति में शुरू नहीं हुआ था। उन्होंने इस समय ही बाल साहित्यकारों को चेतावनी दी थी कि बच्चों की रसानुभूति एवं वासनाओं को सूक्ष्म रूप से जानकर और विभिन्न उम्र के बच्चों की चिन्ताशक्ति, कल्पनाशीलता एवं सर्गवासना को आगे रखकर हमारे लाखों बच्चों को पर्याप्त मात्रा में मिलने योग्य पुस्तकों की रचना करने के लिए हमें समग्र रूप में योजनाओं का निर्माण करना चाहिए।"[1]

---

1 एन कृष्णपिल्लै कैरळियुडे कथा - पृ.सं 29

इसप्रकार बहुत पहले ही श्री एन. कृष्णपिल्लै ने बालसाहित्य के महत्व को पहचाना था और भविष्य में बालसाहित्य के सुनियोजित विकास की अभिलाषा प्रकट की थी। उन्होंने खासकर बच्चों के लिए कुछ पुस्तकों की रचनाएँ भी कीं। वे हैं - नम्मुडे आघोषङ्ङल (हमारे पर्व), संपूर्णमाय जीवितम् (सफल जीवन) इरुलुम वेळिच्चवुम (अंधेरा और रोशनी), मौलिकावकाशङ्ङळ् (मूल अधिकार), भावदर्पणम् (भावदर्पण), बिन्दुक्कळ् (बिन्दू), सीतापरित्यागम् आदि।

1993 में बालसाहित्य इन्स्टिट्यूट द्वारा प्रकाशित 'बालकैरली विज्ञान कोश' परंपरा के 'भाषा एवं साहित्य'. नामक ग्रन्थ में भी बालसाहित्य के बारे में लिखा मिला है। लेकिन इसमें भी ज़्यादा नहीं केवल कुछ बालसाहित्य ग्रन्थकारों का परामर्श मात्र मिलता है।

डॉ के.एम. जार्ज के संपादकत्व में प्रकाशित 'भारतीय साहित्य चरित्रम्' के द्वितीय भाग में डॉ. के रामचन्द्रन नायर ने बालसाहित्य के इतिहास की संक्षिप्त रूपरेखा दी है। उनके अनुसार 1900 से 1930 तक करीब 300 रचनाएँ निकलीं, 1930 से 1950 तक 400 रचनाएँ निकली होंगी। 1950 से 1970 तक 1000 कृतियाँ प्रकाशित हुईं। 1970 से 1980 तक 600 कृतियाँ प्रकाशित हुईं थीं। प्रो नायर ने केरल साहित्य अकादमी द्वारा प्रकाशित बाल-साहित्य ग्रन्थ सूची से ये आंकडे दिये हैं।

1.5.2.1 मलयालम की पहली बालसाहित्यिक रचना

मलयालम बालसाहित्य की ऐतिहासिक झांकि बडी रोचक है। जनश्रुति के अनुसार केरल में ईसा मसीह के पट्टशिष्य सेंट थॉमस आए थे।

ईसाई धर्म के प्रचार प्रसारार्थ वे केरल में आये। वे ही केरल में मुद्रण कला ले आए थे। उन्होंने ही मलयालम का सर्व प्रथम बाल साहित्य ग्रन्थ छपवाया जिसका नाम है - 'चेरु पैतङ्ङलुडे उपकारार्थम् इंग्लीशिल् निन्नु परिभाषप्पेडुत्तिया कथकळ्' याने छोटे बच्चों के लाभार्थ अंग्रेज़ी से अनूदित कहानियाँ। इसका प्रकाशन सन् 1824 ई में हुआ। अब इसकी एकमात्र प्रति लन्दन के ब्रिटीश पुस्तकालय में मिलती हैं। इसके अन्तर्गत बाईबिल के घटनाक्रम की कथाएँ हैं। इन कथाओं का अनुवाद वास्तव में आम लोगों के बीच ईसाई धर्म के प्रचार के लिए किया गया था। बाद में ऐसे कई छोटे छोटे ग्रन्थ छपते गये। इनका देखा-देखी 1868 ई में वैकम के श्री पाच्चुमुत्तु ने 'बालभूषण' नामक पुस्तक लिखी। इसका ध्येय बच्चों को सत्य, सदाचार आदि का उपदेश देना था।

ऐसा भी कहा जाता है कि मलयालम का पहला बालसाहित्य ग्रन्थ 1675 ई. में लिखित 'अंचडि' है। इसके बाद कुंचन नंबियार के 'किलिप्पाट्टु' आते हैं। तुळ्ळल् एक छन्दाश्रित काव्य विधा है, जिसे नृत्य में गायनसहित मुद्राओं से प्रस्तुत किया जाता है। नंबियार के तुळ्ळल् काव्यों के कई प्रसंग अब भी बडे मधुर लगते हैं। उन्हीं का 'श्रीकृष्णचरितम् मणिप्रवाळम्' जैसे मुक्तक काव्य आदि बच्चों को हृदयस्थ हैं।

1.5.2.2 केरलवर्मा युग

मलयालम के बालसाहित्य के इतिहास में सन् 1867 ई बहुत ही महत्वपूर्ण है। त्रावनकोर की रियासत के महाराजा ने इसी वर्ष मलयालम की पाठ्यपुस्तक समिति के रूपायन का आदेश दिया। केरलवर्मा वलियकोयित्तम्पुरान्

उस समिति के अध्यक्ष थे। उन्हें 'मलयालम के भारतेन्दु' कहा जाता है। उनके नेतृत्व में स्कूलों के लिए स्तरीकृत मलयालम पाठमालाएँ व अपठित पुस्तकें आदि तैयार की गयीं। केरलवर्मा और अन्य विद्वानों ने भारतीय और विदेशी लेखकों की नीतिकथाएँ, जीवनी प्रसंग, लोक कथाएँ आदि अनूदित करके संक्षिप्त करके या रूपान्तरण करके मलयाल़म में प्रस्तुत किये। अनेक ताल एवं ध्वनिप्रधान बाल कविताएँ भी इस दौरान रची गयीं। इसप्रकार मलयालम बाल-साहित्य का विकास उत्तरोत्तर होने लगा।

उस समय बालसाहित्य के अन्तर्गत मुख्यतः दो प्रकार की पुस्तकों उपस्थित की गयी थीं। एक तो अंग्रेज़ी में प्रकाशित प्रमुख बालसाहित्य ग्रन्थों का पुनराख्यान था। 'गुलिवर की यात्राएँ' 'सिन्दवाद की जहाज यात्रा' 'राबिनसन क्रूसो' आदि इनमें प्रमुख हैं। उसी प्रकार रामायण, महाभारत, प्राचीन संस्कृत काव्य, नाटक आदि के प्रसंगों का भी पुनराख्यान किया गया। मलयालम के आरंभिक बालसाहित्य को कोट्टारत्तिल् शंकुण्णि का योगदान विशेष स्मरणीय हैं। उन्होंने 'विश्व चरित्रमाला' ल़िखी। किन्तु ऐतिह्यमाला के आठ भाग ही उनके प्रमुख ग्रन्थ हैं। ऐतिह्यमाला में केरल की जनश्रुति की कई कथाएँ प्रस्तुत हैं। हाथी कथाओं की एक बडी संख्या अलग से है। ऐतिह्यमाला की कई कथाएँ भूमिका सहित हिन्दी में 'केरल की जन कथाएँ' नाम से कोचिन विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग से डॉ. एन.ई. विश्वनाथ अय्यर के संपादन में प्रकाशित हुई हैं।

1900 के बाद बालसाहित्य में अनेक पुस्तकें प्रकाशित हुई। 1900 ई में सी केशवपिल्लै का नीतिवाक्यङ्ङल् (नीति वाक्य) प्रकाशित

हुआ। इसके बाद 1903 ई. में श्री पाच्चुपिल्लै के 'बाल मित्रम्' - दूसरा प्रकाशन और 1905 में श्री के परमुपिल्लै के राजकथकळ् (राजा कथाएँ) प्रकाशित हुए। परमुपिल्लै ने अंग्रेज़ी लोकसाहित्य के आरतर राजा को आर्द्रमानस के राजा के रूप में चित्रण किया है। इसके अलावा शैक्सपियर, टेन्निसन आदि महान लेखकों की कृतियाँ एवं चोसर की कहानियाँ जैसी अनेक पुस्तकों का अनुवाद भी बच्चों के अनुरूप सरल एवं रोचक ढंग से उन्होंने किया।

1990 में श्री मूरक्कोत्तु कुमारन के 'शाकुन्तलम् पुनराख्यान' 1911 में श्री के गोविन्दन तम्पि के 'विदेशीय बालन्मार' (विदेशी बालक) आदि प्रकाशित हुए। इसमें 'विदेशीय बालन्मार' नामक ग्रन्थ उस समय के उपदेशप्रधान एवं नैतिक मूल्यों को प्रमुखता देनेवाले पुनराख्यानों से पूर्णतः भिन्न हैं। विभिन्न देशों के बच्चों के जीवन, रीति-रिवाज़ रहन-सहन, शिक्षा-विधियाँ आदि के बारे में इसमें प्रतिपादित किया गया है। इस काल में अनेक नीति कथाएँ एवं पुनराख्यान प्रकाशित हुए थे। इस लीक से हटकर अलग दीखती पुस्तक है श्री कुन्नत्तु जनार्दन मेनोऩ् की 'कुचेलन'। यह पुराने कुचेलन (सुदामा) की कहानी का पुनराख्यान नहीं है। इसकी भूमिका में ग्रन्थकार ने स्वयं इसे एक परीक्षण बताया है। उनके अनुसार नये समाज के लिए लिखने के कारण इसका स्वरूप बिलकुल नये रूप में है। इसलिए लोग इसे कैसे स्वीकार करेंगे इसका परीक्षण भी है। जनार्दन मेनोन का कृष्ण एक आम मानव है, भगवान नहीं। सुदामा घर में आ गये तो कृष्ण उनका स्वागत करके द्वारका में रहने का इन्तज़ाम करके एक यात्रा के लिए जाता है, और वापस आता है एक महीने के बाद। उस एक महीने की अवधि में कृष्ण कुचेलन के गाँव में जाकर उसके लिए

सुन्दर महल बनाता है। लौटते वक्त युधिष्ठिर को देखकर एक महीने के लिए 1000 रु के तनख्वाह में उसे उस समय के सभी विद्यालयों के अध्यक्ष के पद पर नियुक्त करने का प्रबन्ध भी करके वापस जाता है। लेकिन इस पुस्तक को उतना प्रचार नहीं मिला। इसके बाद उनके द्वारा रचित 'बालरामायणम्' सामान्य तरीके से लिखित पुस्तक है।

1.5.2.3 कवित्रय का युग

कवित्रय के समय बच्चों के लिए अनेक बालसाहित्यिक ग्रन्थों के प्रकाशन हुए। कुमारनाशान कवित्रय के प्रमुख थे। आधुनिक मलयालम कविताओं का प्रारंभ श्री कुमारनाशान की पुष्पवाटि की कविताओं से माना जाता है। पुष्पवाटी की प्रथम कविता 'तितली' पर है जो उस समय के बालकों को बहुत ही पसन्द थे। इस संग्रह के अधिकाँश कविताएँ बच्चों को कंठस्थ हैं।

वल्लत्तोल और उल्लूर ने भी बालोचित काव्य लिखा। फिर भी आशान की रचनाएँ 'पुष्टवाटी' और 'बालरामायणम्' विशेष प्रसिद्ध हुईं। वास्तव में कुमारनाशान ने नीतिपरक रचनाओं के कटघरे से बालसाहित्य को मुक्ति दी। 'पुष्पवाटी' कविता संकलन का प्रकाशन 1922 में हुआ था। इस संकलन की आरंभिक कविताएँ में सरल, सुन्दर एवं प्रकृति के निकट की कविताएँ हैं। लेकिन अंत में आते-आते अधिक गहन एवं चिन्तायुक्त कविताओं को जोडकर कवि ने बच्चों को सरलता से संकीर्णता की और परिचित से अपरिचित की ओर ले चलने के मनोवैज्ञानिक पहलू को भी रखा है।

महाकवि उल्लूर के 1935 में प्रकाशित 'दीपावली' काव्य संकलन में 500 श्लोकों को समाहित किया गया है। उल्लूर के हाथों से प्रज्वलित यह दीप अनेक पीढियों को प्रकाश दिया। ये गीत केवल बच्चों को ही नहीं बलिक बडों के मन को भी भा गये। उनके प्रतिभावान हृदय से अंग्रेज़ी नर्सरी गीतों से भी प्रतियोगिता करने वाले सुन्दर गीत बच्चों को मिला। इसमें 'काक्के काक्के कूटेविटे' (कौआ कौआ नीड कहाँ) जैसे लोकगीतों के अन्तर्गत आनेवाले गीतों के संकलन के साथ साथ 'फलिच्चा प्रार्थना' (फलीभूत प्रार्थना) जैसे अर्थपूर्ण कविताएँ भी हैं। मलयालम के 'अक्षरश्लोकम्' खेल में संस्कृत की कविताओं के समान मलयालम के कवित्रयम् की कविताओं का प्रयोग भी होता है। यह हिन्दी की अन्ताक्षरी की जैसी है। मात्र मलयालम कविताओं को गाकर खेलनेवाले 'काव्यकेलि' नामक खेल भी है। इसमें भी इन तीनों कवियों की कविताओं का प्रयोग करना बच्चे अधिक पसन्द करते हैं।

'बालरामायणम्' के बाद कवियूर वेंकटाचलम् अय्यर की 'बाल भारतम्' निकली। इस समय श्री के.सी. केशवपिल्लै की 'अभिनयमालिका' भी लोकप्रिय हुई। 1920 से लेकर 1939 तक के समय में सी.वी. रामनपिल्लै, ई.वी. कृष्णपिल्लै, आट्टूर कृष्ण पिषारटी, महाकवि कुट्टमत्तु, मुरक्कोत्तु कुमारन आदि महान साहित्यकारों की रचनाओं से बालसाहित्य संपुष्ट थे। 1939 से 1947 तक के समय में बालसाहित्य नहीं के बराबर थे।

1.5.2.4 स्वातंत्र्योत्तर बाल साहित्य

स्वतंत्रता के बाद ही फिर सुनियोजित ढंग से बालसाहित्य ग्रन्थों की रचना होने लगी। इसप्रकार बालसाहित्य के क्षेत्र में नयी ऊर्जा के पीछे

माथ्यु एम कुष़वेल्लि के 'बालन' पत्रिका का प्रकाशन था। मलयालम के सूचनाप्रधान एवं लोकप्रिय वैज्ञानिक साहित्य का युगप्रवर्तक होने का श्रेय श्री. मैथ्यू एम. कुषवेल्लि (1905-1974) को है। उन्होंने दीर्घदर्शिता से विविध विषयों पर स्तरीकृत 'बाल साहित्य की ग्रन्थमाला' प्रकाशित की। उन्होंने आठ छोटे खण्डों में 'विज्ञान नाम से 'विश्व विज्ञान कोश' प्रकाशित किया। उन दिनों की स्थिति को देखते हुए यह बहुत बडी उ़पलब्धि कही जा सकती है। आगे उन लोगों को इनसे बडी मदद मिल सकी जिन्होंने विश्व विज्ञानकोश तैयार कराए।

श्री. जी. शंकरक्कुरुप्पु प्रथम 'ज्ञानपीठ पुरस्कार' विजेता है। उन्होंने बडों के लिए दार्शनिकता भरी एवं स्वच्छन्दतावादी कविताएँ लिखी साथ साथ बच्चों के लिए सुन्दर बाल कविताओं के तीन संग्रह भी प्रस्तुत किये। इसमें 'इलम्‌चुण्डुकल्' (नन्हे ओंठ) और ओलप्पीप्पी (पत्तल की तुरही) बहुत ही प्रसिद्ध हैं। उस समय 'ओलप्पीप्पी' कवितासंकलन का आकार प्रकार ही आश्चर्यपूर्ण था। इस कविता द्वारा कवि ने बच्चों को सभी जीव-जन्तुओं का परिचय कराया हैं। उनके 'विश्वदर्शनम्' नामक कविता बच्चों एवं बडों को भी बहुत ही अच्छा लगी। विशेषकर इस संकलन की 'मञ्ञक्किळि' (पीला पंछी) 'चन्दनक्कट्टिल' (चन्दन का बटखरा) नामक कविताएँ।

जी शंकरक्कुरुप्पु के समकालीन अन्य कवियों में श्री वैलोप्पिल्ली श्रीधरमेनोन, श्री. पी. कुञ्ञिरामन् नायर, श्री इडश्शेरी गोविन्दन नायर, श्री अक्कित्तम् अच्चुतन नंपूतिरी, श्री पाला नारायणन नायर, श्री नालांकल कृष्णपिल्लै आदि प्रमुख हैं।

वैलोप्पिल्ली के 'कुन्निमणिकल' (घुघुंची), पच्चक्कुतिरा (हरा घोडा), मिन्नामिन्नी (जुगुनू) आदि तीन संकलनों में संकलित कविताएँ बहुत ही प्रसिद्ध हुईं। इसमें हान्स आन्डर्सन की 'द अगली डब्लिङ' के आधार पर लिखी गयी कविता 'वर्कत्तु केट्टा तारावु' (बदसूरत बतख), लोक कथा से ली गयी 'पेण्णुम् पुलियुम्' (नारी और चीता) नामक कहानी को आधार बनाकर लिखित कविता और उडीसा के एक छोटा बालक सनाथन पर रचित कविता आदि विशेष उल्लेखनीय हैं।

मलयालम बालकविता के जगत् में कुञ्ञुण्णि माष (कुञ्ञुण्णि मास्टर) के बराबर का दूसरा कोई कवि नहीं हैं। कुञ्ञुण्णि माष के समान कुञ्ञुण्णि माष ही है। कुञ्ञुण्णि माष कालिकट के श्रीरामकृष्ण आश्रम हाईस्कूल के अध्यापक रहे। उन्हें बच्चे बहुत ही पसन्द थे और बच्चों को कुञ्ञुण्णिमाष भी। उन्होंने अपनी कविताओं द्वारा बच्चों के सामने एक नया जगत् खोलकर रख दिया। छोटे और हृदय तक पैठनेवाले शब्दों की कविताएँ उनकी सबसे बडी विशेषता है। उनकी कविताएँ व्यंग्य प्रधान एवं तालात्मक है। वे अपनी भाषा को एवं केरल की संस्कृति को बहुत ही पसन्द करते थे। इसलिए केरल की संस्कृति को तोडनेवाली बातों पर उन्होंने खूब व्यंग्य किया है और केरल की सांस्कृतिक विशेषताओं, आचार-विचार एवं प्रकृति को उन्होंने सुन्दर ढंग से अपनी कविताओं में उभारा है। उनकी चुभती कविताओं में एक कविता बहुत ही मशहूर है - इसका भाव है कि मेरा बच्चा जन्मते ही अंग्रेज़ी सीखें, इस ध्येय से मैं ने अपनी पत्नी को प्रसूति के लिए इंगलैंड भेजा।

कुञ्ञुण्णिमाष आकार में भी बहुत छोटे हैं। उन्होंने स्वयं कहा है - 'पोक्कमिल्लात्तताणेन्टे पोक्कम्' याने बडा नहीं हूँ यही मेरा बढ़प्पन है। उनके आकार और प्रकृति बच्चों को बहुत अधिक पसन्द है। वे हमेशा छोटा ही रहकर विनयपूर्ण होकर बडे एवं सबसे विशाल हृदय का अधिकारी बने हुए हैं। उनकी कविताएँ मनोरंजन देकर बच्चों की जीभ न में सदा आती रहती है और ज्ञान का नया प्रकाश देकर हृदय में भी। उनका अनुकरण करना बहुत ही कठिन बात है।

'अक्कित्तम् की बालकविताएँ' से भी बाल साहित्य को श्रीवृद्धि हुई है। उनकी 'कण्डवरुण्डो' नामक कविता बच्चों को बहुत ही पसन्द थी। इसमें चन्तु नामक बालक की कहानी है। एक अन्य सुन्दर कविता है 'अय्यप्पन विळक्किन्टे कथा' (अय्यप्पन दिये की कथा)। इसमें स्त्रियों के साज-सवार के प्रति जो भ्रम है इसपर थोडा सा व्यंग्य भी है। माँ ने बहुत सवेरे बच्चे को उठाया था, मन्दिर जाने के लिए माँ की सजावट तो अभी तक खत्म नहीं हुई। उस तरह प्रतीक्षा तो अभी तक खत्म नहीं हुई। उस तरह प्रतीक्षा करते करते समय आठ, दस, ग्यारह और बारह के ऊपर हो गया। लेकिन माँ का साज सँवार अभी भी खतम नहीं हुआ। इसप्रकार प्रतीक्षा करते करते बच्चा बडा हो गया और बैठे-बैठे बाल सफेद हो गये। यह कविता बच्चों को बहुत ही हँसाने लायक है। माँ को चिढ़ाने के लिए बच्चे यह कविता गाते हैं।

बालकहानी के क्षेत्र में सबसे पहले कारूर का नाम आता है। लोक कहानियाँ किस प्रकार बालकों में आश्चर्य, आनन्द एवं विस्मय जगाती हैं उसका मौजूदा प्रमाण है कारूर की कहानियाँ। कारूर सरल, शान्त, मित भाषी

और संगठनकुशल व्यक्ति थे। बच्चों के मनोविज्ञान की गहरी पैठ उनमें थी। बडी सरल, पर मोहक भाषा में कारूर ने बाल कथाएँ लिखीं। उनके 'आनक्कारन्' (महावत), अंचु कडलासु (पाँच कागज़ात) 'राजकुमारियुम् भूतवुम्' (राजकुमारी और भूत) 'एन्ने राजावाक्कणम् (मुझे राजा बनाओ), 'सम्मानम्' (पुरस्कार) आदि बहुत प्रसिद्ध हैं।

उस समय के अन्य कहानिकारों में सी.ए. किट्टुण्णी - अण्णारकण्णन (नन्ही गिलहरी), उरूब - अंकवीरन् (योद्धा), मल्लनुम् मरणवुम् (योद्धा और मृत्यु), ललितांबिका अन्तर्जनम - गोसाई परञ्ञा कथा (कहानी जो गेटे ने कही थी) तेन्तुळ्ळिकळ् (शहद की बून्दें) माणिक्कनुम् कुट्टियुम् (माणिक्कन और बच्चा) एम.टी. वासुदेवननायर - माणिक्यक्कल्लु (माणिक्य) आदि प्रमुख हैं।

'मालि' (माधवन नायर) पुनराख्यान के रूप में बाल साहित्य को लिखनेवाले सशक्त हस्ताक्षर हैं। वे आकाशवाणी के उच्च अधिकारी के पद से अवकाश ग्रहण करके स्वतंत्र्य साहित्य साधना में लगे थे। कथा कथन की कला में, खासकर बच्चों के मन में हर्ष, आश्चर्य, रस, करुणा आदि संवेदना भरने में बेजोड हैं। रामायण, महाभारत, भागवत आदि माली ने सुन्दर एवं सरल ढंग से बच्चों तक पहूँचाया। इसप्रकार 'मालिरामायणम्' 'मालि भारतम्' 'मालि भागवतम्' आदि अनेक पुनराख्यानों के अलावा 'सर्कस' नामक बाल उपन्यास एवं अनेक बालकथा संग्रह भी उन्होंने लिखे हैं। उनके 'जंतुस्तान' 'सर्वजित्तिन्टे साहसिक कथकल' (सर्वजित की साहसिक कहानियाँ) आदि भी प्रमुख हैं।

श्री. पी. नरेन्द्रनाथ कुतूहलवर्धक और प्रभावशाली बाल कथाएँ और बाल उपन्यास के लेखक हैं। उनके 'इत्तिक्कुञ्ञन' (छोटुआ), 'कुञ्ञिक्कूनन'

(नन्हा कूबडा) 'विकृतिरामन्' (नटखट राम) आदि रचनाओं के पात्रों ने भी पुराणपात्रों के समान बच्चों के मन को बहलाया। श्रीमति सी पारुक्कुट्टियम्मा ने भी पुराणकथाएँ बच्चों को परिचित करवायी। सुमंगला ने पंचतंत्र कथाओं को सुन्दर ढंग से बच्चों तक पहूँचाया। उनके 'मिठायिप्पोति' (मिठाई की पैकट), 'तंककिङ्ङिणी' (सोने की घंटिका) 'मंचाडिक्कुरु' (गुँजा), नेय्यप्पम् (पुआ) आदि रचनाएँ नाम से ही बच्चों को आकर्षित करनेवाली हैं।

श्री के.वी. रामनाथन के 'अप्पुक्कुट्टन' 'गोपी' 'अद्भुतवानरन्मार' (अनोखे बन्दर) 'अद्भुत नीराळी (अनोखे अष्टबाहु) आदि वैज्ञानिक परिवेश के साथ लिखी गयी बालकहानियाँ हैं। इन कहानियों को मलयालम बालसाहित्य का सबसे पहला 'ट्रिलेजी' कह सकते हैं। श्री के.एन. दामोदरन नायर ने देश-विदेश के क्लासिक उपन्यासों को बालकों के लिए पुनराख्यान किया है। इस दर के लेखकों में श्री एवूर परमेश्वरन का नाम भी प्रसिद्ध है। बाल कविताओं की रचना में श्री एवूर परमेश्वरन अग्रणी हैं।

श्री पी.ऐ. शंकरनारायणन् प्रो पन्मना रामचन्द्रनायर, श्री सी जे मण्णुमूड, वी.ए केशवन नंबूतिरी आदि बडे लोकप्रिय बालकवि रहे हैं। नन्दनार के 'उण्णिक्कुटन्टे लोकम्' (उण्णिक्कुट्टन की दुनिया) एक बहुत ही लोकप्रिय पुस्तक है। इसमें केरल की गाँव की परिस्थितियाँ, चार साल उम्र के उण्णिक्कुट्टन की शरारतें एवं मासूमियत उण्णिक्कुट्टन की आँखों से दिखायी देने वाले बाह्य जगत का चित्रण आदि बहुत ही सुन्दरह ढंग से किया गया है। इसमें तीन कहानियाँ संकलित हैं, वे हैं - 'उण्णिक्कुट्टन्टे ओरु दिवसम्' (उण्णिक्कुट्टन

का एक दिन), 'उण्णिक्कुट्टन वळरुन्नु' (उण्णिक्कुट्टन बडा हो रहा है) 'उण्णिक्कुट्टन स्कूळिल्' (उण्णिक्कुट्टन स्कूल में) आदि।

मलयालम नाटकों के क्षेत्र में बालनाटक उतना अधिक नहीं है। मलयालम में बालनाटक की धारा कम विकसित ही है। पारसी रंगमंच और तमिल रंग मंच के प्रभाव के युग में नाटक के प्रारंभिक खण्ड में दो बालपात्रों द्वारा स्वागतगान जैसा होता था। प्रारंभिक नाटकों में कुट्टमत्त का रचा बालगोपालम प्रसिद्ध हुआ। वह भी आधुनिक संकल्पना के अनुसार बालनाटक की कोटि में नहीं आता। सही बालनाटक वास्तव में स्वतंत्रता के बाद ही लिखे गये।

मलयालम के प्रसिद्ध प्रयोगधर्मी नाटककार है 'प्रो जी शंकरपिल्लै। उन्हें 'मलयालम नाटक के सम्राट' कहा जाता है। उन्होंने बच्चों के लिए नाटक लिखने में कभी भी हिचका नहीं। उनके प्रमुख नाटक हैं - 'पुष्पकिरीटम्' (पुष्प मुकुट), 'गुरु दक्षिणा' 'मद्दलम' (ढोलक), 'ओरु कूट्टम् उरुम्पुकल' (चींटियाँ) आदि। उनकी प्रेरणा और प्रभाव से दक्षिण केरल के वेंजारमूडु गाँव में रंगप्रभात नामक बाल थियेटर का आरंभ हुआ। श्री शंकरपिल्लै ने वहाँ स्वयं कुछ नाटक प्रस्तुत किये। अन्य कुछ देशी - विदेशी निर्देशक भी वहाँ मंचप्रयोग करने आये हैं।

इसके अलावा उस समय बालकों के लिए लिखे गये नाटकों में कैनिक्करा के 'वाल्यक्कारत्ती' (नौकरानी) तिक्कोडियन के 'मष़विल्लिन्टे नाट्टिल' (इन्द्रधनुष के देश में), अक्कित्तम के 'ई एट्टत्ति नोणे परयू' (यह दीदी झूठ ही बोलती है), तायाट्टु शंकरन के 'वन भोजनम्' (वन भोजन) वारियत्तु कुट्टिराम

अध्याय तीन

हिन्दी और मलयालम के लोकगीतात्मक बालगीत

3.0 प्रस्तावना

बचपन जीवन का सबसे सुन्दर समय है। यही जीवन की प्रारंभिक दशा है। मानव जीवन की इस प्रारंभिक दशा को काफी ध्यान के साथ देखना परखना है क्योंकि यही भविष्य जीवन की नींव है। बच्चे भविष्यसमाज का निर्माणकर्ता भी हैं। इसलिए उन्हें अच्छी शिक्षा एवं अच्छा जीवन प्रदान करना है।

अक्सर कहा जाता है कि बच्चों के मन को समझ पाना अतल अंधकारमय समुद्र में मोती खोजने के समान बहुत ही कठिन काम है। यह बिलकुल सच है क्योंकि बच्चों के मन में कब, कैसा भाव किस क्रम में उठता है इसे समझ पाना बडे-बडे विद्वानों के लिए भी आसान कार्य नहीं है। लेकिन बच्चों के हृदय पर शासन करने की क्षमता उन गीतों को है जो लोकगीतों के अन्तर्गत बच्चों के लिए विशेष रूप में मिलते हैं। क्योंकि इसमें सहज ही बालमनोविज्ञान का योग है। ये गीत बच्चों को भावना के जगत् में विचरण कराते हैं साथ ही जीवन की वास्तविकताओं का ज्ञान भी करानेवाले हैं। याने मनोरंजन के साथ-साथ ये गीत सामाजिक मूल्यों के प्रति उन्हें सजग कराते हैं।

3.1 बालगीत स्वरूप

बालगीत बालसाहित्य के सबसे प्रमुख विधा है। बालसाहित्य की अन्य विधाओं की तुलना में बालगीत सबसे ज़्यादा प्रभावशाली है। बालमन को सबसे अधिक प्रभावित कराने की क्षमता बालगीतों की खासियत है। इसप्रकार बालसाहित्य के क्षेत्र में बालगीतों का अत्यधिक महत्व है तथा बालगीत ही सबसे ज़्यादा प्रचलित हैं।

डॉ हरिकृष्ण देवसरे बालगीतों को सबसे पुराने एवं सबसे फैले लोकगीत मानते हैं। उनकी राय में बालगीतों की महत्ता उनकी लय के कारण हैं। संसार के सभी बालगीतों में विषयवस्तु की समानता को वे विश्वव्यापी मानते हैं।[1]

डॉ निरंकार देव सेवक ने बालगीतों के बारे में इसप्रकार बताया है कि "बच्चे परिस्थितियों का ज्ञान सबसे पहले देख-सुन और समझकर उतना प्राप्त नहीं करते, जितना शारीरिक चेष्टाओं और संस्पर्श के आधार पर प्राप्त करते हैं। वे जिस वस्तु को देखते हैं उसे हाथ में लेकर तोडकर, नोंचकर या खोलकर भी देखना चाहते हैं। देखने मात्र से उनकी जिज्ञासा शान्त नहीं होती। बडे लोग फूल को बाग में खिला हुआ देखकर प्रसन्न हो सकते हैं, पर बच्चे इस प्रसन्नता के साथ-साथ उसे तोड़कर हाथ में·लेने की स्वाभाविक इच्छा को रोक नहीं सकते। भले ही वे उसे तुरन्त नोंच-नोंचकर धरती पर फेंक दें। बालकृष्ण के चान्द को देखकर उसे पकड लेने के लिए मचलने की बात साहित्य में

---

1 डॉ. हरिकृष्ण देवसरे हिन्दी बालसाहित्य एक अध्ययन - पृ. सं. 26

प्रसिद्ध ही है। शारीरिक चेष्टाएँ करने की प्रवृत्ति उनमें इतनी तीव्र और स्वाभाविक होती है कि वह कभी कभी निरर्थक ही उछलते-कूदते, झूमते-झूमते और चलते-फिरते थकते नहीं। उनकी इस प्रकार की चेष्टाओं से ही उनके गढ़े हुए उस बालगीत साहित्य का निर्माण होता है जो न कभी छपता है न प्रकाशित होता है, पर निरन्तर गाया दुहराया जाने के कारण वह धीरे धीरे बच्चों के समाज में फैला जाता है और शताब्दियों तक उनका मनोरंजन करता रहा हैं।"[1]

इसप्रकार श्री निरंकारदेव सेवक ने बालगीतों का गढ़न कैसे होता है इसके बारे में विस्तृत रूप से बताया है जो बिलकुल सही भी है, क्योंकि इसमें बालस्वभाव का सच्चा स्वरूप चित्रित है तथा सहज मनोविज्ञान के योग के साथ उन्होंने अपना विश्लेषण प्रस्तुत किया है। लेकिन अपने एक निबन्ध में बालगीतों की परिभाषा देते समय उन्होंने बताया है कि "बालगीत बालसाहित्य का एक अभिन्न अंग है। बडों की भाषा में जिसे कविता कहा जाता है उसे ही बच्चों की भाषा में बालगीत कहते हैं।"[2] यह परिभाषा उतना उचित नहीं लगती। निरंकार देव सेवकजी ने स्वयं अपनी बालगीत साहित्य नामक पुस्तक में गीत और कविता के बीच के अंतर को स्पष्ट करते हुए बताया है कि "कविता का भावक्षेत्र बहुत व्यापक और निस्सीम है। संसार में मनुष्य जो कुछ सुन, सोच, समझ या कल्पना कर सकते है वह सब उनकी कविता का विषय हो सकता है। पर गीतों की परिधि इतनी व्यापक तथा विस्तृत नहीं होती। गीत

---

1 निरंकार देव सेवक बालगीत साहित्य पृ सं. 21-23

2. डॉ निरंकार देव सेवक बालगीत परंपरा, विकास संभावनाएँ पृ सं 53

मन की एक विशेष स्थिति में अपने आप ध्वनित होते हैं। प्रयत्न से एक एक शब्द जोड़कर रखने और उन्हें अलंकारों का परिधान पहनाने से गीत सामाजिक नियम और मर्यादा के बन्धन भी स्वीकार नहीं करते। इसप्रकार गीत और कविता में अन्तर हैं।"[1] क्षेत्र व्यापकता या विषय की दृष्टि से इसप्रकार गीतों को संकुचित बताना ठीक नहीं है और आज की कविता अलंकारों के बन्धनों से मुक्त है इसलिए कविता को उस दृष्टि से संकुचित नहीं बता सकता। लेकिन एक बात स्पष्ट है कि गीतों में गेयता अधिक है। जो भी हो बडों की कविता को बच्चों की भाषा में गीत मानना इन कारणों से उचित नहीं लगती।

अंग्रेज़ी के 'चिल्ड्रंस सांग' में बालगीतों की परिभाषा यों दी गयी है "खेल के गीत, गिनती के गीत, ऐतिहासिक गाथाएँ, लोरियाँ तथा बच्चों के स्वनिर्मित गीत आदि बालगीत के अन्तर्गत आते हैं।"[2] यह परिभाषा पूर्ण नहीं कही जा सकती। क्योंकि इसमें बालगीतों के अन्तर्गत आनेवाले विभिन्न गीतों का परामर्श ही किया गया है। बालगीत का स्वरूप क्या है यह इसके अन्तर्गत वहीं है। हिन्दी साहित्यकोश में बालगीतों की परिभाषा यों दी है :- "बच्चों के गीतों में अद्‌भुत कल्पना का पटाक्षेप होता है अथवा शिक्षा होती है। ये गीत उनके खेलों से सम्बन्धित होते हैं।"[3] यह परिभाषा भी पूर्ण नहीं कही जा सकती। इसमें बालगीतों के सम्बन्ध में आंशिक जानकारी ही है। लेकिन यह

---

1 डॉ. निरंकार देव सेवक - बालगीत साहित्य - पृ. सं. 10

2. The childrens songs include the game songs, counting out rimes, mocking songs, historical verges song or chanted by children themselves and the lullabies etc, Theresa C. Brake by Standard Dictionary of Folklore, Mythology and Legend. Vol. I, Page. 219.

3. हिन्दी साहित्य कोश पृ सं 659

बात स्पष्ट है कि इन दोनों परिभाषाओं में बालगीत से सम्बन्धित कुछ न कुछ बातें अवश्य कही गयी हैं।

डॉ विजयलक्ष्मी सिन्हा के अनुसार "बालगीत उन गीतों को कहते हैं, जिन्में बच्चों के मन को, आन्तरिक अनुभूतियों और कल्पनाओं को उन्हीं की भाषा में व्यक्त किया गया हो।"[1]

सरल शब्दों में बच्चों के लिए जो गीत लिखे जाते हैं या गाये जाते हैं वे ही बालगीत हैं। बालगीत बच्चों को मनोरंजन प्रदान करते हैं और शिक्षा देते हैं। इन गीतों के माध्यम से बच्चे अनजाने ही शिक्षा प्राप्त करने या योजनाबद्ध कार्यक्रम के अनुसार पढ़ना पसन्द नहीं करते। उनके मन में हर चीज़ को लेकर जिज्ञासा अवश्य होती है लेकिन वे खेलना ज़्यादा पसन्द करते हैं। हो सकता है पुरानी पीढ़ी के लोगों ने बच्चों के इसी मनोविज्ञान को आधार बनाकर बालगीतों का निर्माण किया हो। बालगीतों के सिवा बच्चों को मनोरंजन प्रदान करने एवं उसके ज्ञान को बढाने में सहायक इतनी अच्छी सामग्री और क्या हो सकती है?

संक्षेप में कहा जा सकता है कि बालगीत ऐसा होना चाहिए जो बच्चों में सहज सात्विकता उत्पन्न करें, उनके कुतूहल का पोषण और प्रवर्धन करें। जिज्ञासा की तृप्ति करें। बालगीतों का विषय ऐसा होना चाहिए जिससे बालक संकीर्णताओं से ऊपर उठकर सच्ची मानवता और विश्वकल्याण की भावना से अपना जनजीवन व्यतीत करने का संकल्प लें।

---

1 डॉ विजयलक्ष्मी सिन्हा - आधुनिक हिन्दी में बालसाहित्य का विकास पृ सं 58

3.1.1 बालगीतों का महत्व

बालगीत बच्चों के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास करने में बहुत सहायक होते हैं। अधिकाँश बालगीत मनोरंजक होने के साथ साथ उपदेश प्रधान भी हैं। इन गीतों से बच्चों को अनेक शिक्षा मिलती है जो उनके आगे के जीवन में बहुत सफल सिद्ध होता है।

बच्चों को जीवन मूल्यों से परिचित कराने में बालगीतों का महत्वपूर्ण योगदान है। लोक बालगीत बच्चों को समाज के निकट रखते हैं। बच्चों को प्रकृति से जोडकर रखता है। पशु-पक्षियों, पेड़-पौधों तथा फूलों से सम्बन्धित गीत बच्चों को प्रकृति के निकट लाते हैं।

किसी भी संस्कृति या भाषा में पालने के गीतों के बिना बालगीत अधूरा है। जहाँ भी छोटे बच्चे हों वहाँ पालने के गीत भी ज़रूर होगी। डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय के अनुसार "पालने के गीतों का शिशु के स्नायुओं पर अच्छा प्रभाव पड़ता है।"[1]

किसी भी प्रदेश में खेले जानेवाले खेल जीवन से सम्बन्ध रखते हैं। एक सामाजिक प्राणी होने के नाते अपने आप को बनाये रखने के लिए बच्चों में जो क्षमता होना चाहिए उसे जगाना अधिकाँश खेलों का उद्देश्य है। आँख मिचौनी, कबड्डी जैसे खेलों में एक लड़का अकेले एक दल के लडकों के साथ खेलता है। वह अकेला होकर भी लड़कर जीतना चाहता है। समाज

---

1 डॉ कृष्णदेव उपाध्याय लोकसाहित्य की भूमिका पृ. सं 149

में जब उसे अकेला जीना पडता है तब कमज़ोर न होकर जीवन के साथ लड़कर जीने की शिक्षा इन खेलों के ज़रिये मिलती है।

अधिकाँश खेलों में सहयोग की प्रवृत्ति मिलती है। सहयोग से खेलने के कारण खिलाड़ी को अपना अह्म त्यागना पडता है और दूसरों के लिए मिलकर खेलना पडता है। दूसरों से समझौता करने के लिए इन खेलों के माध्यम से उचित शिक्षा मिलती है। आज के यांत्रिक कम्प्यूटर युग की सबसे बडी बुराई भी मानव के बीचों बीच का लडाई है। बालगीतों की सहयोग की प्रवृत्ति बच्चों को इस बुराई से दूर रखता है।

बालस्वभाव की एक बडी विशेषता है उत्सुकता। बालगीत बच्चों की उत्सुकता को एक हद तक शान्त करता है। बच्चों की उत्सुकता उनकी ज्ञानोपार्जन हेतु है। बालगीत बच्चों को ज्ञानोपार्जन का मार्ग भी है। बालगीत उन्हें ज्ञानविकास का सही मार्ग दिखाता है।

बालगीत बच्चों में कल्पनाशक्ति का विकास करता है। उदाहरण के लिए पशु-पक्षियों से सम्बन्धित एक बालगीत :-

"सुन सुन सखी पंछी का ब्याह था
बगुला बाराती आये, जुगनू मशाल लाये
डोर तो खूब बोले, डोमनी बारात गाये
मोर ना करे सताई, बुल़बुल करे लडाई
जूंही बिल्ली आई - सारी सभा भाई।"[1]

---

1 डॉ कृष्णदेव उपाध्याय हिन्दी प्रदेश के लोक गीत पृ सं 103

इसप्रकार अनेक कल्पनाएँ बच्चे करते हैं। उनकी कल्पनाओं को बढावा देने का प्रयास इन्हीं बालगीतों के माध्यम से होता है।

3.2 हिन्दी बालगीतों का उद्भव और विकास

बालसाहित्य का मूलस्रोत लोक साहित्य है। अन्य भारतीय भाषाओं की भाँति हिन्दी भाषा का भी बालसाहित्य लोक साहित्य के अन्तर्गत ही अपने आरंभिक रूप में मिलता है। बालगीत लोकसाहित्य का एक अंग है इसलिए बालगीतों का उद्भव भी लोकसाहित्य से ही माना जाता है।

हिन्दी बालसाहित्य की पृष्ठभूमि तैयार करने में लोकसाहित्य के समान संस्कृत साहित्य का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा है। लेकिन संस्कृत साहित्य में बच्चों के लिए मुख्यतया कहानियाँ प्रचलित थीं।

3.2.1 आदिकाल और बालगीत

आदिकाल में बच्चों के लिए कुछ नहीं लिखे गये थे। उस समय कविता वीर रस से परिपूर्ण होकर राजमहल की वस्तु रह गयी। लेकिन उस समय जगनिक का आलहाखण्ड लोकप्रिय हुआ था, जो जनसामान्य को ही मनोरंजन प्रदान करता रहा। बच्चों के लिए भावनाओं की अभिव्यक्ति उसमें नहीं थी।

डॉ. विजयलक्ष्मी सिन्हा के अनुसार बच्चों के लिए उपयुक्त काव्य की रचना 13 वीं शताब्दी में होने लगी थी, जबकि अमीर खुसरो ने सरल दोहे,

---

1 डॉ कृष्णदेव उपाध्याय हिन्दी प्रदेश के लोकगीत पृ सं 103

तुकबन्दियाँ, पहेलियाँ और मुकरियाँ बडे ही मनोरंजक ढंग से प्रस्तुत की। खुसरो की रचनाएँ बडे-वृद्धों के साथ साथ बच्चों का भी पर्याप्त मनोरंजन करती हैं, यद्यपि उन्होंने अपने दोहों की रचना बच्चों के लिए नहीं की।"[1] इसप्रकार बालसाहित्य की दृष्टि से खुसरो की पहेलियाँ तथा मुकारियाँ बहुत ही महत्वपूर्ण है।

3.2.2 भक्तिकालीन हिन्दी साहित्य में बालगीत

भक्तिकाल में सूर और तुलसी के काव्यों में बालगीतों का जैसा कुछ अंश है। इन कवियों ने बच्चों की सरल भावनाओं, क्रीडाओं, चेष्टाओं आदि का स्वाभाविक चित्रण किया है, लेकिन यह बाल मनोविज्ञान के आधार पर सही होते हुए भी बच्चों के मानसिक स्तर के अनुकूल न होने के कारण इसे बालसाहित्य नहीं कह सकते।

डॉ. निरंकारदेव सेवक महाकवि सूरदास को सफल बालगीतकार नहीं मानते। यद्यपि उनकी राय में "बच्चों के मन के राग-द्वेष, हर्ष-विषाद इत्यादि मनोभावों से सूरदास भलीभाँति परिचित थे। बालस्वभाव का ऐसा सुन्दर चित्रण हिन्दी के और किसी पुराने कवि की रचनाओं में हमें नहीं मिलता। इसलिए हम उन्हें हिन्दी में बाल भावनाओं को चित्रित करनेवाला प्रथम कवि कह सकते हैं। पर समय और परिस्थितियों के अनुसार बालगीतों में भाव, भाषा और शैली की दृष्टि से परिवर्तन होते रहते हैं। इसलिए यह नहीं

---

1 डॉ. विजयलक्ष्मी सिन्हा आधुनिक हिन्दी में बालसाहित्य का विकास पृ सं 56

कहा जा सकता कि सूरदास के पद बच्चों के लिए उतने ही उपयोगी हो सकते हैं जितने आधुनिक काल में लिखे गये बालसाहित्य।"[1]

बालसाहित्य की प्रसिद्ध लेखिका स्नेहा अग्रवाल का कहना है - "सूरदास हिन्दी की ही नहीं, संसार की सभी भाषाओं में वात्सल्य रस के बेजोड़ कवि हैं। बाल स्वभाव और मनोवृत्तियों का उनका ज्ञान बहुत बढ़ा-चढ़ा था। अपने सूक्ष्म निरीक्षण के कारण उन्हें बाल साहित्य का आदिगुरू मानना चाहिए। बच्चों के लिए उन्होंने कोई पुस्तक भले ही न लिखी हो, लेकिन उनके काव्य को बच्चों ने खूब पढ़ा है।"[2]

इसप्रकार कुछ आलोचक सूर के बालगीतों को बच्चों के अनुकूल मानते हैं लेकिन डॉ. विजयलक्ष्मी सिन्हा जैसे कुछ आलोचक सूर और तुलसी के काव्य को बालसाहित्य के अन्तर्गत नहीं मानता। उनके अनुसार "तुलसी ने राम के बालरूप का वर्णन जब भी किया है; वे अपने आराध्य देव भगवान राम के देवत्व को भूल नहीं सके हैं। सूर भी अपने आराध्य बाल कृष्ण की लीलाओं का गायन करते रहे। लेकिन यंह समय बालकों के स्तर के अनुकूल न होने के कारण उनका मनोरंजन नहीं कर पाते। इसलिए इन्हें विशुद्ध बालगीतों की कोटी में नहीं रख सकते।"[3] इसप्रकार भक्तिकाल में भी बच्चों के लिए विशेष रूप में रचनाएँ नहीं हैं।

---

1 डॉ निरंकार देव सेवक, बालगीत साहित्य पृ सं 134

2. स्नेहा अग्रवाल बालसाहित्य रचना और समीक्षा - पृ. सं 184

3. डॉ विजयलक्ष्मी सिन्हा आधुनिक हिन्दी में बाल साहित्य का विकास पृ सं 57 58

3.2.3 रीतिकाल और बालगीत

रीतिकाल में कवियों का ध्यान भावपक्ष से हटकर काव्य पक्ष की ओर अधिक गया। राजाश्रयी कवियों ने अपने आश्रयदाता के मनोरंजन करने के लिए कविताएँ लिखीं। कवियों ने बालोपयोगी तथा जनोपयोगी साहित्य लिखने में उदासीन होते गये। लेकिन इसी काल में गिरिधर कवि की कुंडलियाँ भी प्रसिद्ध हुई जिनके अन्तर्गत निहित व्यावहारिक लाभ बडों के साथ-साथ बच्चों के लिए भी लाभदायक हैं। इस समय घाघ, लाल बुझक्कड़ जैसे कवियों की कविताएँ भी बच्चों के मन को बहुत भाती है।

डॉ निरंकारदेव सेवक के अनुसार "रीतिकाल में घाघ, भड्डरी और लाल बुझक्कड़ जैसे कुछ ऐसे जनकवि हुए हैं जिन्होंने अपनी रचनाओं द्वारा बडों के साथ-साथ बच्चों का भी मनोरंजन किया होगा। ये कवि सीधे-सादे भावों को साधारण बोलचाल की जन-भाषा में व्यक्त कर दिया करते थे। कलापक्ष का कोई चमत्कार उन्में नहीं होता था। उनमें कही गयी बातें सीधे जाकर हृदय को छूती थीं, लाल बुझककड की तो सारी कविताएँ हृदय के भाव से परिव्याप्त मिलती हैं। बच्चे भी उन्हें चाव से पढ़ते और दुहराते हैं।"[1] डॉ विजयलक्ष्मी सिन्हा के अनुसार "इस समय के रहीम कवि के दोहे भी उपदेशात्मक थे। आज इन दोहों और कुण्डलियों को बालकों के पाठ्यक्रम में स्थान मिला है फिर भी इन रचनाओं को बालगीतों के अन्तर्गत नहीं रख सकता।"[2]

1 डॉ निरंकारदेव सेवक बालगीत साहित्य - पृ. सं. 136

2. डॉ. विजयलक्ष्मी सिन्हा - आधुनिक हिन्दी में बाल साहित्य का विकास पृ सं 59

इसप्रकार रीतिकालीन कवियों के कुछ दोहों और कुण्डलियों को बालोपयोगी मानते हुए भी इसे आलोचक बालगीतों के अन्तर्गत नहीं रख दिया है। डॉ. निरंकारदेव सेवक ने भी रहीम, वृन्द जैसे कवियों के दोहे तथा कुण्डलियों को बालोपयोगी माना है लेकिन इसे बालसाहित्य के अन्तर्गत नहीं रखा। उनके अनुसार "रीतिकाल में कुछ दूसरे कवियों ने नीति संबन्धी दोहे और कुण्डलियाँ आदि ऐसी सरल भाषा में लिखे हैं जिससे बच्चे उन्हें पढ़कर उनसे शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं। अन्य उपलब्ध बालगीतों के अभाव में उनका उपयोग भी बच्चों की पाठ्य पुस्तकों में होता रहा है। इन कवियों में रहीम, वृन्द, गिरिधर कवि राय आदि प्रमुख हैं। गिरिधर कवि राय के कुण्डलियों में जो व्यावहारिक ज्ञान की बातें कही गयी हैं वह बच्चों के भी उसी प्रकार लाभ की हैं जैसे बडों के। पर ऐसे रचनाओं को हम बालसाहित्य किसी भी प्रकार नहीं कह सकते।"[1] इसप्रकार बालरुचि के अनुसार रचनाएँ होने पर भी बालसाहित्य के अन्तर्गत रखने योग्य रचनाएँ इस काल में नहीं हुई हैं।

3.2.4 भारतेन्दुयुगीन और द्विवेदीयुगीन बालगीत

आधुनिक काल का प्रारंभ भारतेन्दु युग से शुरू होता है। डॉ हरिकृष्ण देवसरे की राय में "हिन्दी बालगींतों की परंपरा भारतेन्दु युग से ही प्रारंभ होती है। भारतेन्दु के नाटक 'अंधेरनगरी' में अनेक ऐसे गीत हैं जो बच्चों के मन को लुभानेवाले हैं। उनका 'चने का लटका' बच्चों को बहुत पसन्द आता है और वे उसे य़ाद करके खेल खेल में दुहराते रहते हैं।"[2]

1 डॉ. निरंकारदेव सेवक - बालगीत साहित्य - पृ. सं. 136

2. डॉ. हरिकृष्ण देवसरे हिन्दी बालसाहित्य एक अध्ययन - पृ सं 241

उदाहरणार्थ देखिए :-

"चने चबावें घासीराम! जिनकी झोली में दूकान।
चना चुरमुर चुरमुर बोले। बाबू खाने की मुँह खोलें।
चना खावे तोकी मैना। बोले अच्छा बना चबैना।
चना खाँयल गफूरन मुन्ना। बोलें और कुछ नहीं सुन्ना।
चना खाते सब बंगाली। जिनकी धोती ढ़ीली ढ़ाली।
चना खाते मियां जुलाहे। डाढ़ी हिलती गाह बगाहे।
चना हाकिम सब जो खाते। सब पर दूना टिकस लगाते।
चने जोर गरम......।"[1]

डॉ निरंकार देव सेवक के अनुसार "भारतेन्दु ने अमीर खुसरो की मुकरियों की तरह नये ज़माने की मुकरियँा भी लिखी हैं। उनकी भाषा और भाव सरल है। फिर भी उन्हें बालगीत के अन्तर्गत नहीं लिया जा सकता।"[2]

इसप्रकार भारतेन्दु जी विशेष रूप से बच्चों के लिए कुछ नहीं लिखी थी। फिर भी उनका ध्यान बाल साहित्य को विकसित करने की ओर था। उन्होंने 1974 में विशेषकर बच्चों के लिए 'बाल बोधिनी' पत्रिका निकाली थी। हिन्दी बालसाहित्य के सूत्रपात करने का श्रेय इसी को है। डॉ हरिकृष्ण देवसरे की राय में "भारतेन्दु हरिश्चन्द्र हिन्दी बालसाहित्य के जन्मदाता के रूप में भले ही न स्वीकार किये जायें किन्तु उन्हें उसके प्रथम प्रेरक मानना

---

1. ब्रजरत्न दास (सं) - भारतेन्दु ग्रन्थावली - पृ. सं. 661
2. डॉ. निरंकारदेव सेवक - बालगीत साहित्य - पृ. सं. 139

अत्यन्त समीचीन होगा।"[1] भारतेन्दु जी ने अपने जीवन के अल्प समय में ही अनेक लेखकों को तैयार कर लिया था जिन्में बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमधन' प्रतापनारायण मिश्र, श्रीधर पाठक, लाला श्रीनिवासदास, पं. बालकृष्ण भट्‌ट, राधाकृष्ण दास, काशीनाथ खत्री, फ्रेडरिक पिंकाट आदि महत्वपूर्ण नाम हैं।

भारतेन्दुकालीन अन्य कवियों में प्रतापनारायण मिश्र ने 'बुढ़ापा' 'गोरसा' आदि साधारण विषयों पर सरल भाषा में कुछ कविताएँ लिखी हैं। उनकी 'हरगंगा' एक समय बच्चों को बहुत पसन्द थी। पर निरंकारदेव सेवकजी उनको बालसाहित्यकार के रूप में नहीं मानते। उनके अनुसार "प्रतापनारायण मिश्र की रचनाओं से बच्चों का कोई भावनात्मक सम्बन्ध नहीं हो सकता था इसलिए हम उन्हें बाल साहित्यकारों की कोटी में नहीं ले सकते।"[2]

हिन्दी बालसाहित्य के आदि कवि श्रीधर पाठक की रचनाएँ सन् 1900 के बाद ही प्रकाश में अधिक आईं। डॉ. निरकारदेव सेवक के अनुसार "वह पहले कवि हैं जिन्होंने बडों के साथ बच्चों के लिए लिखने की ओर सबसे पहले ध्यान दिया। पाठक जी की कविताओं में वह स्वाभाविक सरलता सर्वत्र विद्यमान मिलती है, आधुनिक काल में जिसे बालगीतों की सबसे प्रमुख विशेषता कहा जाता है। उनमें बडों के भाव कहीं छू भी नहीं गये हैं और न उनकी शैली में कोई खटकनेवाली कृत्रिमता है।"[3] लेकिन श्री हरिकृष्ण देवसरे की राय में "पाठकजी की भाषा बालोपयोगी न थी।"[4] जो भी हो, पाठकजी ने कुत्ता,

1 डॉ. हरिकृष्ण देवसरे हिन्दी बालसाहित्य एक अध्ययन - पृ. सं. 242

2. डॉ निरकार देव सेवक - बालगीत साहित्य - पृ. सं. 139

3. वहीं - पृ. सं 139

4. डॉ हरिकृष्ण देवसरे हिन्दी बालसाहित्य एक अध्ययन पृ सं 243

बिल्ली, तोता, मैना, कोयल, चकोर, मोर आदि बच्चों के सुपरिचित विषयों पर छोटी-छोटी अनेक सरल कविताएँ बच्चों के लिए लिखी थीं।

बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' ने बालोपयोगी कविताएँ कवित्त, रवैया शैली में लिखी कविताओं के द्वारा बच्चों में देश प्रेम की भावना जागृत की। भारतेन्दु के विपरीत प्रेमघन के काव्य में प्राचीनता की अपेक्षा नवीनता का तत्व अधिक है। डॉ. विजयलक्ष्मी सिन्हा के अनुसार "उन्होंने बच्चों के लिए बहुत कम लिखा है लेकिन जो कुछ लिखा वह महत्वपूर्ण है।"[1] श्री लोचन प्रसाद पाण्डेय ने अधिकतर अधिक रूप में अंग्रेज़ी बालगीतों का अनुवाद किया था। 'मधुमक्खी' 'बुलबुल' 'जुगनू' आदि इसका उदाहरण है।

श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने बच्चों के लिए अनेक सरल कविताएँ लिखीं। उनकी बालकविताओं के संग्रह है 'बाल विभव' 'बाल विलास' 'फूल पत्ते' 'पद्यप्रसून' 'चन्द्र खिलौना' तथा 'खेल तमाशा' आदि। डॉ. हरिकृष्ण देवसरे की राय में 'हरिऔध' के नाम से विख्यात उपाध्याय जी बच्चों को प्राकृतिक उपकरणों के माध्यम से उनकी अनुभूतियों को जगाते थे।[2] उपाध्याय जी कविताओं में बालभावनाओं की सुन्दर अभिव्यक्ति है। उदाहरणस्वरूप प्रस्तुत है :-

"देखो लड़की बन्दर आया,
एक मदारी उसको लाया।

---

1 डॉ विजयलक्ष्मी सिन्हा - आधुनिक हिन्दी में बाल साहित्य का विकास - पृ सं. 67
2. डॉ हरिकृष्ण देवसरे हिन्दी बालसाहित्य एक अध्ययन - पृ. सं. 242

उसका है कुछ ढंग निराला,

कानों में पहने है बाला।।"[1]

श्री कामता प्रसाद गुरु ने भी बच्चों के लिए बहुत सी सुन्दर कविताएँ लिखी हैं। वे बालसखा के संपादक थे। उनकी 'रंग सियार' नामक कविता बहुत प्रसिद्ध हुई थी। हिन्दुस्तानी शिष्टाचार, सुदर्शन, पद्यपुष्पावली आदि बालोचित पुस्तकें उन्होंने लिखी हैं।

श्री विद्या विभूषण विभू को अपने विद्यार्थी जीवन से ही बालगीत लिखने का शौक था। डॉ निरंकारदेव सेवक की राय में "उनके बालगीतों पर आधुनिकता की छाप है। उन्होंने बहुत छोटी आयु के बच्चों के लिए दो-दो चार-चार पंक्तियों की सरल तुकबन्दियाँ लिखने का कार्य सबसे पहले किया।"[1] विभुजी ने बहुत छोटे बच्चों के लिए 'चार साथी' 'चन्दा' 'बबुआ' 'पंख-शंख' 'ता' 'गोबर गणेश' 'लाल बुझक्कड़' 'शेख चिल्ली' 'ढपोर शंख' 'खेलो भैया' 'चन्दा तारा' 'खेल खिलौने' 'लाल खिलौने' 'गुड़िया' 'फूल बगिया में' 'पाँच पंखुरियाँ' 'राष्ट्रीय राग 3 भाग' 'चुनमुन' 'गुंजा फल' 'गगन गंगा' 'कोकाबेली' 'सागर है या जादूगर' आदि अनेक बालोपयोगी कविताएँ प्रकाशित की हैं।

श्री मुरालीलाल शर्मा 'बालबन्धु' ने बच्चों के लिए 'साहसी बच्चे' 'होनहार बिरवे' 'गोदी भरे लाल' 'मौत से अठखेलियाँ' 'ज्ञान गंगा' 'कोकिला' 'संगीत सुधा' आदि पुस्तकों का प्रकाशन किया है। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त

---

1 डॉ. निरंकारदेव सेवक - बालगीत साहित्य - पृ. सं. 140

ने भी भारतीय संस्कृति तथा नैतिक जीवन से सम्बन्धी अनेक कविताएँ बच्चों के लिए लिखा था। उनकी अनेक गीत कथाएँ जो पंचतंत्र, हितोपदेश आदि कहानियों पर आधारित थीं जो 'बालसखा' में प्रकाशित हुई थीं। डॉ हरिकृष्ण देवसरे के अनुसार "उनकी कविताएँ बच्चों के मनोबल तथा नैतिक स्तर के विकास के लिए उपयोगी सिद्ध हुई थीं।"[1] गुप्तजी की राष्ट्रीय कविताएँ भी उल्लेखनीय हैं। उदाहरण के तौर पर स्वदेश संगीत से कुछ पंक्तियाँ पेश है -

"बहुत हुआ, अब क्या होना है,
रहा सहा भी क्या खोना है?
तेरी मिट्ठी में सोना है
तू अपने को तोल....।"[2]

श्री सभामोहन अवधिया स्वर्ण सहोदर ने अनेक बालकविताएँ लिखीं, जैसी 'चगन-मगन' 'नटखर हम' 'तुम भी नन्हे मेरे प्यारे' 'जानवरों का मेला' आदि। उन्होंने कई वीरात्मक काव्य भी लिखे हैं जिनमें प्रमुख हैं - 'वीर हकीकत' 'हमीर राव' एवं 'वीरबालक बादल'। गिरिजादत्तशुक्ल 'गिरीश' ने कुछ दिन 'बालसखा' का संपादन किया था। डॉ निरंकारदेव सेवक के अनुसार "बालसाहित्य की श्री वृद्धि में उन्हें विशेष रुचि थी।"[3]

ठाकुर श्रीनाथ सिंह ने बच्चों के लिए 'जब मे बढ़ जाऊँगा' 'पिपहरी' 'खेलघर' 'नानी का सन्दूक' 'मम्खी की निगाह' 'जुडवाँ की

---

1 डॉ. हरिकृष्ण देवसरे हिन्दी बालसाहित्य एक अध्ययन - पृ. सं. 244
2. श्री मैथिली शरण गुप्त - स्वदेश संगीत पृ सं 50
3. डॉ निरंकारदेव सेवक - बालगीत साहित्य - पृ. सं. 151

मुसीबत' 'बाल कवितावली' आदि अनेक सुन्दर कविताएँ लिखीं। श्री जयप्रकाश भारती ने ठाकुर श्रीनाथ सिंह को 'हिन्दी बालकविता के भीष्मपितामह' बताया है।[1]

इस समय के अन्य प्रमुख कवि हैं - रमापति शुक्ल ('मनुष्य का बडप्पन' 'अगर' 'मस्तराम की कहानी' 'प्रतिध्वनि' 'अंगूरों का गुच्छा' 'मुन्नी की दुनिया' 'शैशव' 'हुआ सवेरा') रामेश्वर दाल दुबे ('छाया' 'मैं आऊँ' 'राजू की जेब'), सोहनलाल द्विवेदी ('घर की याद' 'बांसुरी' 'बिगुल' 'बाल भारती' 'शिशुगीत' 'बच्चों के बापू') शंभू दयाल सक्सेना ('पालना' 'मधु लोरी' 'लोरी और प्रभाती' 'फूलों का गीत' 'चन्द्र लोरी' 'आरी निन्दिया' 'रेशम झूला' 'शिशु लोरी' 'नाचो गाओ' 'दुपहरिया के फूल' 'बाल कवितावली') आदि।

डॉ निरंकार देव सेवक बीसवीं सदी के बालगीतकारों में प्रमुख हैं। प्रकाश मनु ने उन्हें "हिन्दी बालकविता के भीष्म पितामह"[2] बताया है। उनकी 'अगर मगर' कविता बेहद खूबसूरत हैं :-

"अगर मगर दो भाई थे। लडते खूब लडाई थे।
अगर मगर से छोटा था। मगर मगर से खोटा था।।
अगर मगर कुछ कहता था। मगर नहीं चुप रहता था।।
बोल बीच में पड़ता था। और अगर से लड़ता था।।
अगर एक दिन झल्लाया। गुस्से में भरकर आया।।
और मगगर में टूट पड़ा। हुई खूब गुत्थम गुत्था।।

---

1 जयप्रकाश भारती भारतीय बालसाहित्य का इतिहास पृ. सं 33
2. प्रकाश मनु हिन्दी बाल कविता का इतिहास - पृ सं 33

छिड़ी महाभारत भारी। गिरीं मेज़ कुरसी सारी।।

माँ यह सुनकर घबराई। बेलन ले बाहर आई।।

दोनों को दो दो जड़कर। अलग दिये कर अगर मगर।।

खबरदार जो कभी लड़े। बन्द करो यह सब झगड़े।।

एक ओर था अगर पड़ा। मगर दूसरी ओर खड़ा।।"[1]

डॉ. हरिकृष्ण देवसरे की राय में "निरंकार देव सेवकजी ने जो बालगीत लिखे हैं वे बालमनोविज्ञान के अनुरूप हैं।"[2] उनकी बालकविताओं का पहला संग्रह 'रिमझिम' 1950 में छपा। बच्चों के लिए उन्होंने अनेक कविता संकलन प्रस्तुत किये हैं जिनमें प्रमुख हैं - 'दूध जलेबी' 'माखन-मिसरी' 'बिल्ली के गीत' 'टेसू के गीत' 'मुन्ना के गीत' 'आज़ादी के गीत' 'महापुरुषों के गीत' 'चिड़िया गाती मेरा राग' 'नन्ने मुन्ने गीत' आदि।

द्वारिका प्रसाद महेश्वरी की 'चन्द्रमा की कुर्ता' नामक कविता में चन्द्रमा के ज़रिये नटखट बच्चे की बडी लुभावनी तस्वीर उभर आयी है। उन्होंने 'नव ज्योति' पत्रिका का संपादन किया और शिक्षा प्रसार अधिकारी भी रहे। प्रकाश मनु ने श्री द्वारिका प्रसाद महेश्वरी को "बच्चों के सिद्ध कवि"[3] माना है। एक दौर था जब उनका प्रयाण गीत हर बच्चे क़ी ज़ुबान पर चढा हुआ था। बच्चों के लिए उनकी 'लहरें' 'माखन मिसरी' 'बढे चलो' 'फूल और शूल' 'कातो गाओ' 'बुद्धि बड़ी या बल' 'यह मित्रता' आदि कई पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं।

---

1 आजकल वर्ष 57 अंक 7 नवंबर 2000

2. डॉ हरिकृष्ण देवसरे हिन्दी बालसाहित्य एक अध्ययन पृ सं 247

3. प्रकाशमनु हिन्दी बाल कविता का इतिहास पृ सं 43

श्रीमति सुभद्राकुमारी चौहान के बालोपयोगी कविताओं के दो संकलन प्रकाशित हुए 'कोयल' और 'सभा का खेल'। 'पानी और धूप' 'झाँसी की रानी' आदि उनकी अन्य प्रमुख कविताएँ हैं।

3.2.5 स्वातंत्र्योत्तर बालगीत

श्री रामधारी सिंह दिनकर हिन्दी के जाने माने कवि और संस्कृति के चार अध्याय के लेखक हैं। दिनकर जी श्रेष्ठ बालसाहित्यकार भी हैं। कवि भारतेन्दु की स्मृति में लिखी गयी कविता 'भारतेन्दु स्मृति' बच्चों के लिए एक अमूल्य निधि है :-

"कवि-पूजन का पुण्य पर्व है, बन्धु!
कहो क्या आज कहूँ?
नवयुग का सन्देश, सुनो तो
इस पूजा के व्याप्त कहूँ।
भारतेन्दु थे इन्दु हमारे,
तुम आशा के तारे हो,
भावी इन्दु, अमा अंचल के
नन्हें दीप दुलारे हो।
बनने को आलोचक देश का
करे अभी से तैयारी।
याद रखो ज्वाला बनती है
यही चमकती चिनगारी।
भारतेन्दु-सा ही तुम जीवन में

आगे बढ़ना सीखो

सेवाव्रती बनो तुम भी

गौरवगिरी पर चढना।"[1]

उनके अन्य काव्य संकलन हैं - "धूप छाँह' 'मिर्च की मज़ा' 'सूरज की ब्याह' आदि।

दिनकर के समकालीन अन्य' चर्चित कवि हैं - आरसी प्रसाद सिंह, गोपालसिंह नेपाली, बालमुकुन्द गुप्त, सीताराम बि.ए, सुखराम चौबे गुणाकर, पं सुदर्शनाचार्य, गिरिजा कुमार घोष, पं भूपनारायण दीक्षित, शंभू दयाल सक्सेना, रामसिंहासन सहाय 'मधुर' कपूरचन्द जैन 'इन्दू' गोकुला चन्द्र शर्मा, तरुण भाई, प्रो. केसरी, ज्ञानवती सक्सेना 'किरण' नर्मदाप्रसाद खरे, रामकुमार वर्मा, नेमिचन्द्र जैन, विनयमोहन शर्मा, कमला चौधरी, बाबू गुलाबराय, जहूर बख्श, आनन्दी प्रसाद श्रीवास्तव, रामवृक्ष बेनीपुरी, विश्वप्रसाद कुकुम, बाबूलाल भार्गव कीर्ति, गौरीशंकर 'लरही' रघुनन्दन शर्मा, वीरेश्वरसिंह 'विक्रम' लक्ष्मीनिधि चतुर्वेदी, रामेश्वर गुरु 'कुमारहृदय' प्रेमसखा, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, 'मादक' देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त' अब्दुल रहमान सागरी, डॉ. सुधीन्द्र, नरेन्द्र मालवीय, सत्यप्रकाश कुलश्रेष्ठ, शिक्षार्थी राम गोपाल 'रुद्र' बलवीरसिंह 'रंग' डॉ. राजेश्वर गुरु, मदनमोहन व्यास, हरिश्चन्द्र बेरी 'बालबन्धु' ज्वालाप्रसाद ज्योतिषी, विश्वप्रकाश दीक्षित 'वटुक' हरमोहन झा, प्रो मनोरंजन एम.ए रामदेवसिंह कलाधर, बन्धु रत्न, त्रिभुवनाथ 'नाथ' तथा रुद्रदत्त मिश्र आदि प्रमुख है।

---

1 रामधारी सिंह 'दिनकर' 'धूप छाँह' पृ. सं 44

श्री माखनलाल चतुर्वेदी की कविताएँ बच्चों को बेहद पसन्द थी। उनकी 'पुष्प की अभिलाषा' बहुत प्रसिद्‌ध हुई -

"चाह नहीं, मैं सुरबाला के गहनों
में गूँथा जाऊँ।
चाह नहीं, प्रेमी-माला में बिन्ध
प्यारी को ललचाऊँ।।
चाह नहीं, सम्राटों के शव पर, हे हरि,
डाला जाऊँ।
चाह नहीं, देवों के सिर पर चढ़ूँ,
भाग्य पर इठलाऊँ।।
मुझे तोड़ लेना वनमाली।
उस पथ में देना तुम फेंक।।
मातृभूमि पर शीशा चढाने।
जिस पथ जावें वीर अनेक।।[1]

इसमें उन्होंने फूल के माध्यमं से बच्चों में राष्ट्रीय भावना का संचार किया है।

3.2.6 साठोत्तर और समकालीन हिन्दी बालगीत

श्री दामोदर अग्रवाल की प्रमुख कविताएँ हैं 'कोई ला के मुझे दे' 'धूप' आदि। प्रकाश मनु के अनुसार "जिस तरह बाल कविता के प्रारंभिक युग

---

1 आधुनिक कवि श्री माखनलाल चतुर्वेदी सं हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग पृ. सं 1

के शलाका पुरुष निरंकारदेव सेवक है, उसी तरह इस समय के केन्द्रीय व्यक्तित्व दामोदर अग्रवाल ही ठहरते हैं।"[1] बालकविता के क्षेत्र में डॉ शेरजंग गर्ग का भी प्रमुख स्थान है। बालकविता के क्षेत्र में वे आज भी कर्मनिरत है। उनकी 'दादी अम्मां' कविता बहुत प्रसिद्ध है। उनकी अन्य प्रमुख कविताएँ हैं 'लट्टू' 'नये साल का गीत' 'अंगूठा टेक कबूतर' आदि।

हिन्दी के सशक्त जनवादी रुझान के कवि एवं नाटककार श्री सर्वेश्वर दयाल सक्सेना बच्चों के प्रिय बालकवि और बालनाटककार भी हैं। उनकी प्रसिद्ध कविता है 'बतूता का जूता' जो बच्चों को भी अत्यधिक प्रसन्द हैं :-

"इब्न बतूता
पहन के जूता
निकल पड़े तूफान में,
थोड़ी हवा नाक में घुस गयी
घुस गयी थोडी कान में।
कभी नाक को कभी कान को
मलते इब्न बतूता,
इसी बीच में निकल पड़ा
उनके पैरों का जूता।
उड़ते उड़ते जूता उनका
जा पहूँचा जापान में,

---

1 प्रकाश मनु हिन्दी बाल कविता का इतिहास पृ सं 72

इब्न बतूता खडे रह गये
मोची की दूकान में।"[1]

'बिल्ली के बच्चे' 'महंगू की टाई' 'नन्हा ध्रुवतारा' आदि उनकी काव्य संकलन हैं।

बालस्वरूप राहि बालकविता के प्रतिष्ठापित कवि हैं। उनकी बालकविताओं में बाल मनोविज्ञान का खूब सहयोग है। प्रकाशमनु के राय में "उनके यहाँ भाषा की सफाई, सुधराई और सजावट अपने ढंग की है, जो कुछ ही रेखाओं में एक मुकम्मल चित्र बना देती है।"[2] अन्तर्राष्ट्रीय बालवर्ष पर प्रकाशित उनकी बालकविता 'साल हमारा' बिलकुल बालमन के अनुकूल है -

"नहीं चलेगी धौंस बडों की
है यह पूरा साल हमारा!
बड़े बड़े जाते हैं पिक्चर
हमें छोड़ जाते हैं घर पर
चिन्ता नहीं किसी को इसकी
कहाँ सिनेमा-हाल हमारा!
खेलकूद से रोका करते
जब देखो तब टोका करते
बात-बात पर कर देते हैं

---

1 सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ग्रन्थावली - सं. वीरेन्द्र जैन पृ सं 117

2. आजकल वर्ष-57 अंक-7 नवं - 2000 सं सुभाष सेतिया (लेख) बच्चे की आँखों से देखा गया सपना (प्रकाश मनु)

कान खींच कर लाल हमारा!

बड़े दिन-भर दौडाते

घर बाहर का काम कराते

काम बडों का मौज उड़ाना

बाकी सब जंजाल हमारा!

अब आई है बार हमारी

कसर निकालेंगे हम सारी

कर न सकेगा दुनिया भर में

कोई बांका बाल हमारा।"[1]

'ऊँट बडे ऊटपटांग' 'जब हम होंगे बड़े' 'कौन' 'बच्चे और बड़े' 'नयी बात सोचा करते हैं' 'दुनिया नयी पुरानी' 'सुनो डाकिए भाई' 'सोनू का स्वप्न' 'एक रात' 'सूरज का रथ' 'कैलेंडर' आदि उनकी प्रमुख कविताएँ हैं।

समकालीन दौर के विख्यात कवि प्रयाग शुक्ल ने कई श्रेष्ठ बालकविताएँ लिखी हैं। उनकी बहुत-सी कविताएँ बच्चों की जुबान पर चढ़ गयी हैं। उदाहरण के लिए 'चिड़िया' नामक कविता -

"नीली चिड़िया, पीली चिड़िया

भूरी चिड़िया, काली चिड़िया!

दूर-दूर तक उड़ जाती है

---

1 आजकल-मार्च, 1979 (सं) भगीरथ पाण्डेय (अन्तर्राष्ट्रीय बालवर्ष पर प्रकाशित) - पृ. सं. 28

उड़ती रहनेवाली चिड़िया।

कभी फुदककर आती चिड़िया

सुन्दर बोल सुनाती चिड़िया,

तिनके लाती, दाने लाती

झुंड बनाकर खाती चिड़िया।

कभी तार पर, कभी डाल पर

कभी कहीं छिप जाती चिड़िया,

आसमान में कभी देर तक

रहती है मंडरात्ती चिड़िया।"[1]

'आए बादल' 'जंगल में बोला है मोर' 'हक्का बक्का' 'गूड़ढा-बुड़ढा' आदि उनकी अन्य कविताएँ हैं।

अन्य समकालीन बालगीतकार हैं - कन्हैयालाल मत्त, नारायण लाल परमार, बालकृष्ण गर्ग, चन्द्रदत्त इन्दु, विष्णुकान्त पाण्डेय, सरोजिनी अग्रवाल, सरोजिनी प्रीतम, हरेन्द्रंनाथ चट्टोपाध्याय, डॉ रामजी मिश्र, इन्दिरा परमार, बाबूलाल शर्मा 'प्रेम' जगदीश चन्द्र शर्मा,रामकृष्ण शर्मा खद्दर, सुमित्राकुमारी सिन्हा, अमृतलाल नागर, शंभूनाथ 'शेष' बेनीमाधव शर्मा, डॉ चन्द्रप्रकाश वर्मा, किशोरी रमण टंडन, डॉ प्रभाकर माचवे, भारतभूषण अग्रवाल, डॉ देवेन्द्रदत्त तिवारी, होरीलाल शर्मा 'नीरव' तरुण भाई, हंसकुमार तिवारी, लाला जगदलपुरी, कृष्णकान्त तैलंग, नरेशचन्द्र सैनिक, लक्ष्मीकान्त वर्मा,

---

1 आजकल-मार्च, 1979 (सं) भगीरथ पाण्डेय (अन्तर्राष्ट्रीय बालवर्ष पर प्रकाशित) - पृ. सं. 28

शिवशंकर मिश्र, रामजन्मसिंह 'शिरीष' गोपालकृष्ण कौल, रामानन्द दोषी, चन्दपालसिंहयादव 'मंयक' चन्द्रसेन विराट, रामभरोसे गुप्त 'राकेश' धर्मपाल शास्त्री, डॉ शोभनाथलाल, प्रेमनारायण गौड़, कामिनी दीदी, रामावतार चेतन, भीष्मसिंह चौहान, वीरेन्द्र मिश्र, रामावतार त्यागी, राधेश्याम प्रगलभ, कपिल, मधुरशास्त्री, बालकराम नागर, भवानीप्रसाद मिश्र, रामवचनसिंह आनन्द, चिरंजीत, मनोहर वर्मा, विश्वदेव वर्मा, संतकुमार टंडन 'रसिक' दिग्गज मुरादाबादी, सावित्री परमार, मधु भारतीय, प्रेमचन्द गोस्वामि, कौशलेन्द्र पाण्डेय, बालकवि बैरागी, शान्ति मेहरोत्रा, भगवानस्वरूप जैन 'जिज्ञासु' शंभूप्रसाद श्रीवास्तव, डॉ श्यामसिंह शशि, शुभा वर्मा, शंकर सुलतानपुरी, रमाकांत श्रीवास्तव, रमाशंकर 'चंचल' रवीन्द्र शलभ, राजकमल चौधरी, मृदुलमोहन अवधिया, प्रेमचन्द गुप्त 'विशाल' दीनदयाल उपाध्याय, राधेश्याम सक्सेना 'रसिकेश' ठाकुर जमनाप्रसाद जलेश, आचार्य अज्ञात, चक्रधर नलिन आदि।

1970 के आगे के युग के प्रमुख कवि है दिविक रमेश। उनका 'घर' नामक कविता बहुत ही प्रसिद्ध है। समकालीन यथार्थ के प्रति सजगता एवं दयापरता उनकी कविताओं की विशेषता है। उनकी अन्य प्रमुख कविताएँ हैं - 'बेहतर अपनी व्यास' गाँव में शिबिर' मम्मी-पापा' 'काश कि मैं समर्थ होता' 'एक सहज और प्रभावशाली किशोर कविता' 'बीज और पौधा' 'अगर खेलता हाथी होली' आदि।

इस समय के महत्वपूर्ण कवि हैं - हरीश निगम ('कौआ' गुला' 'हाथी दादा' 'परीक्षा के मौसम') सूर्यकुमार पाण्डेय ('एक पान का पत्ता' 'माँ

मैं सचिन बनूँगा') रमेश तैलंग ('सुबह का गीत' 'सोन मछरिया' 'इक्यावन बालगीतें' 'का करे कक्का' 'चक्की चले' 'पापा की तनखा में' 'दिल्ली की बस' 'कुट्टी' 'बच्चों की दुनिया में' 'कोई झाँके') सुरेश विमला ('टपकी बून्दें' 'पत्तों का गीत' 'कहाँ बनाये' 'घर गौरैया' 'खिलौने लकड़ी के' 'देश हमारा' 'तितलियों के देश में' 'अगर जानती गाना तितली' 'बून्द गिरी' 'टिलू जी') रमेश कौशिक, देवेन्द्रकुमार, रत्नप्रकाश शील, रोहिताश्व आस्थाना, जहीर कुरेशा, अब्दुल मलिक खान, राष्ट्र बन्धु, रमेशचन्द्र पंत, भैरूँलाल गर्ग, राजा चौरसिया, रामसेवक शर्मा, अहद प्रकाश, सुरेन्द्र विक्रम, उषा यादव, नीलम सिन्हा, विश्वचरण चौहान, भगवती प्रसाद द्विवेदी, रमेश राज, अशोकरंजन सक्सेना, कृष्ण शलभ, धमण्डीलाल अग्रवाल, योगेन्द्रदत्त शर्मा, रमेश आज़ाद, श्याम सुशील, रामानुज त्रिपाठी, यश मालवीय, वसु मालवीय, लक्ष्मीशंकर वाजपेयी, अश्वघोष, सफ्दर हाश्मी, मो. फहीम, रमेशचन्द्र शाह, नवीन सागर, बलराम गुमाशा, प्रकाशमनु आदि।

आज बालसाहित्य का महत्व बढ़ गया है। साहित्य जगत में प्रतिष्ठित अनेक वरिष्ठ लेखक बाल साहित्य लिख रहे है यह इसका प्रमाण है। समकालीन कविता के क्षेत्र में नीलेश रघुवंशी का प्रमुख स्थान है जिन्होंने बच्चों के लिए भी खूब कविताएँ लिखी हैं। उनकी हाल ही में किताबघर द्वारा प्रकाशित 'पानी का स्वाद' काव्य संकलन इसका उदाहरण है।

श्री चन्द्रपालसिंह यादव 'मयंक' ने भी अनेक बालोपयोगी कविताएँ लिखी हैं। उनके 'भारत के रत्न' नामक कविता संकलन बच्चों के लिए बहुत

ही उपयोगी है। इसमें भारत के अनेक महानों का परिचय दिया है। उदाहरण के लिए - महाकवि कालिदास से सम्बन्धित कविता :-

"यहीं महाकवि 'कालिदास' थे,
कवियों के कुल के सिरमौर।
जिनकी कविता - नाटक अनुपम,
जिनकी उपमा कहीं न और।
लिखे एक से एक काव्य
औ' नाटक जिनमें भरी कला।
सभी श्रेष्ठ हैं - सर्वोत्तम हैं,
'मेघदूत' औ' 'शकुंतला'।
सारी दुनिया के साहित्यिक,
करते इनका आदर-मान।
सचमुच बच्चो, कालिदास हैं,
कवियों में हो गये महान।
चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य था,
विद्वानों का पालनहार।
कालिदास शोभित करते थे,
उस महान नृप का दरबार।"[1]

1 समकालीन साहित्य समाचार (बालसाहित्य विशेषांक) - पृ. सं. 15

इस दौर के अन्य बालगीतकार हैं - विनोद शर्मा, त्रिलोचन, राधेश्याम तिवारी, जरमां ड्रगन्बोड, गंगाप्रसाद विमल, मधुर शास्त्री, ओम भारती, कीर्ति चौधरी, शेरजंग गर्ग, लक्ष्मीशंकर बाजपेयी, गोपालदास नीरज, दिविक रमेश, श्रीचन्द्र जैन, तनु मलकोटिया, रेखा राजवंशी, श्री प्रसाद, निरंकार देव सेवक, अमृतलाल नागर, ब्रह्मदेव, ईशकुमार ईश, धर्मपाल गुप्ता, रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु' शिवनारायण सिंह, अशोक, पार्थसारथि डबराल, भारत भूषण, शकुन्तला सिरोठिया, गोपाल प्रसाद घास, लता पंत, शकुन्तला कालरा, कुल भूषण लाल मखीजा, राष्ट्रबन्धु, विश्वनाथ गुप्त, रामनिरंजन शर्मा 'ठिमाऊ' विनोदचन्द्र पाण्डेय, तेजपाल सिंह 'तेज' अशोक एम.ए. अशोक आन्द्रे, प्रभाकिरण जैन, संजीव गुप्ता आदि। इसप्रकार हिन्दी बालगीत विकास की उच्चस्थिति में हैं।

3.3 मलयालम बालगीतों का उद्भव और विकास

अन्य भाषाओं के समान मलयालम बालगीतों का भी उद्भव लोकगीतों से हुआ है। लोकगीत लोकसंस्कृति और लोकजीवन के स्पन्दन को लेकर चलते है। मानवजीवन के विकास की प्रथम सीढ़ी से लेकर अनेक गीतों का निर्माण एवं गायन लोगों ने किया है। ज़न्म से लेकर मृत्यु तक जीवन की सभी अवस्थाओं में गाना गाना एक अभिन्न कार्य हो गया है। वास्तव में गीत हमारी संस्कृति का मूलस्रोत है। मलयालम भाषा का लोकगीत केरल की बहुरंगी एवं बहुरूपी सांस्कृतिक परंपराओं और धार्मिक मान्यताओं से पूर्णतः प्रभावित है। मलयालम के बालगीतों का आरंभिक रूप भी इसी प्रभाव में रचा जाना अस्वाभाविक नहीं है।

डॉ एन.ई विश्वनाथ अय्यर के अनुसार "मलयालम बालसाहित्य की मौखिक परंपरा काफी पुरानी रही है। मुद्रण के प्रचार के पहले मौखिक रूप में ही कविता, गीत, कहानी आदि पीढ़ियों से पीढ़ियों को प्राप्त होते गये।"[1]

3.3.1 कवित्रय के पहले तक के बालगीत

हिन्दी के समान मलयालम बाल साहित्य पर भी संस्कृत बालसाहित्य का ज़्यादा प्रभाव है। पंचतंत्र, हितोपदेश आदि का प्रभाव मलयालम बालसाहित्य पर है। मलयालम का पहला संपूर्ण बालसाहित्य ग्रन्थ 'पंचतंत्र किलिप्पाट्टु' है। यह कुंचन नंबियार द्वारा लिखा गया है। मलयालम बालसाहित्य के क्षेत्र में इसकी विशेष महत्ता है। डॉ एन.ई विश्वनाथ अय्यर के अनुसार "कुंचन नंबियार के 'तुळ्ळल् काव्य' (तुळ्ळल् एक छन्दाश्रित काव्य विधा है, जिसे नृत्य में गायन सहित मुद्राओं से प्रस्तुत किया जाता है। इन्हीं का 'श्रीकृष्णचरितम् मणिप्रवाळम्' अन्य मुक्तक श्लोक आदि पुराने समय में बच्चों को हृदयस्थ रहे थे। मलयालम की 'अक्षर श्लोक' परंपरा हिन्दी की अन्त्याक्षरी की जैसी रही है।"[2] इसप्रकार कोच्चुण्णित्तम्पुरान के बालोपदेशम भी प्रसिद्ध है। रामायण और महाभारत जैसे इतिहास ग्रन्थों से प्रभावित होकर लिखे गये अनेक बाल साहित्य ग्रन्थ मलयालम में मिलते है। उदाहरण है महाकवि कुमारनाशान का बालरामायण।

---

1 जयप्रकाश भारती (सं) - भारतीय बाल साहित्य का इतिहास पृ सं 135
2. वहीं - पृ. सं 135

3.3.2 कवित्रय युग

कवित्रय में आशान, उळ्ळूर, वळ्ळत्तोळ् तीनों ने बच्चों के लिए भी कविताएँ लिखी थी। श्री कुमारनाशान के 'बालरामायणम्' और 'पुष्पवाटी' बहुत प्रसिद्ध है। पुष्पवाटी के 'चन्दमामा' को लेकर लिखी गयी कविता बच्चों को बहुत भायी है :-

"द्रोणपुष्पी से भी ज़्यादा चाँदनी
आकाशवीथि में बिखेरकर
खडा है चंदा उस पेड़ के ऊपर
आठ जौ की ऊँचाई पर।"[1]

उसी प्रकार 'कुट्टियुम् तळ्ळयुम्' बच्चों की कल्पनाशीलता बढाने वाली कविता है 'माँ और बच्चा'। इस छोटी सी कविता की पंक्तियाँ बच्चों की ज़ुबान में हमेशा ताज़ा करती हैं -

"इस वल्ली से सुन्दर फूल
उठ रहे हैं मैया, धीरे
ऐसा नहीं है बेटी, बता दूंगी में
खुबसूरत तितलियाँ हैं ये सारे।

---

1 कुमारनाशान पुष्पवाटी पृ सं 15
"तूम्प्पूविलुम् तूमयेषुम् निला-
वम्पिल् तूकिक्कोण्डाकाश वीधियिल्
अम्बिळि पोङ्ङि निल्कुन्निता मर-
क्कोम्पिन्मेल् निन्नु कोलोळम् दूरत्तिल्"

ऊपर ऊपर उठकर जाती ये तितलियाँ

देखो मैया कितने ही सुन्दर हैं।

अय्यो! उनके साथ खेलने में, माँ

नहीं उठ सकता मैं उनके समान

जो नहीं हो पायेगा तुझसे, उसे सोच

गंवाना नहीं है मेरा लाडला

चोटी चाल चलता तू

कैसे चल पायेगी चमेली।"[1]

महाकवि उळ्ळूर ने भी बच्चों के लिए अनेक कविताएँ लिखीं। 1935 में प्रकाशित 'दीपावली' शीर्षक उनका काव्य संकलन में 500 श्लोक हैं। उनके अन्य बाल कविता संकलन हैं। 'पच्चक्कुतिरा' (हरा घोड़ा) 'कुन्निमणिकळ्' (घुंघुची) 'मिन्नामिन्नी' (जुगुनू) आदि। उनके पच्चकुक्तिरा में संकलित 'तुम्पप्पू' नामक कविता बहुत ही सुन्दर है जो फूलों के बारे में लिखा गया है -

---

1 कुमारनाशान - पुष्पवाटी - पृ सं 7

"ई वल्लियिल् निन्नु चेम्मे पूक्कळ्
पोकुन्निता परन्नम्मे
तेट्टि निनक्कुण्णि! चोल्लाम् नल्
पूम्पाट्टकळल्लेयितेल्लाम्
मेलक्कुमेलिङ्ङवा पोङ्ङ - विण्णिल्
नोक्कम्मेयेन्तोरु भङ्ङ!
अय्यो! पोयक्कूडेक्कळिप्पान् - अम्मे!
वय्यायेनिक्कु परप्पान
आकात्ततिङ्ङने एण्णी चुम्मा
पाषाक्कोल्लेन्नोमलुण्णी
पिच्चा नडन्नु कळिप्पु नीयि
पिच्चकमुण्डो नडप्पू?"

"मावेली महीन्द्र की आगवानी को
चले चले हैं फूल सारे
सोने के रस से तनु को चमकाकर
चला आया 'मुक्कूट्टी'
कुंकुमी रेशम पहनकर आयी
खेत से है एक चुनरी छोटी
कुमुद को है एक मुकुट
आँवले की छवि में है सुगंध

न गंध है न रंग है
दिल चुराते द्रोणपुष्पी में
देव ने कृपा से देखा
सुन्दर सी मुक्कूट्टी पर
कुमुद को दी मुस्कान
आँवला किया आलिंगन।
बेचारी द्रोणपुष्पी को रखा
उन्होंने वेनी पर अपनी
खुश हो जाए द्रोणपुष्पी
फूलो में तूही भाग्यवती"[1]

---

1 कुमारनाशान पुष्पवाटी पृ सं 7

"मन्निच्चोरो मलरुकळ् चेन्नू
मावली मन्ननेयेतिरेल्क्कान्
तङकच्चारिल तनु मिन्नुमपडि
मुङ्ङच्चेन्नु मुक्कूट्टी

उसीप्रकार 'मिन्ना मिन्नी' (जुगनू) की कविताएं भी अत्यन्त हृदयहारी है। उदाहरण के लिए :-

"आओ आओ बादल राजा
पानी बरसो दयापूर्वक
सूखे से तडपती दुनिया तो
हरियाली से लहराये।"[1]

पाडलमां पट्टाडयोडेत्ति
पाडत्तुल्लोरु चिट्टाड़ा
आम्पालिनुण्डु किरीटम् नेल्लि
ककषकिलुमुण्डोरु सौरभ्यम्

करळ् कवरुन्नोरु निरमो मणमो
कणि काणात्तोरु तुम्पप्पू!
देवन कनिवोडु तुम्पप्पू!
पूविनेयोन्नु कटाक्षिच्चू
कुतुकालत्तड़विच्चिट्टाडप्पू
कूडुतलोन्नु तुडुप्पिच्चू!
आम्पलिनेकी पुंचिरि, नेल्लि
प्पूविनेयम्पोडु चुंबिच्चु।
पावम् तुम्पये वारियेडुत्तथ,
देवन् वेच्चु तिरुमुडियिल्।
पुळकम् कोळ्ळुका तुम्पप्पूवे,
पूक्कळिल् नीये भाग्यवती।"

1 वैलोप्पिळ्ळी श्रीधरमेनोन - मिन्नामिन्नी - पृ. सं. 21
"वा वा वा वारमुकिले
वारिप्पोषिय्क्कू कनिवाले
पट्टे वरण्डोरु पारेल्लाम्
पच्चापिडिच्चु तषय्क्कट्टे।"

वैलोप्पिळ्ळी ने 'काक्के काक्के कूडेविडे' जैसे लोकगीतों के संकलन के साथ साथ 'फलिच्चा प्रार्थना' जैसे अर्थपूर्ण कविताएँ भी लिखी हैं। इसी दौर में महाकवि कुट्टमत्तु ने भी बच्चों के लिए कई बालगीत लिखे हैं।

माथ्यू. एम. कूष़वेल्ली द्वारा संपादित 'बालन्' के प्रकाशन के साथ मलयालम बाल साहित्य के क्षेत्र में एक नया मोड शुरू हुआ। इसप्रकार का एक अन्य प्रयत्न एन. बी. एस. की 'सम्मानाप्पेट्टी' योजना थी। डॉ. हरिकृष्ण देवसरे के अनुसार "मलयालम बालसाहित्य को उन्नति के शिखर तक पहूँचाने का श्रेय माथ्यू एम. कूष़वेल्ली को है।"[1]

3.3.3 काल्पनिक युग के कवि और उनके बालगीत

बालकविता के क्षेत्र में जी. शंकरकुरुप्पु का योगदान महत्वपूर्ण रहा है। श्री. जी. शंकरकुरुप्पु प्रथम ज्ञानपीठ पुरस्कार विजेता के रूप में भारत भर में सुविदित हैं। उनकी दार्शनिकता भरी एवं स्वच्छन्दता वादी कविताएँ बहुत लोकप्रिय हैं। किन्तु उन्होंने सुन्दर बालकविताओं के तीन-तीन संग्रह प्रकाशित किये। उनके 'ओलप्पीप्पी' (पत्तल की तुरही) 'इलम्चुण्डुकळ् (नन्हे ओंठ) आदि बहुत प्रसिद्ध हैं।

'ओलप्पीप्पी' कवितासंकलन अपने रूप और भाव से भी अनोखे ढंग का था। उन्होंने इसमें संकलित कविताओं के द्वारा बच्चों को अनेक जानवरों का परिचय कराया। उदा :-

---

1 डॉ हरिकृष्ण देवसरे हिन्दी बाल साहित्य एक् अध्ययन - पृ सं 333

"जंगल को हिला हिला के आ रहा है।
काला पहाड सा एक हाथी
सामने आते चीते को भी
सींग में उठा लेता पहलवान।
जंगल के पेडों की डालियाँ
चढूंगा, उतरूँगा और भागूँगा
पूंछ को डालियों में लपेटकर
झूले में झूलूँगा।"[1]

इसप्रकार कवि ने बच्चों को जानवरों से संबंधित अनेक दृश्यों की कल्पना जगत् में विचरण कराया है। उनके 'विश्वदर्शनम्' नामक कविता संकलन् बच्चों और बडों को भी अच्छा लगा। विशेषकर 'मञ्ञक्किळि' (पीला पंछी) और 'चन्दनक्कट्टिल्' (चन्दन की खाट) नामक कविताएँ बच्चों के जीवन के बहुत नज़दीक हैं। इस दौर के अन्य कवि पी कुञ्ञिरामन् नायर,

---

1 जी शंकरक्कुरुप्पु - ओलप्पीप्पी पृ. सं 17
"काडु कुलुक्कि नडन्नु वरुन्नु
करिमला पोलोरु कोम्पन्
मुम्पिल् चेन्नाल् चेम्पुलियेयुम्
कोम्पिल् कोर्क्कुम् वम्पन्।

काट्टुमरत्तिन् कोम्पुकळ् तोरुम्
कयराम् मरियाम् चाडाम्
वालाल्च्चिल्लात्तुम्पिलच्चुट्टि
वरिञ्ञु किडन्नोन्नाडाम्।"

इडश्शेरी गोविन्दप्पिल्लै, अक्कित्तम अच्चुतन नंबूतिरी, पाला नारायणन नायर, नालंकल कृष्णपिल्लै, बालामणि अम्मा आदि ने भी बालोपयोगी कविताएँ लिखीं।

3.3.4 स्वातंत्र्योत्तर मलयालम बालगीत

स्वातंत्र्योत्तर मलयालम गीतकारों में कुञ्ञुण्णि माष की खास पहचान है। कुञ्ञुण्णिमाष बच्चों के ही कवि है उन्होंने अपनी कविताओं द्वारा बच्चों के सामने एक नया संसार खोलकर रख दिया है। 'बडा संसार और छोटा मैं' यही कुञ्ञुण्णि माष की कविताओं की अन्तर्धारा है। इस अद्‌भुत जगत एवं प्रकृति के सामने मनुष्य कितना तुच्छ है। नाम एवं आकार से वे छोटे हैं। यह छोटापन उनकी कविता का प्रमुख विषय हैं। बुढापा में भी छोटा बनकर कुञ्ञुण्णिमाष बच्चों के लिए लगातर लिखते रहते हैं। वे कहते हैं 'पोक्कमिल्लात्तताणेन्टे पोक्कम्' (छोटापन हीं मेरा बडप्पन है।)। लेकिन छोटे शरीर में धड़कता उनका हृदय अत्यन्त विशाल है। इसलिए विनयान्वित होकर अपने इस विनय को वे बडा मानते हैं।

'वलुतुम् चेरुतुम्' (बडा और छोटा) नामक कविता में कुञ्ञुण्णिमाष ने इस छोटे-बडे के अंतर को हास्यरूप में लेकिन दार्शनिकता की दृष्टि से स्पष्ट किया हैं -

"कितनी छोटी है चींटी
लेकिन है वह कितना नटखट
बडे बडे को भी वह काटकर
छोटा-सा दर्द देती है

हाथी कितना बडा है
लेकिन ज़रा नहीं है बडप्पन।
कितने भी छोटे को भी वह
मस्तक पर लेकर चलता है।"[1]

कुञ्जुण्णी माष ने कबीराना अन्दाज़ में सामाजिक असंगतियों पर गहरा व्यंग्य भी किया है। उनकी कविताएँ बिलकुल नावक के उस तीर के समान हैं जो देखने में छोटा लगता लेकिन गंभीर घाव करता है। कुञ्जुण्णि माष की कविताएँ बिलकुल बच्चों के अनुकूल सरल है लेकिन इसका भाव, इसके अन्दर छिपा हुआ दार्शनिक तत्व बडों को भी चकित करनेवाला है।

उदा :- *"दुनिया एक हो जुड़ गयी है*
तंत्री से और तार से भी
लेकिन नहीं है दिल से।"[2]

---

1 कुञ्जुण्णि कुञ्जुण्णिक्कवितकळ् पृ. सं 168
"एत्तरा चेरियोरुरुम्पु - अव-
नेत्तरा वलिया कुरुम्पु।
एत्तरा पेरियवनेयुम् - अव-
नित्तिरि वेदनयाक्कुम्।
एत्तरा वलियोरु कोम्पन् - अव-
नित्तिरियिल्लोरु वम्पु,
एत्तरा चेरियवनेयुम् - अव
नेट्टिक्कोण्डु नडक्कुम्।"

2. कुञ्जुण्णि कुञ्जुण्णिक्कवितकळ् पृ. सं. 76
"लोकमोन्नायिरिक्कुन्नु,
कम्पि कोण्डुम् कम्पियिल्ला कम्पि कोण्डुम्
करळ् कोण्डल्ला।"

दुनिया बाहरी दृष्टि से एक बन गयी है लेकिन मन की दृष्टि से नहीं। कवि के लिए कविता मनोरंजन की सामग्री है साथ साथ मानव मन को चुभानेवाले तीर भी। अनुभवों की तीक्ष्णा अनुभूति कविता में है। कवि की पंक्तियाँ हैं :-

"देखता सुनता हज़ार सेर
दिल पर लगते महज साठ सेर
कविता में है वह दस सेर
वह सेर सौ सेर से भई बढ़ाए।"[1]

इसप्रकार अनुभवों को उसीप्रकार चित्रित करने पर कविता नहीं बनती। अनुभवों को आत्मसात् करके उसका अंतः रस ही कविता बनता है। उन्होंने जो भी लिखा, कितने भी गहन विषयों को लेकर लिखा वह सब सरल रूप में लिखा है। इसलिए गहनतम विषयों को लेकर लिखने पर भी उनकी कविताएँ बिलकुल बच्चों के अनुकूल है। वह बच्चों के कवि के रूप में जानना ही पसन्द करते हैं। इसलिए लिखता है कि :-

"कुञ्ञुण्णी को है एक मोह
हरदम शिशु-सा रहने का

---

1 कुञ्ञुण्णि कुञ्ञुण्णिक्कवितकळ् - पृ. सं. 17
"काण्मतु केळ्प्पतु नूरु परा
करळिल् कोळ्ळुवतारु परा
कवितयिलाकुवतोरु परा
अप्परा नूरु परक्कुम् मेप्परा तान्।"

शिशुओं को रास देनेवाले

कवि के रूप में मरने का।"[1]

इसप्रकार कुञ्ञुण्णिमाष बच्चों के अपने कवि रहे। आज भी बालसाहित्य लेखन कर रहे हैं। वे मरते वक्त तक बच्चों के लिए लिखना पसन्द करते हैं। कुञ्ञुण्णि माष मलयालम बालकविता के श्लाकापुरुष हैं।

3.3.5 समकालीन मलयालम बालगीत

आज बालकविता की विधा में रचनारत रचनाकारों में सिप्पी पळ्ळिप्पुरम्, एवूर परमेश्वरन् जयनारायण एड़त्तला, के श्रीकुमार, उत्तमन पाप्पिनिश्शेरी संतोष. जी. पष़वीड़, एम.पी. शशिधरन, जी. बालचन्द्रन, राधिका सी. नायर, बाबु भरद्वाज, मीनाड कृष्णन कुट्टि, विमला मेनोन, आनन्दवल्ली पी, ईश्वरन नंपूतिरी, उषा एस. नायर, कुञ्ञप्पा मूरक्कोत्त, के.एस वेणुगोपाल आदि प्रमुख हैं।

मलयालम बालगीतों का क्षेत्र उतना विकसित नहीं हैं। बहुत कम कवि ही बच्चों के लिए कविताएँ लिखते हैं। स्वयं श्री सुगतकुमारी ने कहा है- "बच्चों की खास भाषा में रचना करना बड़ा कठिन कार्य है।"[2] शायद इसलिए अधिक कवि नहीं लिखते।

---

1 कुञ्ञुण्णि कुञ्ञुण्णिक्कवितकळ् पृ. सं 17

"कुञ्ञुण्णिक्कोरु मोहम्
एन्नुम् कुञ्ञायिट्टु रमिक्कान्
कुञ्ञुङ्ङळ्क्कु रसिच्चीडुन्नोरु
कवियायिट्टु मरिक्कान्"

2. जयप्रकाश भारती (सं) - भारतीय बालसाहित्य का इतिहास पृ सं 138

3.4 लोकगीत क्या है?

लोकगीतों के अन्तर्गत आनेवाले बालगीतों का अध्ययन करने के पहले यह जानना ज़रूरी है कि लोकगीत क्या है। सरल शब्दों में लोक साहित्य के अन्तर्गत आने वाली एक विधा है लोकगीत। लोकसाहित्य के अन्तर्गत लोकगीतों का प्रमुख स्थान है। जन.जीवन में व्यापकता तथा प्रचुरता के कारण इनकी प्रधानता स्वाभाविक है।

'हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास' की प्रस्तावना में डॉ कृष्णदेव उपाध्याय ने लोकगीतों के बारे में इसप्रकार लिखा है कि "पुत्रजन्म से लेकर मृत्यु तक जिन षोड़श संस्कारों का विधान हमारे प्राचीन ऋषियों ने किया है प्रायः उन सभी संस्कारों के अवसर पर गीत गाये जाते हैं, किंबहुना प्रिय व्यक्ति की मृत्यु के अवसर पर भी गीत गाने की प्रथा प्रचलित हैं। विभिन्न ऋतुओं में प्रकृति में जो परिवर्तन दिखायी पड़ता है उसका प्रभाव जनसाधारण के हृदय पर पड़े बिना नहीं रहते। अतः बाह्य जगत् में इस परिवर्तन को देखकर हृदय में जो उल्लास या आनन्द की अनुभूति होती है वह लोकगीतों के रूप में प्रकट होती है। खेतों की बोआई, निराई, लुनाई आदि के समय भी गीत गाये जाते हैं।"[1]

डॉ. एन. ई विश्वनाथ अय्यर के अनुसार "लोकगीत स्वयं अशिक्षित और सभ्यता से दूर अलिप्त ग्रामीण जनता की अटपटी बानी है। इसकी यह व्याख्या इसकी इस सुन्दर प्रवृत्ति को और भी स्पष्ट करती है - गाँवों में फैली हुई जनता अपने व्यस्त जीवन के बीच जिन गीत पंक्तियों की मदद से थोडा भी

---

1 (सं) डॉ कृष्णदेव उपाध्याय - हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास प्रस्तावना

मन बहला सकती है उनको मधुर कण्ठ से दुहराया करती है, चाहे वे पढे लिखे लोगों की नज़र में कितनी ही मामूली क्यों न हों, लोकगीत उन लोगों के जीवन की अनायास प्रवाहात्मक अभिव्यक्ति है जो सुसंस्कृत तथा सुसभ्य प्रभावों से बाहर कर कम या अधिक रूप में आदिम अवस्था में निवास करते हैं।"[1]

डॉ. विद्या चौहान ने लोकगीतों के बारे में बताया है कि "मानव हृदय का भाव विलास अपनी उत्कट स्थिति में लयात्मक आरोहावरोहों से जब भाषा बद्ध होकर प्रवहित होने लगा तो शब्दशास्त्रियों ने उसे गीत कहा और इसी गीत परम्परा की एक धारा जब अपनी देशज बोलियों में लोकवाणी को प्रवाहित करने लगी तो उसे लोकगीत नाम से ज्ञापित किया गया।"[2]

पूर्णिमा श्रीवास्तव ने राल्फ, ग्रिम और डॉ. सदाशिव फड़के आदि के विचारों को उद्धृत करके लोकगीतों के बारे में अपना विचार प्रस्तुत किया है, "मि. रालफ विल्यम्स के अनुसार लोकगीत न पुराना होता है न नया वह तो जंगल के एक वृक्ष के समान होता है जिसकी जडें तो धरती में दूर तक (भूतकाल) में घंसी हुई होती है। किन्तु जिसमें नित्य नयी डालियाँ, पल्लव और फूल लगते रहते हैं।, ग्रिम के अनुसार लोकगीत अपने आप बनते हैं। डॉ सदाशिव फडके ने कहा है कि शास्त्रीयनियमों के विशेष परवाह न करके सामान्य लोक व्यवहार के उपयोग में लाने के लिए मानव अपने आनन्द तरंग में जो छन्दोबद्ध वाणी सहज उद्भूत करता है, वही लोकगीत हैं।"[3] पूर्णिमा

---

1 डॉ एन.ई विश्वनाथ अय्यर केरल की वीर गाथाएँ पृ. सं. 13

2. विधा चौहान लोक साहित्य - पृ सं. 43

3. पूर्णिमा श्रीवास्तव - लोकगीतों में समाज पृ. सं. 11 12

श्रीवास्तव ने लोकगीतों की परिभाषा यों दी हैं "लोकगीत उस नदी की धारा के समान है जो ग्रामीण संस्कृति के गर्भ से निकलकर न केवल ग्रामीण समाज को आप्लावित करती रहती है वरन् वह अपने शीतल वाणी रूपी जल से समग्र मानव समाज को शीतलता प्रदान करती है और राह पर आनेवाले कंकड, पत्थर और गन्दगी को जिसप्रकार से नदी की धारा बहा ले जाती है उसी प्रकार से ग्रामीण जन भी इन गीतों के द्वारा अपने जीवन की विषमताओं और दुःखों को भुला देते हैं, और इन लोकगीतों की धारा आज भी निरन्तर जाने कब से एक कण्ठ से दूसरे कण्ठ में होती हुई निर्विघ्न, निर्विकार रूप से अपने सहज रूप में बह रही है। वास्तव में ये लोकगीत ग्रामीण संस्कृति के चलचित्र है। जिन्हें सुनकर ग्रामीण रीति रिवाज़, उनकी दिनचर्या, उनकी आर्थिक विषमता, उनका उल्लास, सभी कुछ श्रोता के सामने एक के बाद एक करके आने लगते हैं।"[1]

'लोकसंस्कृति की रूपरेखा' नामक पुस्तक में डॉ. कृष्णदेव ने लोकगीतों के बारे में यों कहा है कि "लोकगीत वह गेय गीत है जिससे जन मन का अनुरंजन सदा होता रहता है।"[2]

डॉ. जगमलसिंह के अनुसार "लोकगीत लोक-व्यवहार का लयात्मक ललित कल्प होता है। वह दुष्काम्य इच्छापूर्ति की मात्र स्वप्निल अभिव्यक्ति नहीं, अकुंठ प्राकृत भावनाओं की लयात्मक अभिव्यक्ति भी होता है। सरलता,

---

1 पूर्णिमा श्रीवास्तव - लोकगीतों में समाज पृ. सं. 11

2. डॉ कृष्णदेव उपाध्याय लोक संस्कृति की रूप रेखा पृ सं 265

संक्षिप्तता, स्पष्टता, स्वाभाविकता, एकतानता, अनुभूति प्रवणता, सांगीतिकता आदि उसके नित्य धर्म हैं। उसमें स्वर और राग की अपेक्षा लय का महत्व अधिक होता है। कारण अधिकाँश लोकगीतों का गायन सामूहिक होता है।"[1]

मीनाक्षी शर्मा ने लोकगीतों के बारे में कहा है कि "लोकगीत एक प्रवाहात्मक अभिव्यक्ति है, जो जनमानस के आन्तरिक दिल से पहाडी झरने के समान अनायास ही फूट निकलती है।"[2] डॉ. चिन्तामणि ने भी उसी प्रकार लोकगीतों को सहज एवं लयात्मक माना है। उनके अनुसार "सामान्य लोक जीवन पार्श्व भूमि में उचित रूप से अनायास ही फूट पडनेवाले मनोभावों की लयात्मक अभिव्यक्ति लोकगीत कहलाती है।"[3]

श्री. रामनरेश त्रिपाठी के अनुसार "ग्रामगीत प्रकृति के उद्‌गार है। इन्में अलंकार नहीं, केवल रस है। छन्द नहीं केवल लय है। लालित्य नहीं केवल माधुर्य हैं।"[4] श्री सूर्यकरण पारीक ने लोकगीतों के बारे में कहा है कि "आदिम मानव के गानों का नाम लोकगीत है। मानवजीवन की, उसके उल्लास की, उसकी करुणा की, उसके समस्त सुख-दुःख की कहानी इनमें चित्रित हैं।"[5]

तेजनारायणलाल शास्त्री के अनुसार "लोकगीत संगति और काव्य का मिश्रण होता है। लोकगीतों के उपर्युक्त निर्माता लोक भावना में अपने भाव

---

1 डॉ जगमल सिंह - राजस्थानी लोकगीतों के विविध रूप प्रारंभिक-6
2. मीनाक्षी शर्मा लोकगीतों में कृष्ण काव्य का स्वरूप पृ सं 33
3. डॉ चिन्तामणि लोकायन पृ. सं. 16
4. रामनरेशत्रिपाठी - कविता कौमुदी - पृ. सं. 18
5. सूर्यकरण पारीक - राजस्थानी लोकगीत - पृ. सं. 18

को मिला देता है।"[1] लोकसाहित्य विज्ञान में डॉ सत्येन्द्र ने लोकगीतों के बारे में कहा हैं कि "वह गीत जो लोकमानसमास भी हो लोकगीत के अन्तर्गत आयेगा।"[2] देवेन्द्र सत्यार्थी के अनुसार "लोकगीत लोक संस्कृति के मुँह बोलते चित्र हैं।"[3]

'खडीबोली का लोक साहित्य' में डॉ. सत्या गुप्त ने लोकगीतों के बारे में बताया है - "लोक गीत लोक हृदय से स्वच्छन्द ही निःसृत है।"[4] ग्रिम के अनुसार "लोकगीतों का स्वतः उद्‌भव होता है।"[5]

डॉ. चन्द्रशेखर भट्‌ट ने लोकगीतों के बारे में कहा है कि "लोकगीत सर्व सामान्य की बहुश्रुत परम्परा के स्वतः स्फूर्जित उद्‌गार हैं। इनके कर्ता अज्ञात है। उन्में सामूहिक चेतना के दर्शन होते हैं।"[6] डॉ कुन्दन लाल उप्रेती ने 'अपने लोक साहित्य के प्रतिमान' नामक ग्रन्थ में लोकगीतों के बारे में कहा है कि "हमारी दृष्टि से लोक संस्कृति, लोकविश्वास एवं लोकपरम्परा की रक्षा एवं निर्वाह करते हुए लोकजीवन की अपनी रागात्मक प्रवृत्तियों की तस्फूर्त लयात्मक अभिव्यक्ति जिस माध्यम से करता है उसे लोकगीत कहते हैं।"[7]

---

1 डॉ सत्येन्द्र लोकसाहित्य विज्ञान - पृ सं 17
2. तेजनारायणलाल शास्त्री मैथिली लोक साहित्य का अध्ययन पृ सं 11
3. देवेन्द्र सत्यार्थी धरती गाती है पृ. सं 20
4. डॉ सत्या गुप्त - खडीबोली का लोक साहित्य - पृ. सं. 11
5. A folk song composes itself - Encyclopedia of Britanica - P. 448
6. डॉ. चन्द्र शेखर भट्‌ट हाडौती लोकगीत पृ. सं. 26
7 डॉ कुन्दनलाल उप्रेती लोक साहित्य के प्रतिमान - पृ. सं 47

इसप्रकार अनेक विद्वानों ने लोकगीत के बारे में अपना अपना मत व्यक्त किये हैं। इसके विवेचन से निम्न निष्कर्ष निकाले जा सकते है जो लोकगीतों की सामान्य विशेषताएँ है - (1) सहज अभिव्यक्ति लोकगीत की पहली विशेषता है। (2) लोकगीत हृदय का सहज उद्‌गार है। (3) लोकगीतों की परंपरा मौखिक है। (4) इसमें सामूहिक भावों की अभिव्यक्ति है। (5) लोकगीत भावप्रधान एवं गेय होते हैं। (6) लोकगीत व्यक्ति विशेष की न होकर सामाजिक होते हैं।

इसप्रकार लोकगीत अत्यन्त प्रभावात्मक हैं। अधिकाँश विद्वानों ने लोकगीतों के भेद प्रमुखतया संस्कार सम्बन्धी गीत, ऋतु सम्बन्धी गीत, व्रत संबन्धी गीत, जाति संबन्धी गीत, श्रम गीत तथा विविध गीत माने हैं। कुछ आलोचकों ने इन विविध गीतों के अन्तर्गत बालगीतों को भी रखा है। कुछ अन्य आलोचकों से प्रकीर्ण साहित्य के अन्तर्गत बालगीतों को रखा है। जो भी हो जिसप्रकार संतान के बिना एक परिवार अधूरा है उसीप्रकार बालसाहित्य के बिना लोकसाहित्य अपूर्ण ही है। इसलिए लोकगीतों के अन्तर्गत बालगीतों का महत्वपूर्ण स्थान है।

3.4.1 लोकगीतों में बालगीत

लोकसाहित्य के कई विभाग बनाये जा सकते हैं लोकगीत, लोककथा, लोकनाट्‌य, पहेलियाँ, कहावतें आदि। लोकगीतों के ही उपविभागों में एक बालगीत भी है। राहुल सांकृत्यायन जैसे कुछ आलोचकों ने बालगीतों को प्रकीर्ण साहित्य के अन्तर्गत रखा है।

डॉ हरिकृष्ण देवसरे ने बताया है "लोकसाहित्य में बच्चों के गीत सबसे पुराने और सबसे अधिक फैले हुए लोकगीत माने गये हैं। इनकी लय तथा विषयवस्तु की समानता विश्वव्यापी है। इन गीतों में प्राचीन विश्वासों तथा उत्सवों के अवशेष सुरक्षित हैं। इनमें खेल के गीत, गिनती के गीत, ऐतिहासिक गाथाएँ, लोरियाँ तथा बच्चों के स्वनिर्मित गीत ही मुख्यतः आते हैं।"[1] लेकिन लोकगीतों की एक प्रमुख विशेषता इसका अज्ञातकर्तृत्व है। इसलिए बच्चों के स्वनिर्मित गीतों को लोकगीतों के अन्तर्गत रखना कुछ असंगत सा लगता है। लोकगीतों के अन्तर्गत आनेवाले बालगीतों का वर्गीकरण करते समय किसी ने भी बच्चों के स्वनिर्मित गीतों का उल्लेख नहीं किया है। इसमें शंका नहीं है कि बच्चे गीतों का निर्माण स्वयं करते है। लेकिन लोकगीतों के सन्दर्भ में यह ठीक बताया नहीं सकता कि यह किसके द्वारा निर्मित है।

डॉ निरंकार देव सेवक तो लोकगीतों के अन्तर्गत आनेवाले बालगीतों को अलिखित बालगीत कहा है। उनके अनुसार "बच्चों के समाज में ऐसे अनेक बालगीत प्रचलित मिलते हैं जिनके रचयिता या रचनाकाल के विषय में हमें कोई ज्ञान नहीं है। किसी पुस्तक के पन्ने पर सुन्दर चित्र बनाकर जो कभी प्रकाशित नहीं किये गये, पर जो परम्परा से बाल समाज में प्रचलित हैं। वह किसी पाठशाला या कक्षा में उन्हें कभी पढ़ाये नहीं गये और न उन्हें किसी ने परीक्षा का भय बेंत मार-मार कर याद कराया। पर जो बच्चों को अपने आप कहीं न कहीं से सुनने को मिल गये और सुनते ही याद हो गये हैं।

---

1 डॉ हरिकृष्ण देवसरे - बालसाहित्य एक अध्ययन पृ सं 72

वह उन्हें बार बार दुहराते और गाकर सुनाते हैं। उन्हें गाते दुहराते समय उनके शरीर का रोम रोम से सराबोर हो जाता है। उनके बडे अध्यापकों या अभिभाषकों को उन्में कोई रस भले ही न मिले पर बच्चों के मन के असली भाव गीत वही होते हैं। कोई भी युक्ति संगत कल्पना या मनोभाव होते हुए भी बच्चों को उनमें अपने मन का पूरा भाव व्यक्त या कल्पना चित्रित मिल जाती हैं।"[1]

लोकसाहित्य में बच्चों के लिए पृथक रूप में, विशेष विभाग के रूप में कुछ न होते हुए भी अधिकाँश विद्वानों ने लोक साहित्य के विभिन्न विधाओं के अन्तर्गत बालसाहित्य की विभिन्न विधाओं को देखने का प्रयास किया है। इसप्रकार उन्होंने लोकगीतों के अन्तर्गत बालगीतों का चयन किया है। आलोचकों ने बालगीतों के उद्भव और मूलस्रोत के रूप में लोकगीतों को माना है। इस दृष्टि से लोकगीतों के अन्तर्गत बालगीतों का अपना अलग ही स्थान है।

आगे लोकगीतों के अन्तर्गत आनेवाले बालगीतों का वर्गीकरण और वर्णन करने का प्रयास किया गया है। जिससे यह बात और भी स्पष्ट होगी। इसमें बच्चों के लिए विशेष रूप में जो गीत है जैसे खेल के गीत, लोरियाँ, जानकारी बढाने वाले गीत, गिनती के गीत, पशु-पक्षियों से सम्बन्धित गीत आदि के बारे में बताया गया है।

3.5 हिन्दी और मलयालम के लोकगीतात्मक बालगीत

लोक साहित्य के अन्तर्गत प्राचीन बाल साहित्य अपने असली रूप में आज भी विद्यमान है। हिन्दी में लोकसाहित्य के प्रमुख व्याख्याता श्री श्याम परमार ने लोकसाहित्य को तीन अंगों में विभक्त किया है - स्त्रियों

का साहित्य, पुरुषों का साहित्य और बच्चों का साहित्य। उन्होंने बच्चों के साहित्य के और दो भद बताये हैं - बालकों का साहित्य और बलिकाओं का साहित्य। इन दोनों के अन्तर्गत गीत, क्रमबद्ध कथाएँ और वार्ताएँ आती हैं। लोकसाहित्य में तो अधिकांशतः बालगीत पाये जाते हैं।

3.5.1 हिन्दी बालगीत वर्गीकरण

लोकगीतों में बालगीतों का विशेष स्थान हैं। अन्य विधाओं की तुलना में बालगीत बच्चों को ज़्यादा आकर्षित करते हैं। हिन्दी में अनेक विद्वानों ने बालगीतों पर अपने विचार प्रस्तुत किये हैं। साथ ही साथ अनेक आधारों पर बालगीतों का वर्गीकरण भी किया है। ज़्यादात्तर आलोचकों ने सबसे पहले बालगीतों को तीन कोटियों में रखा है 1) शिशुओं के गीत 2) बालकों के गीत 3) बालिकाओं के गीत।

आवश्यकता और रुचि के अनुसार अनेक आधारों पर बालगीतों का वर्गीकरण कर सकते हैं। हिन्दी के अधिकाँश विद्वानों ने विषय के आधार पर बालगीतों का वर्गीकरण किया है। इन विद्वानों के अनुसार विषय के आधार पर बालगीतों के अनेक प्रकार हैं। वास्तव में बडों के लिए जो गीत हैं इनके विषयों की कोई सीमा नहीं। किसी भी विषय पर कुछ भी लिखा जा सकता है। बालगीतों के विषय में भी कुछ निश्चित सीमाएँ नहीं रखी जा सकती। किन्तु बच्चों के अपरिचित और अनभिज्ञ विषय पर लिखे गये गीत कम अनुभववाले बच्चों की समझ में किसी प्रकार भी नहीं आ सकते।

विषय के आधार पर वर्गीकरण करते समय जितने भी विषय हो सकते हैं उतने ही प्रकार के बालगीत भी देखे जा सकते हैं। हिन्दी के विद्वानों

ने विषय के आधार पर बालगीतों के जितने भी वर्गीकरण प्रस्तुत किये हैं उन्में पाँच प्रमुख हैं :-

1) लोरियाँ या पालने के गीत

2) शिशुगीत या नरसरी राइम्स

3) खेल के गीत

4) पशुपक्षियों तथा पेड़ पौधों से संबंधित गीत

5) ऋतुगीत या प्रकृति सम्बन्धी गीत।

हिन्दी के अधिकाँश विद्वानों ने इन पाँछ प्रकार के बालगीतों पर विचार प्रस्तुत किये हैं। इसके अलावा निरर्थक गीत, जानकारी बढ़ानेवाले गीत, दिन सम्बन्धी गीत, गिनती के गीत, हास्य गीत, हिंडोले के गीत, खिलाने के गीत आदि भी इनमें आते हैं।

कुछ विद्वानों ने आयु के आधार पर भी बालगीतों का वर्गीकरण किया है। तीन वर्ष की आयु से लेक़र बारह वर्ष की आयु तक के बच्चों के लिए लिखे गये गीत बालगीत हैं। बच्चों के मानसिक विकास और बुद्धि एवं कल्पना को ध्यान में रखते हुए तीन से बारह वर्ष की आयु तक के बच्चों को चार वर्गों में विभक्त किया जा सकता है। पहले वर्ग में तीन से पाँच वर्ष तक की आयु के बच्चे आते हैं, दूसरे में पाँच से सात तक के आयु के बच्चे, और चौथे में नौ से बारह वर्ष तक की आयु के बच्चे आते हैं। विद्वानों के अनुसार इन चारों वर्गों के बच्चों की कल्पना और बुद्धि के विकास की स्तर भिन्न भिन्न होते हैं। तीन से पाँच वर्ष तक के बच्चों की मनोभावनाएँ और दृष्टि अपने आसपास के व्यक्तियों

और वस्तुओं पर ही सीमित रहती है। पाँच से सात वर्ष तक की आयु के बच्चे अपने को समाज का एक अंग समझने लगते हैं और ऐसा समझने में उन्हें सुख का अनुभव भी होता है। नौ से बारह वर्ष की आयु के बच्चे और भी परिपक्व होते है। इसप्रकार की भिन्नताओं के कारण इन चारों वर्गों के बच्चों के गीत भी भिन्न भिन्न प्रकार के होते हैं।

कुछ विद्वानों ने आस्वादन के आधार पर भी बालगीतों का वर्गीकरण किया है। प्रत्येक बालगीत का उद्देश्य बालश्रोता के मन में रस की निष्पत्ति कराना है। काव्यशास्त्रियों तथा मनोवैज्ञानिकों द्वारा वर्णित रसनिष्पत्ति की बात यहीं भी कही गयी है। बच्चों के प्रायः प्रिय लगनेवाले प्रमुख रस पाँच ही है :- 1) हास्य 2) वीर 3) शान्त 4) अद्भुत 5) वात्सल्य। विद्वानों ने इसके आधार पर भी बालगीतों का वर्गीकरण किया है। शान्तरस प्रधान गीत अधिक नहीं पाये जाते। प्रमुख रूप में चार प्रकार के गीत है - 1) वीरगीत 2) हास्यगीत 3) वात्सल्य गीत 4) अद्भुत गीत।

बच्चों की जितनी भी क्रियाएँ हैं इन सभी के सम्बन्ध में बालगीत पाये जाते हैं। बालकों से सम्बन्ध रखनेवाले गीतों को बालगीत कहते हैं। बालगीतों के ऊपर दिया गये वर्गीकरणों के आधार पर समस्त बालगीतों को निम्नलिखित वर्गों में बाँटा जा सकता है -

3.5.1.1 लोरियाँ या पालने के गीत

छोटे बच्चों को सुलाने के लिए जो गीत गाये जाते हैं उन्हें लोरियाँ या पालने के गीत कहते हैं। ये गीत छोटे बच्चों को सुलाने के लिए

माँ द्वारा गाये जाते हैं। अंग्रेज़ी साहित्य में ऐसे गीतों को 'लल्लबि' कहते हैं। इसका एकमात्र उद्देश्य बालक को प्रसन्न रखना और सुलाना है।

'लोकसाहित्य की भूमिका' नामक पुस्तक में राहुल सांकृत्यायन ने 'पालने के गीतों' पर विचार करते हुए बताया है कि "पालने के गीत उतने ही प्राचीन हैं जितना मानव का इस पृथ्वी पर आविर्भाव। अतः इन गीतों की परंपरा चिर प्राचीन है। शिशु जब बच्चा रहता है, तब माँ उसे थपकियाँ देकर सुलाती है। वह उसे पालने पर सुलाकर लय से गाकर गीत सुनाती है। यही गीत 'पालने के गीत' कहे जाते हैं। इन गीतों का कोई अर्थ नहीं होता क्योंकि ये अर्थ प्रधान न होकर लयप्रधान होते हैं। इन्में ऐसी शब्दावली का प्रयोग किया जाता है जो श्रोत सुखद होती है और जो आचरण साम्य के कारण लय-युक्त है। इस पालने के गीतों में दो या तीन से अधिक शब्द नहीं होते। गाये जाते हुए इन गीतों की आवाज़ झुलाये जाते हुए पालने की आवाज़ के समान होती है। इनका शिशु के स्नायुओं पर बडा अच्छा प्रभाव पड़ता है।"[1]

इसप्रकार बालगीतों में अर्थ की प्रमुखता न होकर लयात्मकता अधिक होती है जिसमें रीझकर बच्चे सो जाते हैं। उदाहरण के लिए-

"घुगूती माँ सूति क्या खांदी, दूध भाती;
से जा से जा, निन्दै वाली, सेणक सेंद।"[2]

---

1 राहुल सांकृत्यायन - लोकसाहित्य की भूमिका - पृ. सं. 170

2. गढ़वाली लोकगीत पृ सं. 205

इसमें अर्थ का महत्व नहीं है। घुगूती एक पक्षी है, जिसके सम्बन्ध में प्रचलित लोकधारणा है। कहते हैं पूर्व जन्म में घुगूती जब छोटी बालिका थी तो उसकी विमाता ने उसे सोते हुए मार डाला था। माँ बच्चे से कहती है कि घुगूती माँ सो गयी है। तू भी सो जा। तू खाना क्या चाहता है? दूध और भात? है नीन्द के बालक! तू सोने के लिए रो रहा है, इसलिए सो जा।

लोकगीतों की यह विशेषता है कि उनमें उस समय प्रचलित विश्वासों, लोक धारणाओं और लोकजीवन का अंश देखा जा सकता है। इस गीत में घुगूती पक्षी से सम्बन्धित एक लोकधारणा का चित्र मिलती है। इस गीत में अर्थ की प्रधानता से अधिक लय की प्रमुखता है जिसमें रीझकर बच्चे सोते है। क्योंकि छोटे बच्चे गंभीर अर्थों को नहीं समझ पाते। इसलिए इन गीतों में लयबद्धता प्रमुख है, जिससे बच्चों का मनोरंजन होता है।

राहुल सांकृत्यायन के अनुसार "इन गीतों में स्वर साम्य पैदा करने के लिए एक ही शब्द की बार बार आवृत्ति करती रहती है। जिससे अभीष्ट प्रभाव उत्पन्न हो सके।"[1] उदा :-

"हाल हाल बबुआ,
कुरुई में ढ़ेबुआ
माई अकसरुआ,
बाप दरबरुआ,
हाल हाल बबुआ।"[2]

---

1 राहुल सांकृत्यायन - लोक साहित्य की भूमिका - पृ. सं. 171

2. डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय - भोजपुरी लोकसाहित्य का अध्ययन - पृ. सं. 228

इस गीत के प्रत्येक चरण के अन्तिम शब्द में एक ही प्रकार के स्वरों की उपलब्धि होती है। हाल, हाल की आवृत्ति इसी अभिप्राय से की है। इसप्रकार लोरियाँ अधिकतर मनोरंजन प्रधान ही होते हैं।

3.5.1.2 शिशु गीत

शिशुगीत की परंपरा काफी पुरानी है। लेकिन शिशुगीत शब्द आधुनिक युग की देन है। लोकगीतों में शिशुगीतों का अपना अलग महत्व है। ये गीत छोटे बच्चों के लिए गाये जाते हैं। कुछ आलोचक इन्हें खेल के गीतों के अन्तर्गत रखते हैं। लेकिन शिशु गीत खेल के गीत से भिन्न हैं। शिशु गीत वे हैं जिन्हें छोटे बच्चे अपने मनोरंजन के लिए गाते हैं और गाते समय विविध अंगमुद्राओं के द्वारा इन गीतों का अर्थ दूसरों को समझाते हैं -

"चेऊँ मेऊं, चेऊँ मेऊँ
चेऊँ मेऊँ, चेऊँ मेऊँ
हुर्रा बिलइया।"[1]

इसमें बालक बिल्ली के रोने का अनुकरण किया है। बिल्ली के समान रोने की मुद्रा करके बालक इसे गाता है। शिशुगीत मनोरंजन प्रदान करने के साथ-साथ बच्चों के आरंभिक विकास में स्वाभाविक रूप से सहायक भी सिद्ध होते हैं :-

"कू कू कू कू कोयल बोली
राजाजी के बाग से......"[2]

---

1 डॉ. हरिकृष्ण देवसरे - बालसाहित्य एक अध्ययन - पृ. सं. 64
2. डॉ. निरंकारदेव सेवक - बालगीत साहित्य पृ. सं 33

इसमें कोयल की बोली किसप्रकार है तथा कोयल कहाँ दिखता है आदि जानकारियाँ बच्चों को सहज रूप में मिलती हैं। इसप्रकार शिशुगीत मनोरंजनप्रधान तथा ज्ञानवर्धक हैं। अंग्रेज़ी में इसे नरसरी राइम्स कहते हैं।

3.5.1.3 खेल के गीत

बालगीतों में खेल के गीत सबसे प्रचलित एवं सर्वप्रमुख है। जितने खेल पाये जाते हैं उतने गीत भी हैं। खिलौनों से संबन्धित गीतों को भी खेल के गीतों के अन्तर्गत रखा गया है। राहुल सांकृत्यायन के अनुसार "किसी देश के खेल-कूद के अध्ययन से वहाँ के निवासियों के स्वभाव, साहस और शक्ति का पता चलता है। जिस जाति के खेल जितने साहस पूर्ण और वीरता से युक्त होंगे वह जाति उतनी ही साहसिक समझी जायेगी। खेल-कूद लोकसंस्कृति का प्रधान अंग है। इन खेलों में सहयोग की प्रवृत्ति लक्षित होती है। अंग्रेज़ी की एक कहावत है कि वाटरलू की लड़ाई क्रिकेट के मैदान में ही जीती गयी थी। जिसका आशय यह है कि साथ मिलकर काम करने की आदत से ही वैल्लिङ्टन को विजयश्री प्राप्त हुई थी। आदिम लोगों में खेलकूद में सहयोग की जो भावना थी वह आज भी उपलब्ध होती है। भारत के प्रत्येक राज्य में विभिन्न प्रकार के खेल पाये जाते हैं।"[1]

जितने प्रकार के खेल पाये जाते हैं उनके गीत भी उतने ही प्रकार के हैं। केल से मनोरंजन ही नहीं बल्कि सहयोग भी भावना भी मिलती है। कबड्डी का खेल इसका उदाहरण है :-

---

1 राहुल सांकृत्यायन लोकसाहित्य की भूमिका पृ. सं 183-184

"कबड्डी में लबड़ी पाताल हांहाराई

चील्ह कउआ हाक पारे वाघ लरिआई।"[1]

इन में प्रयुक्त शब्दों का कुछ विशेष अर्थ नहीं, सांस रोककर एक ही सांस में सारे गीत गाना पड़ता है इसलिए इसके अनुरूप इसका बनावट है। ये गीत केवल तुकबन्दी हैं। ये खिलाड़ियों के जोश को बढाते हैं। इस प्रकार कबड्डी खेलते समय गाानेवाले अनेक गीत मिलते हैं -

"ए कबड्डी रेता, भगत मोर 'बेटा

भगताईन मोरी जोरी खेलबि हम होरी।"[2]

एक ही सांस में सारा गीत गाना पड़ता है इसलिए कुछ चतुर लड़के ऐसे गीत चुनते हैं जिसको गाते समय सांस लेने की थोडी फुरसत मिल जाय। जैसे :-

"आम छू आम छू कड्डी झनक छू।"[3]

कुछ प्रदेशों में केवल कबड्डी... कबड्डी ही कहकर यह खेल खेला जाता है। कुछ लोग कुडु... कुडु.... शब्दो का प्रयोग भी करते हैं।

कबड्डी खेलते समय इसप्रकार बच्चे अनेक गीत है। इसका और भी उदाहरण है। जैसे :-

---

1 डॉ कृष्णदेव उपाध्याय - हिन्दी प्रदेश के लोकगीत - पृ. सं. 101

2. राहुल सांकृत्यायन - हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, सोलहवाँ भाग पृ. सं 149

3. डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय हिन्दी प्रदेश के लोकगीत - पृ. सं. 101

1) *"एक कबढ़िया आईले, तबला बजाईले।*
तबला में पइसा, लाल बगइचा।।"[1]

2) *"आव तानी हो, परइठ जानि हो।*
टाँग जाई टूटी, कपार जाई फूटी,
लड़कपन छूटी।।"[2]

इन गीतों से स्पष्ट है कि ये केवल तुकबन्दी हैं, इनमें भाव और भाषा का विशेष ध्यान नहीं रहता।

उसीप्रकार बच्चों का एक प्रिय खेल है - 'ओका-बोका'। यह खेल खेलते समय बालक भिन्न भिन्न गीत गाते हैं -

"ओका बोका तीन तड़ोका
लउआ लाठी चन्दन काठी।
बाग में बगउवा डोले।
सावन में करइली फूले।
ओ करइली के नाँव का?
इजईल बिजईल, पानवा फूलवा
ढ़ोढ़िया पचक।।"[3]

---

1 राहुल सांकृत्यायन - लोकसाहित्य की भूमिका - पृ सं 184-185
2. वहीं - पृ सं. 185
3. डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय - हिन्दी प्रदेश के लोकगीत पृ सं 101

यह खेलते समय गानेवाले एक अन्य गीत हैं -

"ताई ताई पुरिया घीव में चमेरिया
हम खाई कि भउजी खाई
भउजी पतरेंगिया।"[1]

ब्रज प्रदेश में यह खेल अटकन-बटकन नाम से जाना जाता है। छोटे बच्चे मिलकर यह खेलते हैं तथा गाते हैं :-

"अटकन बटकन दही चटाके,
मन फूले बंगाले।
तुरई को मास मकोई को उका।।

मामा लायो सात कटौरी
एक कटोरी फूटी,
मामा की बउ रुठी,
काहे बात पै रूठी।।
दही दूध भौतेरी
खायवे कूँ मुँह टेढौ।
चीटीं लेगै के चींटा।"[2]

---

1 राहुल सांकृत्यायन - लोकसाहित्य की भूमिका पृ सं 146-147
2. राहुल सांकृत्यायन - लोकसाहित्य की भूमिका - पृ. सं. 186

इसके अलावा मौन साधन, झाका झूमरी जैसे अनेक खेल गीत लोक साहित्य के क्षेत्र में पाये जाते है तथा इनके गीत भी मिलते हैं। उदाः-

मौन साधन के गीत-

"आदा बादा, नून सवादा;
मछरी के कंटा, बैल के सींग;
जे बोली से गँइयाँ बोली;
सगरी नगरिया बोली;
जे बोली ओकरा माई के ।"[1]

मुट्ठी को काटकर खेलने वाले एक प्रकार का खेल :-

"तार काटो तरकुल काटो, काटो रे बन खाजा।
हाथी पर के घुघुरा चमकि चले राजा।
राजा के रजइया अवरू बाबू के दुपाटा।
इचि मारो खींचि मारो मुसर अइसन बेटा।।"[2]

उसीप्रकार लड़कियाँ द्वारा ही खेले जानेवाले खेल भी मिलते हैं। उदाः- झाका झूमरि, ये खेलते समय लड़कियाँ गोलाई में खड़ी हो जाती हैं। वे कभी आगे आती हैं और कभी पीछे जाती हैं। इस प्रकार झूमते समय ये गीत गाती रहती हैं :-

"एक हाड़ी झिकड़ा, बड़ेरी लागे घूँघा।
सासु पकवली गल गलं पूआ।

---

1 राहुल सांकृत्यायन लोकसाहित्य की भूमिका -' पृ. सं 186
2. वहीं - पृ. सं 186

अपने खइली पिआवाहा पूआ।

हमारा के दिहली तेलहवा पूआ।

ना खाइबि पूआ खेलवि जूआ।

ना खाइबि पूआ खेलबि जूआ।"[1]

इसप्रकार खेल के गीत केवल तुकबन्दी है। इसमें प्रयोग करनेवाले शब्दों का विशेष अर्थ नहीं रहता। मनोरंजन के साथ साथ सहयोग की भावना होने के कारण खेल के गीतों का अत्यधिक महत्व है।

3.5.1.4 पशु-पक्षियों तथा पेड़-पौधों से संबन्धित गीत

बच्चे इस संसार में नये नये आये हैं। इसलिए वे इस संसार की हर चीज़ को कौतूहल की दृष्टि से देखते हैं। विशेषकर वे अपने आसपास की विभिन्न चीज़ों, पेड़-पौधों तथा पशु पक्षियों से आकृष्ट होते हैं। इनमें जिन्हें बच्चों ने देखा भले ही न हो, गाने के माध्यम से सहज कल्पना भी करते हैं। जानवरों का चलना-फिरना, हिलना-डुलना, रेंगना आदि देखकर उन्हें कुतूहल होता है। यदि न देखें तो भी जानवरों के विषय में वे अधिक से अधिक जानने का मौका गीत से मिलता है। बच्चे जानवरों की बोलियों का नकल करते हैं। जानवरों को इतना पसन्द करने के कारण जानवरों से सम्बन्धित गीत भी बच्चों को प्रिय लगते हैं। उदाहरणस्वरूप जानवरों से सम्बन्धित एक गीत :-

"एक देखि लपटी

दुई देखि झपटी

तीनि देखि चलिहे पराई।"[2]

---

1 राहुल सांकृत्यायन - लोकसाहित्य की भूमिका पृ. सं 186

2. वहीं पृ सं 186

जानवरों से संबन्धित गीतों में प्रत्येक जानवर की किसी विशेषता का वर्णन होता है। इसमें गीदड़ का चित्रण है। गीदड बड़ा डरपोक जानवर हैं। वह आदमी को देखकर भाग जाता है। उसकी इस विशेषता का वर्णन इस गीत में किया है। उसीप्रकार बिल्ली से सम्बन्धित एक गीत देखिए :-

"विराळी, विराळी, बल कख जांदी?
बल माछ मार्न।
मार्ली कनी? छप छप, छप छप
लौली कनी? सरपट, सरपट!
काटली कनी? खर्स, खर्स!
पकौली कनी? छ्याँ - म्याँ, छ्याँ - म्याँ।
खाली कनी? कुरमुट, कुरमुटं
तबरेक आया एक कुत्ता
विराळी भागण बैठे - सुरक, सुरक!
विराळी विराळी कख चै भागणि?
मैं माछ मार्न जादौं।"[1]

इसमें बिल्ली की चारित्रिक विशेषता का चित्रण है। बच्चों को सबसे परिचित जानवर है बिल्ली। बच्चा जानता है कि बिल्ली कुत्ते से डरती है। ये गीत वार्तालाप शैली में हैं। बच्चा बिल्ली से पूछता है कि "बिल्ली, बिल्ली, तू कहाँ जाती है? बिल्ली इसका उत्तर देती है कि वह मछली मारने

---

1. डॉ. गोविन्द चातक - गढ़वाली लोकगीत एक सांस्कृतिक अध्ययन से उद्धृत - पृ. सं. 205

जाती है। इसके बाद मछली को मारने से सम्बन्धित अनेक प्रश्न बच्चा पूछता है और बिल्ली इसका उत्तर देती है - मारोगी कैसे? सरपट - सरपट, काटोगि कैसे? खर्स, खर्स पकायेगी कैसे? छ्याँ-म्याँ खोयेगी कैसे? कुरमुर-कुरमुर। ये सभी शब्द बिल्ली की जो प्रवृत्ति है इसके अनुकूल है। उदाहरण के लिए खाते समय कुरमुर कुरमुर ऐसा शब्द उत्पन्न होता है। इस गीत से यह भी स्पष्ट है कि बिल्ली का सबसे अधिक पसन्द का खाना मछली है। इसलिए ही आम लोगों के बीच में जो आदमी मछली अधिक पसन्द करता है उसे बिल्ली नाम से पुकारता है। इसप्रकार बातचीत करने के बीच अचानक कुत्ता आता है तब बिल्ली भाग जाता है। आगे बच्चा पूछता है कि बिल्ली तुम कहाँ भाग रही हो? तब भी वह अपने डर के बारे में नहीं बताता, यह कहते जाता है कि वह मछली मारने के लिए भाग रही है। इस प्रकार इस गीत में बिल्ली की चारित्रिक विशेषता के बारे में बताया गया है। इसप्रकार जानवरों से सम्बन्धित अनेक बालगीत लोकसाहित्य में मिलते हैं।

3.5.1.5 ऋतुगीत या प्रकृति स़म्बन्धी गीत

लोकसाहित्य के क्षेत्र में प्रकृति का अत्यन्त महत्व है। बालक-बालिकाएँ विभिन्न अवसरों पर ये गीत गाते हैं। वे कभी-कभी ऋतुओं से संबन्धित गीत गाते हैं तो कभी प्रकृति सम्बन्धी गीतों का गायन करते है। उदाहरण के लिए वर्षा ऋतु से सम्बन्धित एक गीत -

"आव रे बरसाद

घेवरियो परसाद

उनी उनी रोटली ने कारेलानु शाक

मेघ मेघ राजा।

दिवाणी ना बाजरा ताजा।"[1]

उसीप्रकार वर्षा के स्वागत में गानेवाला यह गीत बड़ा सुन्दर हैं -

"बरस रे बादड़ी

बीर ना खेत मां

(तो) बटी नूं देवरूं

बेन ना पेट मां"[2]

इसप्रकार कुहरे का चित्रण करनेवाला गीत भी प्रसिद्ध हैं। पहाडों पर सावन में कुहरा बडा विचित्र होता है। चारों ओर फैलाकर कभी कभी वह इतना जम जाता है कि एक दूसरे को न देख सकेगा। तब जी चाहता है कि कुहरा हटे और दृश्य जगत् सामने आवे -

"कुरेडी रांड फट फट्

लवै मसाण को घट रिंगोलो

हुंडी विराली गाड़ बगौला,

श्रामणू की छोरी सोगौ तरौलू,

कुरेडी रांड फट, फट।"[3]

---

1 राहुल सांकृत्यायन - लोकसाहित्य की भूमिका - पृ सं. 175

2. वहीं पृ सं 176

3. डॉ गोविन्द चातक गढ़वाली लोकगीत एक सांस्कृतिक अध्ययन पृ. सं. 206

इस गीत में बालक कुहरे से फट जाने को कहते हैं। कुहरे के फट जाने के लिए उसके द्वारा अनेक कार्यों को करने की बात बतायी है। वह कहता है कि हे कुहरे फट जा, मैं तुझे कुछ दूँगा, लहू के श्मशान में चक्की चलाऊँगा, लंगडी बिल्ली को नदी में बहाऊँगा, ब्राह्मण की लड़की को झूला पार करवाऊँगा, हे कुहरे तू फट जा। इसप्रकार बच्चे अपनी कल्पना के अनुसार गाने गाते हैं।

3.5.1.6 अन्य लोकगीतात्मक बालगीत

इन बालगीतों के प्रमुख पाँच प्रकार है। विद्वानों ने इसके अलावा भी बालगीतों को अनेक प्रकारों में वर्गीकृत किया है। उनमें कुछ इसप्रकार है-

3.5.1.6.1 जानकारी बढ़ानेवाले गीत

अधिकाँश बालगीत बच्चों को मनोरंजन कराने के साथ साथ जानकारीयों में बढावा भी देते हैं। बच्चे इस प्रकार के गीत गाकर खुश रहते हैं साथ ही उसे कुछ न कुछ शिक्षा भी मिलती है। उदाहरण के लिए :-

"बृहस्पद मेरी दाई, शुक्र की खबर लाई
शुक्र मेरा भइया, मैं खेलूँ धमाक् धैया
सनीचर मेरा नाना, मुझे कान् पकड बुलवाना।"[1]

यह हफ्तों के नामों का परिचय करानेवाला गीत हैं। बच्चों के लिए इन नामों का जानने एवं याद रंखने की सुविधा इसके द्वारा की गयी है।

---

1 डॉ. सत्यागुप्त - खडीबोली के लोकगीतों का अध्ययन - पृ. सं. 17

3.5.1.6.2 खिलाने के गीत

बच्चे खेलों में डूबकर सही वक्त में खाना नहीं खाते। उन्हें अच्छी तरह खिलाने के लिए माताओं को गीत का गायन करना पडता है। इसप्रकार गानेवाले गीतों को खिलाने के गीत कहते हैं। उदाहरण के लिए :-

"चाना मामा आरे आव, पारे आव
नदिया किनारे आव।
सोने के कटोरवा में दूध-भात
ले ले आव
बबुआ के मुँहवा में घूँट घूँट।"[1]

इसमें चन्दा को दिखाकर बच्चे को खिलाने का प्रयास किया गया है। बच्चे चन्दा को बहुत पसन्द करता है। प्यार भरे स्वर में बच्चे चन्दा को मामा बुलाते हैं। चन्दा बच्चों का अपना दोस्त है। चन्दा को लेकर अनेक कहानियाँ एवं बालगीत हैं। इससे ही स्पष्ट है कि चन्दा बच्चों को कितना प्रियंकर है। माँ चन्दामामा को बुलाकर नदी के किनारे आने को कहती है। माँ गाती है कि चिड़िया पत्ते चांटते है तो बच्चा दूध और भात खाता है। इसप्रकार अनेक कार्यों को मिलाकर गाते गाते माँ बच्चे को खिलाते हैं।

दूध पिलाने के लिए गाये जानेवाला यह गीत भी प्रसिद्ध है जिसमें गाय के शुद्ध दूध की प्रशंसा है :-

---

1 सं. राहुल सांकृत्यायन हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास (भोजपुरी) पृ सं 149

"बबुआ के गइया आंटी,

दूधवा ले अब भरि कांटि।

बबुआ पियसु भरि कांटि।"[1]

माँ कहती है कि मेरे बच्चे की गाय ने पहली बार बच्चा दिया है इसलिए मेरे बेटे को पीने के लिए कांटी में दूथ लाओ। कांटी, मिट्ठी का बरतन है जिसमें दूध दुहा जाता है। इसप्रकार दूध पीने का इनकार करते हुए रोनेवाले बच्चे गीत के संगीत को सुनकर चुप हो जाता है और दूध पीना प्रारंभ कर देता है।

3.5.1.6.3 गिनती के गीत

गिनती के गीत भी मनोरंजन के साथ साथ ज्ञान प्रदान करनेवाले हैं। ये बच्चों को संख्याबोध देते हैं। बच्चों को गिनने का तरीका सिखाता है। उदाहरण के लिए :-

"एक बाई परजन, वामन वरजन

तीन तिलोखरी, चार करैला

पाँच न्योरी, छठौं हजूरी

सत सीताफल, अठ गंगाजल।

नौ नैननके, दस मैचनके।

ग्यारा काला काँच के।

बारा बेटा बाप के।।"[2]

---

1 डॉ कृष्णदेव उपाध्याय हिन्दी प्रदेश के लोकगीत पृ सं 263

2. वहीं - पृ सं. 263

इसमें एक से लेकर ग्यारह तक की संख्या को विभिन्न चीज़ों के साथ सम्बन्ध जोडकर प्रस्तुत किया गया है। हास्य गीत :-

इसप्रकार के गीत हास्यात्मक' होते हैं। ये गीत केवल मनोरंजन प्रदान करने के लिए गाये जाते हैं।

उदाहरण :-

"मामा मामा भूख लगी
ले ले बेटे मुँगफली
मुँगफली में दाना नहीं
हम तुम्हारे मामा नहीं।"[1]

ऐसी गीत कभी-कभी सामाजिक रीति रिवाज़ों पर गहरा व्यंग्य छोड देता है। पुराने ज़माने में घर में मामा का बहुत बडा स्थान था। कोई मामा के विरुद्ध कुछ बोलता है तो उसे घर से निकाल देने तक की शिक्षा दी जाती है।

3.5.1.6.4 हिंडोले के गीत

इस वर्ग के गीत हिंडोले पर. झूलते समय गाये जाते हैं। यह हिंडोले के ऊँचे नीचे आने के तुक में गाये जाते हैं। उदा :-

"बाबा निमिया के पेड जिनि काटेउ,
निमिया चिरईया बसरे।

---

1 डॉ कृष्णदेव उपाध्याय - हिन्दी प्रदेश के लोकगीत पृ सं 267

बलैया लोऊँ बीरन

बाबा बिटियइ जिनि कोउ दुःख देइ;

बिटिया, चिरइया की नाई।।

बलैया लाऊँ बीरन।"[1]

पेड काटने की शंका ही गींत का विषय है। पेड काटने से चिडिया कहाँ वास करेगी, यही आशंका है। कुछ आलोचक इस प्रकार के गीतों को खेल के गीत के अन्तर्गत रखते हैं तो कुछ अलग रूप में देखते हैं।

इसके अलावा कुछ आलोचक दिन संबन्धी गीत, निरर्थक गीत आदि को भी मानते है। लेकिन दिन सम्बन्धी गीतों को कुछ लोग जानकारी बढानेवाले गीतों के अन्तर्गत रखते है तथा निरर्थक गीतों को हास्यगीत के अन्तर्गत रखते हैं। निरर्थक गीतों का विषय केवल मनोरंजन है। इसकी पद्यावली निरर्थक है।

3.5.2 मलयालम बालगीत वर्गीकरण

केरल की संस्कृति को लोकगीत परंपरा की देन महत्वपूर्ण हैं। लोकगीत किसी पण्डित या कवि द्वारा रचित गीत नहीं हैं। जो बात कहनी थी, उसे सरल ढंग से लोगों ने गाया, उसे दूसरों ने सुन लिया, याद रखकर औरों को सुनाया और मौखिक रूप से पीढ़ियों तक पहूँचाया। इस प्रकार जनमानस के हृदयस्पन्दन की लेकर चलनेवाले लोकगीतों की धारा सुनती सुनायी पीढियों से गुज़रते हुए अब भी बह रही है। हिन्दी में हो या मलयालम में

---

1 डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय - हिन्दी प्रदेश के लोकगीत पृ. सं 267

लोकगीतों के अन्तर्गत बालगीतों को महत्वपूर्ण स्थान मिला है। मलयालम में कई आलोचकों ने लोकगीतों के अन्तर्गत आनेवाले बालगीतों का चयन करके इकट्ठा किया है तथा इसपर आलोचना करके अपना विचार प्रस्तुत किया है।

अधिकाँश विद्वानों ने आयु की दृष्टि से बालगीतों को दो वर्गों में बाँट दिया है - 1) छोटे बच्चों के गीत तथा 2) बड़े बच्चों के गीत। इनमें लोरियाँ, खेल के गीत, निरर्थक गीत, हास्यगीत, पशु-पक्षियों से सम्बन्धित गीत, हिंडोले के गीत, ऋतुसंबन्धी गीत, आदि है। मलयालम बाल-लोकगीतों में सबसे प्रचलित गीत खेल के गीत हैं।

3.5.2.1 खेल के गीत

मलयालम लोक-बालगीतों में जितनी अधिक मात्रा में खेल के गीत पाये जाते हैं उतने अन्य गीत नहीं। इसका कारण यह हो सकता है कि बच्चे छोटे हो या बडे, वे खेलना अधिक पसन्द करते हैं। मलयालम में सौ के आसपास बच्चों के खेल हैं और इनमें कहीं ज़्यादा खेल सम्बन्धी गीत भी है। उदाहरण के लिए :-

"अत्तिकुत्ति सोलह रे
कौन बताया रे सोलह
मैं बताया रे सोलह
सोलह ना तो गिन लो रे।"[1]

---

1 वर्गीस पॉल - 501 अक्षयगानङ्ङळ् पृ. सं 15
"अत्तिकुत्तिप्पतिनारु
आरु परञ्ञु पतिनारु
ञान परञ्ञु पतिनारु
पतिनारल्लेलेणिक्को"

मलयालम में ओणम जैसे त्योहार से सम्बन्धित होकर खेलनेवाले अनेक गीत हैं। ओणम के समय लोग फूल से आंगन सजाते हैं। इसकेलिए फूलों को तोडने के लिए बच्चे एकत्रित होकर जाते हैं। इससे सम्बन्धित एक खेल भी प्रचलित है। जिसका गीत इसप्रकार है :-

"फूल तोड़ने के लिए आते हो?
आते हो बहुत सवेरे?
तुम्हें कौन चाहिए?
हमें...... चाहिए।
कौन लेकर जायेगी?
मैं लेकर जाऊँगी।
तो तुम लेकर जाओ न?
मैं तो लेकर जाती हूँ।"[1]

इसप्रकार लडकियाँ दो गुटों में विभक्त होकर यह गाना गाती है। इसमें चौथी पंक्ति में जो खाली ज्गह है वहाँ एक लड़की का नाम बता जाता है। और छठी पंक्ती में जो खाली जगह है वहाँ उस लड़की को ले जानेवाली

---

1 वर्गीस पॉल अक्षय गानङ्ङळ् पृ. सं. 16

"पू परिक्कान पोरुमो
पोरुमो अति राविले?
आरे निङ्ङळ्क्कावश्यम्
ने ञङ्ङळ्क्कावश्यम्
आरु वन्नु कोण्डु पोकुम्?
वन्नु कोण्डु पोकुम्
एन्नालोन्नु काणट्टे
एन्नालिप्पोळ् कण्डोळू।"

लड़की का नाम आती है। एक ओर की लड़कियाँ उस लड़की को पकडकर ले जाने की कोशिश करती है और कुछ लड़कियाँ उसे जाने नहीं देती। इसप्रकार यह खेल खेला जाते है।

केरल में 'कण्णरम्पोत्तिक्कळी' (आँख मिचौनी का खेल) बहुत ही प्रसिद्ध है। मलयालम में यह गीत गाकर बच्चे आँख मेचौनी खेलते हैं :-

"आँख बन्द किया
आँखों में सूरज ने मारा
आओ....... आओ......"[1]

इसप्रकार के अनेक खेल हैं और इसके विभिन्न गीत भी हैं। लेकिन इन सबों का उद्देश्य एक है। इसलिए इसमें बहुत सी समानताएँ देखने को मिलती हैं। केरल के बहुत से खेल हिन्दी प्रदेश के खेलों से समानता रखते हैं। कभी कभी शब्दव्यवस्था दोनों में एक जैसी रहती है। नाम में भी समानता रखते हैं। उदाहरण के लिए 'अटकन-बटकन' और अरिप्पो-तिरिप्पो, दोनों खेल के नामों में समानता है, उसी प्रकार खेलने के ढंग में भी दोनों समानता रखती है। अरिप्पो तिरिप्पो खेल का गाना इसप्रकार है :-

"अरिप्पो तिरिप्पो अलंकृत मंगल
दाल और पन्द्रह हाथी, घोड़े

---

1 विश्वंभरन् किळिमानूर नम्मुटे नाडन् पाट्टुकळ् पृ सं 17
"कण्णारम पोत्ति पोत्ति
कण्णिन्टूल्लिल सूर्यन कुत्ति
वायो.......वायो.......।"

नहाते जपते वक्त

कौन सा फूल?

मुरिक्किन फूल।"[1]

इस गीत में समाज की आम प्रवृत्तियों पर संकेत है। मंगल कर्म शादी है। शादी के समय घर को सजाया जाता है। दाल के बिना भोजन और हाथी के बिना बारात अधूरा है। बारात में जितने हाथी होते हैं वर को उतना ही संपन्न मानते है। इसप्रकार गाने के साथ एक बच्चा दूसरों के हाथ को छूते रहते है और अंत में गाना समाप्त होने पर जिसके हाथ को छूता है वह खेल से बाहर हो जाता है।

इसप्रकार अनेक खेल के गीत मलयालम में पाये जाते हैं।

3.5.2.2 लोरियाँ या पालने के गीत

छोटे बच्चों को सुनाने के लिए गाये जानेवाले गीत हैं लोरी गीत। बच्चे के रोते समय इसे रोकने और उसे सुलाने का प्रयत्न माँ करती है। उदाः-

"बिटिया मेरी राजदुलारी

रोओ रोओ रोओ मत

इक दिन आयेगा तेरा दुल्हा

---

1 वर्गीस पॉल - अक्षय गानङ्ङळ् पृ. सं. 14
"अरिप्पो तिरिप्पो तोरणिमंगलम्
परिप्पुम् पन्दण्डानेम्, कुतिरेम्
कुळिच्चु जपिच्चु वरुम्पोळ्
एन्तुम्पू? मुरिक्किन पू।"

साथ में लायेगा सोना चान्दी

किलु किलु आये चांदी की न्यारी

खन खन नाचै चान्द कटोरी

ताला बन्द रहा कोठार

रोओ रोओ रोओ मत

बिटिया मेरी राजदुलारी।"[1]

UNIVERSITY LIBRARY
Cochin - 682 022
COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY

इस गीत में सुलाते समय रोती रहनेवाली बिटिया को अनेक चीज़ों की लालच देकर उसका रोना बन्द करने और सुलाने की कोशिश की जाती है। समाज की यह आम रीति रही है कि जहाँ भी लड़की का जन्म होता है, लोग विश्वास करते हैं कि भगवान ने कहीं कहीं उसके लिए वर भी रखा है। यह आम विश्वास लड़कियों के लिए गायी जानेवाली लोरियों में भी प्रकट होता है। इन पंक्तियों में भी छोटी बच्ची के वर के आने- उसके लिए गहनें लाने आदि का वर्णन है। भारतीय रिवाज़ के अनुसार लड़की के जन्मते ही उसके विवाह की तैयारी के रूप में गहनों का संग्रहं किया जाता है। लोगों के अनुसार

---

1 एस. मोहनचन्द्रन - नाडन् पाट्टुकळ-2 पृ सं 25

"करयल्ले करयल्ले पोन्मकळे
निन्नेक्केट्टानाळु वरुम्
आनक्केडुक्के पोन्नु वरुम्
वेळ्ळित्ताक्कोलोड़ि वरुम
कुञ्ञिक्किण्णम् तुळ्ळिवरुम्
पूट्टिट्टा पत्तायम् मूडि वरुम्
करयल्ले करयल्ले पोन्मकळे
निन्नेक्केट्टानाळु वरुम।"

गहनों के बिना शादी अधूरी है। केरल के लोगों का विश्वास है कि "लड़की हो तो सोना चाहिए।"[1]

लोकगीत बडों से सम्बन्धित हों या बच्चों से सम्बन्धित दोनों में सांस्कृतिक आचारों से संबन्धित पदों का प्रयोग तो प्रचुरमात्रा में मिलता है। उदाहरण के लिए केरल की संस्कृति से सम्बन्धित शब्द है - 'वेळ्ळित्ताक्कोल' (चान्दी की चाबी) कुञ्ञिक्किण्णम् (छोटी कठोरी) पत्तायम् (कोठार) आदि। केरल कृषिप्रधान देश है। वेळ्ळित्ताक्कोल, कुञ्ञिक्किण्णम्, पत्तायम् आदि शब्द केरल की कृषि संस्कृति से उत्पन्न है। पत्तायम् में खेत में उपजे हुए धान का संग्रह किया जाता है। 'चान्दी की चाबी' से उसे बन्द रखा जाता है और कुञ्ञिक्किण्णम् में पके हुए चावल को परोसा जाता है। यहाँ कुञ्ञिक्किण्णम् का प्रयोग जानबूझकर किया गया है। क्योंकि बच्चों के गीत है इसलिए उनके अनुसार पदों का प्रयोग है।

कभी-कभी जीवन के कटु यथार्थ लोगों को इतना सताता है कि लोरियाँ गाते समय भी लोग इसे भूल नहीं पाते। माँ-बाप खेत में गये हैं और बच्चा रो रहा है। बच्चे को सुलाकर जाने के लिए उनके पास समय नहीं हैं, चूहे में आग जलानी है तो खेत में काम करना पड़ता है। इस सन्दर्भ में बडी लड़की छोटे बच्चे को लेकर इस प्रकार गाती है -

"वावावम् वावावम् वावावम् वावो
सूरज डूबा अन्धेरा छाया

---

1 मलयालम कहावत - "पेण्णायाल पोन्नु वेणम्"

माई चली ऊपरी के खेत

रोओ रोओ मत बबुआ मेरे

सोजा सो जा बबुआ मेरे

वावावम् वावावम् वावावम् वावो।"[1]

इसप्रकार कुछ पालने के गीत जीवन के किसी न किसी यथार्थ को लेकर चलते है। अधिकाँश विद्वानों के मत में पालने के गीत अर्थप्रधान न होकर लय प्रधान होते हैं। इसमें ऐसी शब्दावली का प्रयोग होता है जो कानों के लिए सुखद है। इसप्रकार निरर्थक शब्दों को जोडकर गानेवाले लोरियाँ भी प्रचलित हैं :-

"वावो वावो वावो

मेरे बबुआ तू सो जा

वावो वावो वावो"[2]

इन पदों का कोई विशेष अर्थ नहीं है। केवल संगीत और लय पैदा करने के लिए प्रयुक्त है।

---

1 नाडन पाट्टुकळ् केरला चिल्ड्रन्स पब्लिकेशन ट्रस्ट, तिरुवनन्दपुरम पृ सं 48

"वावावम् वावावम् वावावम् वाओ

सूर्यन मरञ्ञे इरुळुम् परन्ने

निन्टम्मा मेचेरी पाड़त्तुम् पोये

कूवाते करयातिरियोन्टे पुळ्ळें,

पुळ्ळे ओरडेन्टे पुळ्ळे ओरडे

वावावम् वावावम् वावाम् वावो"

2. मौखिक गायन से।

3.5.2.3 पशु-पक्षियों तथा पेड़-पौधों से सम्बन्धित गीत

बच्चे अपने बाह्य जगत से परिचित होते ही उन्हें सबसे पहले पशु-पक्षी आकर्षित कर देते हैं। इसलिए उनसे सम्बन्धित अनेक गीत भी प्रचलित हैं :-

"मेंढक तू तो लंगड़ा रे
नहीं बहुत सुन्दर और पेटू है तू
छोटी कटोरी सी दोनों चीक,
और कोठार जैसा पेट है तेरा।"[1]

इस गीत में मेंढ़क के रूप का वर्णन है। बालक इसे लंगडा कहता है। उससे बोलता हैं कि तुम सुन्दर नहीं है और तुम्हारा बहुत बडा पेट है। दोनों चीक छोटी कटोरी के समान है और पेट तो कोठार जैसा है। इस प्रकार पेड-पौधों और फूलों से सम्बन्धित अनेक गीत मलयालम बाल लोकगीत के क्षेत्र में प्रचलित हैं।

3.5.2.4 शिशुगीत

शिशुगीत बच्चों को ज़्यादा मनोरंजन प्रदान करते हैं। बच्चे विभिन्न चीज़ों, पशु-पक्षियों आदि का अनुकरण करते हुए अंगमुद्राओं के साथ ये गीत गाते है। उदा :-

---

1 नाडनपाट्टुकळ - ए.बी.वी. कविलप्पाडु - पृ. सं 80
"तवळक्कुरुमालि कोट्टुकालि, पिन्ने
ऐरे चन्तमिल्लात्त कुडवयरी
कुञ्ञिक्कलम् पोले कविळु रण्डुम, पिन्ने
तण्णीरक्कुडम् पोले पळ्ळयुमाय"

"मादा परिन्दे कियो-कियो
तू मेरे बच्चों को कियो-कियो
सूरज को आने दो कियो-कियो
मैं तेरे बच्चों को कियो - कियो"[1]

ये गीत मुरगी का अनुकरण करते हुए गाते हैं। वह परिन्दे से कहते हैं कि तू ने मेरे बच्चों को उड़ा लिया, दिन होने दो तेरे बच्चों को मैं छोड़ूँगा नहीं। शिशुगीत ललित होते हैं। बच्चे अंग मुद्राओं द्वारा इसको गाकर प्रस्तुत करते हैं।

3.5.2.5 जानकारी बढानेवाले गीत

ऐसे गीत बच्चों को अनजाने ही शिक्षा प्रदान करते हैं। इसप्रकार के अनेक गीत मलयालम बाल-लोकगीतों में मिलते हैं।

उदा :- *"मैं और रवि एक साथ*
हमारे घर में बैठे वक्त
आ गये सोम और बुलाया
आम तोडने आते हो?"[2]

इस गीत के द्वारा दिनों के नामों का परिचय बच्चों को मिलता है।

---

1 सिप्पी पळ्ळिप्पुरम - नाडन् पाट्टुकळ् - ऊञालो चक्कियम्मा पृ सं 43
चक्किप्परुन्दे कियो-कियो
नीयेन्टे मक्कळे कियो-कियो
नेरम वेळुत्तोट्टे कियो-कियो
ञान निन्टे मक्कळे कियो-कियो

2. वर्गीस पाळ् 101 अक्षयगानङ्ङळ् बालजीवित पठनकेन्द्रम पृ सं 5
ञानुम ञायरुम् ओरुमिच्चु
ञङ्ङडे वीट्टिलिरिक्कुम्पोळ्
तिंकळ् वन्नु विळिक्कुन्न
माङा पेरुक्कान् पोरुन्नो।"

3.5.2.6 अन्य गीत

इसके अलावा विषय की दृष्टि से ओर भी अनेक प्रकार के गीत मलयालम बाल लोकगीतों में पाये जाते हैं। इसमें प्रमुख हैं :-

3.5.2.6.1 खिलाने के गीत

बच्चों को खिलाते समय माँ जो गीत गाती है वे खिलाने के गीतों के अन्तर्गत आते हैं। उदा :-

"कौआ कौआ नीड़ कहाँ?
आम के पेड़ के ऊपर नीड़।
कौन है इसके पहरेदार?
बच्चा घर का पहरेदार।
बच्चा बैठे रोये तो?
हाथ में उसके नेय्यप्पम्
हाय रे कौआ - ले गये तुम,
बच्चे के हाथ का नेय्यप्पम्।"[1]

---

1 विश्वंभरन किळिमानूर नम्मुडे नाडन्पाट्टुकळ् पृ. सं 17
"काक्के काक्के कूडेविडे□?
तेक्के माविन्टे कोम्पतु।
कूट्टिटनु कावल आरुण्डु?
कूट्टिटनु कावल कुञ्ञुण्डु?
कुञ्ञु किडन्नु करञ्ञीडिल्
कुञ्ञिन्टे कय्यिल नेय्यप्पम्
अय्यो काक्के पट्टिच्चे
कुञ्ञिन्टे कय्यिले नेय्यप्पम्"

इसमें माँ, कौआ को दिखाकर ये गाना गाती है और बीच में बच्चे को खिलाते है। कौआ बहुत होशियारी पक्षी है, वह बच्चों के हाथ से खाने के चीज़ों को चीन लेता है। इस गीत में कौआ के इस चारित्रिक विशेषता का वर्णन किया है।

3.5.2.6.2 गिनती के गीत

इसप्रकार के गीत भी बच्चों को ज्ञान प्रदान करनेवाले हैं। ऐसे गीत बच्चों को संख्या बोध कराते हैं। इसमें एक से लेकर दस तक की संख्या क्रमानुसार आती है। फूलों के नाम के माध्यम से, विभिन्न जानवरों के नाम के माध्यम से, विभिन्न स्थानों के माध्यम से आदि कई प्रकारों के विभिन्न माध्यमों के ज़रिये संख्या को क्रमानुसार प्रस्तुत करते हैं जिससे बच्चों को संख्या का बोध होता है और मनोरंजन भी प्रदान करंता है। मलयालम में इसप्रकार के अनेक गीत प्रचलित हैं। उदा :-

"एक बोला तो एकता में रहना।
दो बोला तो दोनों हाथ उठाना।
तीन बोला तो नाक को छिपाना।
चार बोला तो शरमाके रहना
पाँच बोला तो बेंच पर बैठना।
छह बोले तो हिलाना डुलना
सात बोला तो जल्दी उड़ना।
आठ बोला तो धमाके हँसना।

नौ बोला तो दौड़ते खेलना।

दस बोला तो जल्दी बैठना।"[1]

इस गीत में एक से लेकर दस तक की संख्या को विभिन्न क्रियाओं के माध्यम से प्रस्तुत किया है। जानकारी बढानेवाले होने के कारण इसप्रकार के गीतों को कुछ आलोचक जानकारी बढानेवाले गीतों के अन्तर्गत भी रखते हैं।

3.5.2.6.3 हिंडोले के गीत

हिंडोले पर झूलते समय बच्चे हिंडोले के गीत गाते है। हिंडोले के चलने के अनुसार ही इन गीतों का ताल और लय होता है। केरल की संस्कृति से हिंडोले का बहुत बडा नाता है। केरल में ओणम मनाते समय विशेषकर हिंडोले डालते हैं और इसमें झूलाकर गीत गाते हैं।

---

1 ए.बी.वी. काविलप्पाडु - 101 नाटन् पाट्टुकळ् - पृ. सं 10

ओन्नेन्नु परयुम्पोळ् ओन्निच्चु निल्क्कणम्
रण्डेन्नु परयुम्पोळ् कै रण्डुम् पोक्कणम्
मून्नेन्नु परयुम्पोळ् मूक्कोन्नु पोत्तणम्
नालेन्नु परयुम्पोळ् नाणिच्चु निल्क्कणम्
अंचेन्नु परयुम्पोळ् बैंचिलिरिक्करणम्
आरेन्नु परयुम्पोळ् आडिक्कळिक्कणम्
एष़न्नु परयुम्पोळ एषुन्नेट्टु निल्क्कणम्
एट्टेन्नु परयुम्पोळ् पोट्टिच्चिरिक्कणंम्
ओनपतेन्नु परयुम्पोळ् ओडिक्कळिक्कणम्
पत्तेन्नु परयुम्पोळ् पोत्तोन्निरिक्कणम्"

उदा :- *"आओ ही झूलने हिंडोले में*

अच्छी लड़की कनकमणि।"[1]

इस गीत में हिंडोले में झूलने के लिए लड़की को बुलाती है वह भी उसकी प्रशंसा के साथ।

3.5.2.6.4 हास्यगीत

इस वर्ग के गीत हास्यात्मक होते हैं। ये मनोरंजन प्रदान करनेवाले हैं। कभी कभी मनोरंजन के साथ कुछ लोक-जानकारी भी देते हैं।

उदाहरण :-

"तप्पो तप्पो तप्पाणि

नकली कटोरी में क्या है रे?

नारायण का पकाया चावल है,

नारायणी की पकायी खिचडी है।"[2]

बच्चे का हाथ पकडकर कटोरी जैसा आकार बनाता है और पूछता है कि इसमें क्या है? ना्रायण का पकाया चावल और नारायणी की पकायी चावल है, इसप्रकार गीत गाते बच्चे को हँसाती है। ऐसे अनेक गीत केरल में प्रचलित हैं।

---

1 मोहनचन्द्रन एस. नाडन् पाट्टुकळ्, भाग-2 पृ सं 8

"ऊञालाडान् वाडी पेण्णे

नल्ल पेण्णे तङ्कक्कोडी"

2. वर्गीस पॉल - अक्षय गानङ्ङळ् - पृ. सं. 11

"तप्पो तप्पो तप्पाणि

तप्पु कुडुक्केलेन्तुण्डु

नारायणन् वेच्चोरु चोरुण्डु

नारायणी वेच्चोरु करियुण्डु"

3.5.2.6.5 ऋतुगीत या प्रकृति संबन्धी गीत

मलयालम लोकसाहित्य में भी प्रकृति का महत्वपूर्ण स्थान है। प्रकृति से सम्बन्धित अनेक गीत भी यहाँ प्रचलित हैं। उदाहरण के लिए :-

"बरसो बरसो पानी बरसो
कड़क बिजली के साथ बरसो।"[1]

बच्चे पानी बरसना पसन्द करते हैं इसलिए बरसात से कहते है कि खूब कड़क, बिजली के साथ बरसो।

3.5.2.6.6 निरर्थक गीत

ये गीत केवल मनोरंजन प्रधांन है। इसमें युक्तिरहित निरर्थक बातों को जोडकर गाना बनाता है। बच्चे इसे गाकर खुश होते हैं।

इसप्रकार हिन्दी और मलयालम में अनेक प्रकार के बालगीत है। दोनों के वर्गीकरण में अनेक समानताएँ तथा थोडी सी भिन्नताएँ हैं। क्योंकि अधिकाँश बालगीतों का आधार बालमनोविज्ञान ही है। बच्चे हर कहीं एकप्रकार है। इसलिए उनके लिए रचे गये गीतों में समानताएँ अधिक पायी जाती हैं।

3.6 हिन्दी और मलयालम के लोकगीतात्मक बालगीतों का विश्लेषण

बच्चे हर कहीं एक ही स्वभाव के होते हैं। गीतों के प्रति आकर्षित होना, गीतों के तुक एवं ताल में विलीन होना, खेलों को पसन्द करना आदि

---

1 वर्गीस पॉल - अक्षय गानङ्ङळ् पृ. सं. 4
"पेय्यट्टे मषा पेय्यट्टे
इडियुम् वेट्टि पेय्यट्टे।"

सभी बच्चों का स्वभाव है। बच्चों के लिए लिखनेवाले लोग बालमनोविज्ञान को आगे रखकर रचना करते हैं। इसलिए बालसाहित्य में हर कहीं सभी दृष्टियों से समानताएँ अधिक मिलती हैं।

लोकगीतों के अन्तर्गत आनेवाले बालगीतों में भी बालमनोविज्ञान का खूब सहयोग है। इसलिए हिन्दी में हो या मलयालम में लोकगीतात्मक बालगीतों में समानताएँ ही अधिक दिखायी पडती हैं। प्रादेशिक विशेषताओं के कारण ही थोडी भिन्नताएँ आती हैं। डॉ. निरंकारदेव सेवक के अनुसार "किसी भी देश या भाषा का बाल साहित्य किसी वाद विशेष या दृष्टिकोण की सीमा में बँधकर नहीं लिखा जाता। वह सार्वभौमिक और सर्वकालीन होता है। पर अपने समय की विशेष परिस्थितियों का कुछ न कुछ प्रभाव तो उसके सृजन और विकास पर पड़ता ही है।"[1]

विषय की दृष्टि से, शैली की दृष्टि से, सरलता, सहजता एवं अकृत्रिमता की दृष्टि से, कल्पनाओं की विकास करने की दृष्टि से, ज्ञानवर्धन एवं उपदेशात्मकता की दृष्टि से हिन्दी और मलयालम के बालगीतों में अनेक समानताएँ पायी जाती हैं।

हर किसी भाषा में बालगीतों का विषय सरल होता है। वास्तव में बालगीतों के मूल में मनोरंजन ही ज़्यादा है। इसलिए कहीं कहीं बालगीतों में विषय नहीं के बराबर है। कुछ बालगीतों के पदों का अर्थ भी नहीं है। हिन्दी और मलयालम में निरर्थक गीत नाम से एक श्रेणी विभाजन भी है।

---

1 डॉ. निरंकार देव सेवक - बालगीत साहित्य - पृ. सं. 225

पालने के गीतों में भी विषय का उतना अधिक महत्व नहीं हैं। क्योंकि ये बहुत छोटे उम्र की बच्चों को सुलाने के लिए है। इसमें ताल और लय एवं संगीत का पुट होना आवश्यक माना गया है।

खेल मनोरंजन की प्रमुख सामग्री है। हिन्दी और मलयालम में अनेक खेल के गीत प्रचलित हैं। दोनों भाषाओं में समान रूप में खेलनेवाले खेल और तुक एवं लय की दृष्टि से पदों में भी समानताएँ दिखायी देनेवाले खेल के गीत भी पाये जाते हैं।

'अटकन-बटकन' और 'अरिप्पो-तिरिप्पो' तथा 'ओका बोका' और 'अक्कुत्तिक्कुत्ताना... आदि खेल इसका उदाहरण है। ताल एवं लय की दृष्टि से भी इनमें समानताएँ हैं। खेलने का तरीका भी एक प्रकार है। यह खेल खेलने के लिए बच्चे गोलाकृति में बैठकर हाथों को ज़मीन पर रखते हैं। एक बच्चा बारी-बारी से अपनी एक ऊँगली से सबके हाथों को छूता हुआ ये गीत गाये जाते है।

हिन्दी में हो या मलयालम में खेल के गीत बच्चों को अधिक पसन्द हैं। खेल के ताल के अनुसार ही इसका ताल और तुक है। उदाहरण के लिए कबड्डी खेलते समय एक ही सांस में सारार गीत गाना पडता है इसलिए इसका तुक एवं लय इसके अनुसार है। जैसे :-

"आम छू, आम छू, कड्डी झनक छू।"[1]

---

1 डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय हिन्दी प्रदेश के लोकगीत - पृ. सं 101

शायद एक ही सांस में गीत गाने के कारण मलयालम में अधिकाँश बच्चे केवल कबड्डी... कबड्डी कहकर यह खेल खेलते हैं।

बच्चों में अपने परिवेश से जुडने की गहरी उत्कण्ठा बनी रहती है। उसका अकृत्रिम स्वभाव, सरलता, प्रकृति की नैसर्गिकता आदि उनको बाह्य प्रकृति से जुडने के लिए प्रेरित करती रहती है। जिज्ञासू भाव से वे पहाडों, नदियों, पेड़ों, फूलों, जंगलों के सत्यों को जानने के लिए सदैव तत्पर रहते हैं। बच्चों में जिज्ञासा की प्रवृत्ति हर कहीं एक प्रकार है। बच्चों के लिए प्रकृति सिर्फ भौतिक जगत् का हिस्सा मात्र नहीं होते हैं। वे प्रकृति की समस्त गतिविधियों को उत्साह के साथ आत्मसात् कर उसमें धुल-मिल जाना चाहते हैं। इसलिए दोनों भाषाओं के बालगीतों में प्रकृति, पशु-पक्षियाँ, फूल-पौधे आदि से सम्बन्धित अनेक गीत पाये जाते हैं।

दिन संबन्धी गीत, गिनती के गीत, जानकारी बढ़ानेवाले गीत आदि बच्चों को अनजाने ही शिक्षा प्रदान करते हैं। हिन्दी और मलयालम में इन गीतों की प्रवृत्तियों में समानताएँ हैं। ये मनोरंजक हैं, साथ ही ज्ञानवर्धक भी।

हिन्दी के अधिकाँश बाल लोकगीत ज़्यादात्तर मनोरंजन प्रधान है साथ ही साथ उपदेशात्मक भी है। मलयालम के कुछ बालगीतों में हिन्दी की तुलना में जीवन के कटु यथार्थों का चित्रण अधिक मिलता है।

इसप्रकार हिन्दी और मलयालम के बालगीत बाल मनोनुकूल हैं। सब कहीं बच्चों का स्वभाव एक ही प्रकार के हैं। इसलिए उनके लिए गढ़े गये बालगीतों में समानताएँ अधिक होना स्वाभाविक ही है। अगर थोडी सी भिन्नताएं

आती हैं तो वह बच्चों के पलने के वातावरण तथा परिस्थितियों और देश एवं संस्कृति की विभिन्नताओं के कारण है। उत्तर भारत और दक्षिण भारत के लोगों के आचार विचार रहन-सहन, खान-पान और संस्कृति आदि में अनेक भिन्नताएँ हैं। इनका पता भी उस प्रदेश के लोकगीतों से मिलता है। फिर भी बच्चों की पसन्द, ना पसन्द आदि में हर कहीं समानताएँ दिखायी पडती हैं। उदाहरण के लिए संसार में किसी भी प्रदेश में लोरियों के प्रति आकर्षित होकर उसके ताल में मुग्ध होकर बच्चे का सो जाना, अपने आमने सामने दिखायी देनेवाले पशु पक्षियों के प्रति आकर्षित होना, खेलने को सबसे अधिक पसन्द करना, खाने में अलसता दिखाना आदि बाल स्वभाव सब कहीं एक जैसा है। इसलिए विभिन्न प्रदेशों के बालगीतों में समानताएँ अधिक होता है।

3.7 निष्कर्ष

कथ्य और शिल्प की दृष्टि से हिन्दी और मलयालम के लोकगीतात्मक बालगीतों में बहुत सी समानताएँ पायी जाती हैं। बच्चों के लिए गीतों का निर्माण करते समय भाषा का सहज, सुन्दर, शुद्ध तथा प्रभावात्मक होना स्वाभाविक है। सभी भाषाओं में बालगीतों की शब्दावली सरल मधुर और स्वभाविक होती है। बालगीतों के शब्दों में वर्णविन्यास भी समान रूप से है। ऐसे वर्णों को दोनों भाषाओं में चुन लिया है कि जिसमें कोमलता और किलकारियाँ भरा है। उससे माधुर्य बरसता है तथा रस झलकता है। हिन्दी में राजा, मुन्ना, बबुआ आदि शब्दों का खूब प्रयोग है तो मलयालम लोरियों में वावा, कुञ्ञु, ओमना, तंकम् आदि सुन्दर शब्दों का प्रयोग है जो बिलकुल बाल

मानसिकता के अनुकूल है। उसी प्रकार भावों की अभिव्यक्ति भी दोनों भाषाओं में एक समान हैं।

संक्षेप में बालगीतों का प्रमुख लक्ष्य बच्चों का सर्वांगीण विकास है। प्राचीन हो या आधुनिक बालगीत, हिन्दी में हो या मलयालम में बच्चों के चारित्रिक विकास को लक्ष्य करके तैयार किये गये हैं। हिन्दी और मलयालम के बालगीतों का विश्लेषण से यह साबित होता है कि इनके मूल में एक ही तत्व है तथा अभिव्यक्ति की दृष्टि एवं शैली में भी दोनों में समानताएँ ही ज़्यादा पायी जाती हैं।

.....📖.....

अध्याय - चार

हिन्दी और मलयालम की लोककथात्मक बालकथाएँ

अध्याय चार

हिन्दी और मलयालम की लोककथात्मक बालकथाएँ

4.0 प्रस्तावना

बालसाहित्य की विभिन्न विधाओं में बालकथाओं का महत्व खासी है। कहानी एवं गीत बच्चों की विधाएँ हैं। बहुत छोटे बच्चों को गीत अधिक पसन्द है। लेकिन जब उनकी कल्पनाशक्ति बढने लगती है। तथा वह संसार के प्रति ज़्यादा जिज्ञासू रहते हैं तब उन्हें कहानियाँ ज़्यादा पसन्द आती हैं।

बच्चों को सही रास्ते पर ले जाने लिए कहानियों से ज़्यादा अच्छा माध्यम कोई दूसरा नही है। पंचतंत्र इसका उदाहरण है। कहते हैं महिलारोप्य के राजा अमरशक्ति के तीन मन्दबुद्धि बालकों को पण्डित विष्णुशर्मा ने तीन महीनों के अन्तर्गत बुद्धिमान बनाये थे। इंससे यह ज़ाहिर है कि कहानियाँ किस प्रकार बच्चों को प्रभावित करती हैं।

4.1 बालकथाएँ स्वरूप एवं परिभाषा

डॉ विजयलक्ष्मी सिन्हा के अनुसार "बाल कहानियाँ सीधे, सच्चे एवं सहज ढंग से मनोरंजक और उमंगपूर्ण वातावरण में बच्चों को आकर्षित करके उनकी मानसिक भूमि में उचित ज्ञान के बीज वितरित करती है, और

उनकी प्रवृत्तियों को परिष्कृत और प्रोत्साहित करती हैं।"[1] उनका यह भी कहना है कि "बालकहानी बहुत ही बोल-चाल और संवाद की भाषा में लिखी जायें, बालकहानी की सामग्री में ऐसी वस्तुएँ सम्मिलित हों जो बच्चों के कोमल और रंग-बिरंगे मन को कल्पनाशील उड़ान से प्रभावित करें, इसमें घटित घटनाओं के साथ अधिक महत्व दिया जाय, इसमें वस्तु का स्थापित वर्णन होने की अपेक्षा वस्तु के चरित्र की गतिशील उडान होना चाहिए। बाल कहानी के केन्द्रीय गुण के रूप में लेखक को यह स्पष्ट होना चाहिए कि बच्चों का मन किस स्थान पर है और वह उसकी यात्रा किस दिशा में कहाँ तक ले जाना चाहता है। बालकहानी सोद्देश्य होना चाहिए और यह बात अलग है कि यह उद्देश्य लेखक की चित्रात्मक और रंग बिरंगी उमंगपूर्ण शैली में पानी की तरह भिदा हो। बाल कहानी की अनिवार्य आवश्यकता यह होती है कि बालकों के परिचित जगत से ही उसे आरंभ किया जाय और जो कुछ भी नयी बात उसमें समाहित हो वह भी उनके परिचित जगत के बराबर ही सहज और सुपरिचित तथा मनोमोहक लगे। बालकहानियों में जिज्ञासा की प्रवृत्ति परिलक्षित हो इसलिए कि बालकों में कुतूहल का स्वाभाविक गुण विद्यमान रहता है। साथ ही जिज्ञासा का शमन भी मनोरंजक ढंग से हो जिससे बालक के मानस पर अतिरिक्त बोझ न पड़े। बालकहानियाँ मात्र मनोरंजन के उद्देश्य से न लिखी जायें वरन् उनमें सदुपयोग, व्यवहार, शिक्षा आदि तत्व भी समाहित हों, जिससे बालकों के ज्ञान का विकास क्रमिक गति से होता रहे। इस बात का भी ध्यान रखना है कि मात्र ज्ञान वृद्धि के लिए रचित कहानी नीरस होती है; अतः

---

1 डॉ विजयलक्ष्मी सिन्हा - आधुनिक हिन्दी में बालसाहित्य का विकास पृ. सं 26

ज्ञानवृद्धि का उसका उद्देश्य अप्रत्यक्ष हो।"[1] यहाँ डॉ. विजयलक्ष्मी सिन्हा ने बालकहानियों के सभी पक्षों पर अपना विचार प्रस्तुत करते हुए बालकहानी के स्वरूप के संबंध में अपना दृष्टिकोण व्यक्त किया है।

डॉ हरिकृष्ण देवसरे के अनुसार "बच्चों के कहानियों के प्रति अनुराग का आधार उनकी मनोवैज्ञानिक रुचि तथा भावुक तत्व होता है। आठ साल पहले तक बच्चे प्राकृतिक वस्तुओं का अध्ययन करता है, इस अवस्था में वह निरर्थक कार्यों को बहुत पसन्द करता है। तोड-फोड, चीज़ों का बिखेरना, इधर उधर फेंकना आदि उसे बहुत अच्छा लगता है। किन्तु बच्चों की ये क्रियाएँ कम की जा सकती है यदि उन्हें जिज्ञासा शान्त करानेवाली कहानियाँ सुनायी जाएँ। कहानियाँ सुनकर बच्चे कुछ सीखते हैं, नये नये सपने देखते हैं। उनके सामने सारा संसार होता है और उनकी रुचि गहरी होती हैं।"[2]

डॉ. कुसुम डोंभाल के अनुसार "बच्चों के कहानियों के प्रति सहज आकर्षण के पीछे उनकी कल्पनाप्रवणता तथा मनोवैज्ञानिक रुचि हैं। शिशु की श्रव्य तथा दृश्य-इन्द्रियों के विकास हो जाने से वह ध्वनि से परिचित होता है, और वह लोरियों से सुख प्राप्त करता है। धीरे धीरे जैसे ही उसकी कल्पना का विकास होने लगता है तब उसका आकर्षण कहानी की ओर होता है और उसे लयात्मक गीतों भरी कहानियाँ अच्छी लगती हैं। इस अवस्था के बच्चे अपने परिवेश के वस्तुओं, जीव जन्तुओं, पशु-पक्षियों से परिचित हो जाते

---

1 डॉ. विजयलक्ष्मी सिन्हा - आधुनिक हिन्दी में बाल साहित्य का विकास - पृ. सं. 26, 27

2. डॉ. हरिकृष्ण देवसरे - हिन्दी बालसाहित्य एक अध्ययन - पृ. सं. 258

हैं और वे इन्हीं से सम्बन्धित कहानियाँ सुनना अधिक पसन्द करते हैं। रचना शैली की दृष्टि से ऐसी कहानियों में ताल, आवृत्ति तथा लयबद्धता होनी चाहिए। वास्तव में बच्चा स्वयं कहानी का पात्र बनकर कहानी में भाग लेते हैं।"[1] बालकहानियों के स्वरूप को ओर स्पष्ट करते हुए आगे उन्होंने ने लिखा है कि बालकहानी का विषय बच्चों की रुचि के अनुकूल होना चाहिए, कथ्य घटनाप्रधान होना चाहिए तथा घटनाओं में क्रमबद्धता होना चाहिए। कथानक का संक्षिप्त होना आवश्यक है क्योंकि लंबे चौडे वर्णन बढकर बच्चे ऊब कर कहानी से ध्यान हटा देते हैं। इसके अतिरिक्त अत्यधिक नीतिपरकता या उपदेशवादिता भी कथानक में बाधा उत्पंन्न कर देती है, जिससे कहानी का स्वाभाविक क्रम रुक जाता है। कहानी की भाषा तथा शैली सरल होना चाहिए। इसके अतिरिक्त पात्रों का चरित्रनिर्माण भी बालमन पर अपना विशेष प्रभाव डालता है इसलिए पात्रों का चित्रण बच्चों के मनोनुकूल होना चाहिए, जिससे बच्चे उन्हें सरलता से समझ सकें।"[2]

मलयालम के प्रसिद्ध विद्वान के एम. माथ्यु के अनुसार "बाल कहानी में जीवन को उसके मूल से ही पहचानकर मानव के सार्वजनिक सत्य को कल्पनारूप में प्रस्तुत किया जाता है। इसमें जीवन का चित्रण काल या सामाजिक नियंत्रणों की सीमाओं से परे होकर सामान्य बुद्धि से परिचालित है।"[3] संक्षेप में बच्चों के मनोनुकूल लिखी गयी कहानियाँ है बालकहानियाँ या

---

1 डॉ कुसुम डोंभाल - हिन्दी बालकाव्य में प्रतीक एवं कल्पना तत्व पृ. सं. 53

2. डॉ. कुसुम डोंभाल - हिन्दी बाल काव्य में प्रतीक एवं कल्पना तत्व पृ. सं. 53

3. पाला. के.एम. माथ्यु - एन्ताणु कुट्टिकळुडे साहित्यम्? संस्थान बालसाहित्य इंस्टिट्यूट - पृ. सं. 38

बाल कथाएँ। इसमें यथार्थ और मूल्यों का चित्रण समय के अनुसार सहज रूप में कल्पना के मिश्रण के साथ होना चाहिएं।

4.2 बालकथाओं का उद्भव और विकास

अब यह देखना वाजिब होगा कि हिन्दी और मलयालम में बालकथाओं की विकास-यात्रा कैसे रही है।

4.2.1 हिन्दी बालकथाओं का उद्भव और विकास

बहुत प्राचीनकाल से ही जीवन में घटित घटनाओं और अनुभवों को एक दूसरे से कहने सुनने की परंपरा चली आ रही है। 'नानी की कहानियाँ' हर अगली पीढ़ी को पिछली पीढ़ी से मूल्यवान विरासत के रूप में मिलती रही। विश्रमवेलाओं में तथा समुद्री यात्राओं के समय लोक कथाओं के रूप में अपने अनुभव सुनाते रहते थे जो एक देश से दूसरे देशों में होते हुए विश्व भर में फैल जाते थे। ये कहानियाँ पीढ़ी-दर-पीढ़ी में अपने मूल रूप में जीवित रहती थी। इसप्रकार कहा्नियों का जन्म मानवसंस्कृति के आरंभ से ही माना जा सकता है।

लोक कथाओं से प्रौढ़ ही नहीं बच्चे भी समान रूप से आनन्द लेते थे। बच्चों के लिए पृथक रूप में कहानियाँ न होने पर भी जो कहानियाँ प्रचलित थीं वे बडों से अधिक बच्चों को मनोरंजन तथा उपदेश देती थीं।

लोककथाओं तथा संस्कृत साहित्य से प्राचीनकाल में बच्चों को अनेक कहानियाँ सुनने को मिलीं। 'पंचतंत्र' 'कथासरितसागर' 'हितोपदेश' आदि इसके उदाहरण हैं। कहानी के इतिहास में 'पंचतंत्र' का स्थान अत्यन्त

महत्वपूर्ण है। 'पंचतंत्र' के बारे में एक कहानी प्रचलित हैं। ईरान के सम्राट खुसरो के किसी मंत्री ने एक पुस्तक में पढा कि भारत में संजीवनी बूटी मिलती है जिसके सेवन से मरे व्यक्ति जाग उठता है। उस अमृत की खोज में विद्वान भारत आये और पंचतंत्र प्राप्त कर वापस गये। अज्ञानी मृत व्यक्ति को ज्ञान का अमृत याने पंचतंत्र देने से वह जीवित रहता है। इरान में जाकर उस विद्वान ने सम्राट के लिए पहलवी भाषा में पंचतंत्र का अनुवाद किया। इसके बाद अनेक भाषाओं में पंचतंत्र का अनुवाद हुआ। पंचतंत्र के अनुवादों की परंपरा आज भी लगातार चल रही है। नये-नये रूपों में तथा भावों में 'पंचतंत्र' की कहानियाँ आज भी बच्चों तक पहूँच रही हैं, और बच्चों को यह बहुत पसन्द भी है।

प्राचीनकाल में बौद्ध जैन धर्मों से सम्बन्धित अनेक कहानियाँ भी प्रचलित थीं। पहले इन कथाओं का मौखिक रूप ही प्रचलित था, बाद में लिखित रूप सामने आया। जातक कथाएँ इसका उदाहरण हैं। श्री जयप्रकाश भारती के अनुसार "बौद्ध-जैन कथाओं का उद्देश्य तो धर्म तथा राजनीति का प्रचार था। किन्तु समाज में अनेक स्तरों, रीति-नीति, धार्मिक, नैतिक और मानसिक धरातलों का उनसे पर्याप्त परिचय मिलता है। 'जातक' शब्द का अर्थ है जन्म सम्बन्धी। जातक कथाओं में बोधिसत्व के पाँच सौ सैंतालीस जन्मों का उल्लेख है। जातक कथाएँ व्यापक और मानव के समीप हैं। इनमें राजा, सेठ, साहूकार से लेकर दरिद्र, चोर, चण्डाल, अपराधी आदि चर तथा नदी, पहाड, पेड-पौधे आदि अचर तथा सभी प्रकार के जीव-जन्तु, पशु-पक्षी आदि सजीव पात्रों के रूप में प्रयुक्त हुए हैं।"[1] बच्चों को ये कहानियाँ बहुत पसन्द आयी।

1 जयप्रकाश भारती - भारतीय बालसाहित्य का इतिहास पृ सं 23

'बृहत्कथा' सागर के समान बहुत विशाल है। इसको आधार बनाकर आज भी अनेक साहित्यकार रचनाएँ प्रस्तुत कर रहे हैं। गुणाढ्य ने सर्वप्रथम जनभाषा में इसका संग्रह किया था। श्री जयप्रकाश भारती के अनुसार "गुणाढ्य ही लोककथाओं के प्रथम और महान संग्रहकर्ता हैं। उन्होंने जो आधारभूमि तैयार की, उसी पर बाल-साहित्य का भव्य-भवन खडा दुआ हैं।"[1] हितोपदेश भी नीतिविषयक कथाओं का प्रख्यात ग्रन्थ हैं जिसके लेखक नारायण पण्डित हैं। ग्रन्थ के कुल चार परिच्छेद हैं - मित्रलाभ, मित्र, विग्रह और सन्धि। इसकी लगभग पचास प्रतिशत कथाएँ पंचतंत्र से ली गयी हैं। कहानियाँ पशु-पक्षियों से सम्बद्ध हैं। ये कहानियाँ बहुत ही रोचक हैं तथा इनमें नीति सम्बन्धी कोई न कोई सूत्र भी आता है। ये कथाएँ सूझ-बूझ और चतुराई से भी भरपूर हैं।

रामायण तथा महाभारत की अनेक कथाओं ने बच्चों को मनोरंजन दिया है तथा आज भी दे रहीं है। डॉ. विजयलक्ष्मी सिन्हा के अनुसार "पुराणों में विशेष रूप से श्रीमद्भागवत् पुराण में जिसकी रचना व्यासजी ने की है, जिस तरह की कहानियाँ एक के अन्तर्गत दूसरी जुडी हुई बुनी गयी हैं, उनमें से कुछ इस रूप में पायी जाती हैं, जिन्हें हम आज भी बाल साहित्य के अन्तर्गत रख सकते हैं। यह बात अलग है कि उनके अन्दर जिस तरह का ज्ञान प्रस्तुत किया गया है, वह कोई गहरा दार्शनिक आधार रखता है लेकिन इनमें भी बाल कहानियों जैसा आकर्षण हैं। यक्षप्रश्न इसके लिए उदाहरण है।"[2] इसप्रकार रामायण और महाभारत जैसे पुराणों में भी ऐसी अनेक कहानियाँ हैं जिन्हें

---

1 जयप्रकाश भारती भारतीय बालसाहित्य का इतिहास पृ. सं 23

2. डॉ. विजयलक्ष्मी सिन्हा - आधुनिक हिन्दी में बालसाहित्य का विकास पृ सं 50

सुनकर बच्चे प्रसन्नता का अनुभव करेंगे। उसीप्रकार 11 वीं शताब्दी की कृति 'कथासरितसागर' में भी अनेक बालोपयोगी कहानियाँ हैं।

डॉ कुसुम डोंभाल के अनुसार "भारतेन्दु युग से पूर्व परम्परा में बाल कथा साहित्य अनूदित रूप में ही अधिक मिलता है। आदिकाल में लल्लूलाल ने उस समय की शैक्षिक आवश्यकताओं की दृष्टि से तीन कृतियों के अनुवाद किये, 'सिंहासन बत्तीसी' 'बैताल पच्चीसी' और 'हितोपदेश'। 'बैताल पच्चीसी' और 'सिंहासन बत्तीसी' में संकलित कहानियाँ विक्रमादित्य तथा राजा भोज के गुणों एवं पराक्रम को प्रकट करती हैं। ये कहानियाँ आज भी बहुत प्रचलित हैं।"[1]

4.2.1.1 भारतेन्दु युगीन बालकथाएँ

भारतेन्दु युग के आरंभ में बालकथाएँ स्कूली आवश्यकताओं के लिए ही लिखी जाती थीं। डॉ. विजयलक्ष्मी सिन्हा के अनुसार "उस समय मौलिक कृति का अभाव रहा।"[2] भारतेन्दु काल में अनूदित कृतियाँ ही ज़्यादा मिलती हैं। 1854 में बदरीलाल ने 'होतपदेश' का अनुवाद 'राजनीति' नाम से किया। 'नासिकेतोपाख्यान' का अनुवाद श्री सदल मिश्र ने सरल एवं व्यावहारिक भाषा में 1803 में किया। श्री प्रतापनारायण टंडन के अनुसार "इसकी कथा धार्मिक भावना प्रधान है और इसका आधार पौराणिक है। जप-तप, धार्मिक जीवन, सांसारिक जीवन के कर्तव्य आदि के महत्व को इसमें स्पष्ट किया गया

---

1 डॉ कुसुम डोंभाल हिन्दी बाल काव्य में प्रतीक एवं कल्पना तत्व पृ सं 55

2. डॉ विजयलक्ष्मी सिन्हा - आधुनिक हिन्दी में बालसाहित्य का विकास पृ सं 71

है।"[1] इनके माध्यम से बच्चों को भारतीय संस्कृति का ज्ञान तथा नीति की शिक्षा देना लेखकों का उद्देश्य रहा।

इसी काल में राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द ने कुछ मौलिक कहानियाँ लिखीं जिसमें 'राजा भोज का सपना' 'बच्चों का ईनाम' 'लडकों की कहानी' आदि उल्लेखनीय हैं। सन् 1900 में सरस्वती पत्रिका में केशव प्रसाद सिंह की कहानी 'चन्द्रलोक की यात्रा' काश्मीर यात्रा आदि प्रकाशित हुईं। 'काश्मीर यात्रा' में अनेक कल्पित तथा यथार्थ स्थानों की यात्रा का रोचक वर्णन प्रस्तुत किया गया है। इनमें कई कल्पनात्मक तत्वों का वर्णन है जो बच्चों में कुतूहल जगाने के लिए पर्याप्त है। 'चन्द्रलोक की यात्रा' तो बच्चों को खगोलीय ज्ञान, व्यवस्थित ढंग से देनेवाली पहली रचना मानी जा सकती है।

4.2.1.2 द्विवेदी युगीन बालकथाएँ

महावीर प्रसाद द्विवेदी जी ने सरस्वती में बच्चों के लिए पौराणिक एवं धार्मिक कथाओं को छोटी छोटी कहानियों के रूप में प्रस्तुत किया। इस समय बाल कथा-कहानी शीर्षक से रामनरेश त्रिपाठी जी ने कहानियाँ लिखना शुरू कर दिया। 1917 से 1935 तक इसके दस भाग प्रकाशित हुए। 'बाल-कथा कहानी' (दस भाग), 'गुपचुप कहानियाँ' (दो भाग), 'मौत की सुरंग की कहानी' आदि उनके प्रमुख बाल कथा संग्रह हैं।

द्विवेदी युग में बाल पत्रिकाओं के प्रकाशन ने बाल कथासाहित्य को साहित्यिक तथा स्वतंत्र रूप प्रदान किया। बालसखा, विद्यार्थी, शिशु, खिलौना और वानर पत्रिकाओं का प्रकाशन इसका उदाहरण है।

---

1 प्रताप नारायण टंडन हिन्दी उपन्यास का उद्‌भव और विकास पृ सं 106

4.2.1.3 प्रेमचन्द और उनके समयुगीन रचनाकार

मुंशी प्रेमचन्द ने 'कुत्ते की कहानी' (1926), जंगल की कहानियाँ (1938), मनोमोदक (1926), दुर्गादास, ईदगाह, परीक्षा आदि कहानियाँ बच्चों के लिए लिखीं। श्री जयशंकर प्रसाद ने भी बच्चों के लिए 'गूंडा' 'छोटा जादूगर' जैसे कहानियाँ लिखीं।

इस दौर के अन्य कहानिकारों में व्यथित हृदय (महाभारत की नीति कथाएँ, आदर्श पौराणिक कथाएँ, बोलते खून की कहानियाँ, कलम अपनी कहानियाँ बडों की, नये ज्ञान की नयी कथाएँ, नीति की सीपियों के मोती, नदियों की कहानी) जैनेन्द्र कुमार, चतुरसेन शास्त्री, गणेश मिश्र (खटपट शर्मा, लम्बी नाक, अदल बदल), परिपूर्णनन्द वर्मा (निटल्लू राम की कहानियाँ) बैजनाथ केडिया (देखो और हँसो, सवा तीस मार खाँ, अकड़बेग खाँ), आनन्द कुमार (इतिहासों की कहानियाँ, बल भदर, जादू की कहानियाँ, राक्षसों की कहानियाँ) रामचन्द्र प्रताप (परी देश, सोने का हँस, जादू का हँस, सोने का तोता) कमला बाई किबे (बाल कथा) रामशरण शर्मा (परी देश की रानी) बदरीनाथ भट्ट (फूलवती, अंगूठी की मुकदमा, राजकुमार सागर, बच्चों का हितोपदेश) सुदर्शन (हार की जीत), भूपनारायण दीक्षित, रामलोचन शरण, सुदर्शनाचार्य, विद्याविभूषण, शंभूदयाल सक्सेना आदि प्रमुख हैं।

4.2.1.4 स्वातंत्र्योत्तर बालकथाएँ

स्वतंत्रता के बाद बालकहानी अत्यन्त विकसित हुए। कहानियाँ अधिक उपदेशात्मक न होकर बालमन के अनुरूप लिखने का प्रयास स्वतंत्रता

के बाद के साहित्य में सफल रूप में देखने को मिलता है। इस युग की सबसे बडी उपलब्धि वैज्ञानिक कथा साहित्य की है जो बिलकुल युगानुरूप है। इसप्रकार के वैज्ञानिक कहानी लिखनेवालों में आनन्द कुमार (क्या, क्यों, कैसे) ओम प्रकाश (सागर की सैर) तरुण भाई (जीव जगत जलचर तथा जीव जगत नभचर) जयचन्द्र विद्यालंकार (मनुष्य की कहानी) योगेन्द्र कुमार लल्ला (खेल भी विज्ञान भी) रत्नप्रकाश 'शील' (विज्ञान की कहानियाँ) व्यथित हृदय (नाचती पृथ्वी के तमाशे) श्रीकृष्ण (तुम पूछो हम बताएँ) आदि प्रमुख हैं।

4.2.1.5 साठोत्तर बालकथाएँ

सन् 1960 के बाद के बाल कहानियों में उन सभी विषयों को लिया है जिन्हें बालक नित्य जीवन में देखते, समझते और अनुभव करते हैं। मनहर चौहान, महीप सिंह, शील इन्द्र, विष्णु प्रभाकर, मालती जोशी, मस्तराम कपूर उर्मिल, हरिकृष्ण देवसरे, मनोहर वर्मा आदि कथाकारों ने नये भावबोध की कहानियाँ 'पराग' पत्रिका के माध्यम से पाठकों तक पहूँचायी। डॉ विजयलक्ष्मी सिन्हा के अनुसार "इन लेखकों की कहानियाँ बच्चों के मनोविज्ञान को समझकर उनकी समस्याओं को उभारा गया और उनके समाधान भी प्रस्तुत किये गये। विषयों की विविधता, आज के समाज का चित्र, बच्चों के अपने जीवन और सम्बन्धों के चित्र तथा लीक से हट कर लिखे जाने के कारण इस प्रकार की कहानियाँ बहुत पसन्द की गयी तथा बालकथासाहित्य के लिए नयी भूमि तैयार हो गयी।"[1]

---

1 डॉ विजयलक्ष्मी सिन्हा - आधुनिक हिन्दी में बालसाहित्य का विकास पृ सं 166

4.2.1.6 समकालीन बालकथाएँ

समकालीन लेखकों में रामावतार चेतन (सुनो कहानी) देवी दयाल चतुर्वेदी मस्त (हवा महल) देवेन्द्र विशाल (फुलवारी), लक्ष्मण भरद्वाज (चले मेरे मटके टम्मकटम) लज्जावती (चन्द्रहास), विनोदीलाल सक्सेना (तीन मजे) विष्णु प्रभाकर (घमंड का फूल), सन्तराम वत्स्य (लाखों में एक) सीताशरण रनवाल (खिलौनों के लोक में) हेमलता (कथाकुंज तथा कथा मंजरी) आनन्दकुमार (घोखे में जान गयी, जैसे को तैसा) उपेन्द्रनाथ अश्क (माँ) जयप्रकाश भारती (बर्फ की गुड़िया) पूनम अदीब (मुन्ना और राजू) प्रशान्त (सच्ची घटनाएँ, दो भाई), यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र (सफेद बतख), रमेश भाई (पत्नी का मुकुट) मुरालीलाल शर्मा (बुढ़िया की सूझ) अमृतलाल नागर (नटखट चाची) दुर्गावती सिंह (पढो और आगे बढ़ो) शंकर (ननिहाल में गुज़रे दिन) चिरंजीलाल पराशर (पढे लिखे मूर्ख) ज्योतिलाल भार्गव (सनी की करामात) आचार्य मुक्तिदूत (बसंत धीरे-धीरे) कमल शुक्ल (सात रंग का फूल) कुन्दनलाल (बोलती चीज़ें) दीनानाथ 'इसरल' (सबसे निराली चीज़) धर्मपाल शास्त्री (दोनों को उल्लू बनाया) पृथ्वी कुमार (हिरन और राजा) बालबन्धु (रानी घोड़ी) मनोहर वर्मा (चन्दामामा और बुलबुले) मार्गरेट किए (शोभना), मेरेलिन हर्ष (मैं क्या बनूँगा) राजेन्द्र अवस्थी (बाँस के फूल), योगराज थानी (रवि और देव), रामकुमार भ्रमर (हर दिन एक कहानी) स्वरूप कौशल (लोभ का फल) लक्ष्मी नारायण लाल (बड़के भैया) वियोगी हरि (पाव-भर आटा) शिवनाथ सिंह शांडिल्य (यह मुँह और मसूर की दाल) शिवप्रसाद दुबे (मिट्टी का कलश) शैलेश मटियानी (ईश्वर की मिठाई) श्रीकृष्ण (मुफ्त की अकल) मालती जोशी (दादी की घड़ी) मन्मथनाथ गुप्त (ठग नगरी

के ठग) मनहर चौहान (अपने आप को सज़ा) प्रमोद शंकर भट्ट (नन्दू) प्रयाग शुक्ल (पंखों वाले कपडे) आदि प्रमुख है। इन कहानियों के पात्र बच्चे स्वयं है या उनके आसपास के व्यक्ति हैं। ये कहानियाँ यथार्थ के धरातल पर खडी हुई थी।

नयी भावभूमि पर आधारित कहानियों के साथ ही लोककथाएँ भी बच्चों के लिए अधिक मात्रा में संकलित की गयीं, कहानियों के विकास के मोड में कभी भी इन कहानियों से बच्चे दूर न रहे। लोक कथाएँ बिल्कुल मनोनुकूल थे इसलिए बच्चे इनको अधिक सरलता से ग्रहण करते है। आज भी लोककथाओं का प्रकाशन अधिक रूप में हो रहा है।

अब भी सृजनत बाल कथाकारों में देबाशीष देब (आम की कहानी) दत्तात्र पाण्डेय (गुब्बारा), आशीष सेन गुप्ता (आजाद करो) उषा जोशी (इन्द्रधनुष), जगदीश जोशी (एक दिन), अंजन सरकार (कहानी एक तितली की), चित्रा मुद्गल (जंगल का राज) युद्धजीत सेन गुप्ता (कौवे की कहानी) रमेश बक्षी (क्या सही क्या गलत) कमलेश मोहिन्द्रा (चुनमुन आज़ाद है) गीतिका जैन (जंगल में धरियाँ) स्वप्न दत्ता (टिलटिल का साहस), वर्ष दास (सूरज और शशि), मनोरमा जफ़ा (शेरा और मिट्ठू) जगदीश जोशी (शोर मचा जंगल में) टी.आर. राजेश (हाथी और भँवरे की दोस्ती) अरविन्द गुप्ता (कजरी गाय झूले पर) सूर्यनाथ सिंह (खोये का गुड्डा) रमेश बेदी (घायल कौए की कहानी) सोमा कौशिक (चालाक किसान और चार ठग) पुलाक विश्वास (छोटी चींटी काम बड़ा), सुमन चंदारवरकर (छोटी सी एक लहर), विशाखा (जादूगर) जगदीश जोशी (मुनिया ने पाया सोना) सिगरून श्रीवास्तव (मैं तुमसे अच्छा हूँ) मिकी पटेल (रूपा हाथी) द्रोणवीर कोहली (टूटा पंख और अन्य कहानियाँ,

एक बाबू का पार्सल) विनीता सिंघल (धरती से सागर तक) सुरेखा पाणंदीकर (बोरी का पुल), उषा यादव (सोना की आँखें) लीलावती भागवत (स्वर्ग की सैर) राजेन्द्र अवस्थी (वीरों की कहानियाँ) सुमंगल प्रकाश (स्वराज्य की कहानी) आदि प्रमुख हैं। आज बालकथाएँ बहुत अधिक निकल रही हैं। अनेक प्रकाशक इस दिशा में प्रयत्नशील हैं और अब बच्चों को स्वस्थ साहित्य देने की ओर प्रगतिशील हैं।

4.3 मलयालम बालकथाओं का उद्भव और विकास

मलयालम बालकथाओं का उद्भव लोक कथाओं से ही माना जाता है। लोक कथाओं के माध्यम से बच्चों को मनोरंजन तथा उपदेश देने का प्रयास प्राचीनकाल से ही हुआ है। इतिहास-पुराणों से भी अनेक कहानियाँ बच्चों को मिली हैं। कुछ लोग लोक बालकथाओं को शुद्ध एवं परिष्कृत नहीं मानते, उनके अनुसार ये भूत-प्रेतों तथा परियों की कल्पित कथाएँ ही हैं लेकिन उन कहानियों के अध्ययन से पता चलता है कि उनमें बच्चों के जीवन को प्रशस्त तथा सुखी बनाने की कामना अन्तर्निहित थी। इनमें बच्चों की रुचि तथा बालमनोविज्ञान का सदैव ध्यान रखा गया है। इसलिए ये आज भी बच्चों को प्रिय है।

4.3.1 केरलवर्मा युग

मलयालम बालकथाओं का इतिहास बहुत पुराना नहीं है। 1860 के बाद केरळवर्मा वलियाकोयित्तम्पुरान के नेतृत्व में स्कूली आवश्यकताओं के लिए स्वतंत्र रूप में बाल कथाओं की रचना अधिक माता में हुई। 'महच्चरितम्'

इस समय लिखा हुआ है। इसमें 107 छोटी-छोटी जीवनियाँ कहानियों के समान लिखी गयी हैं। इसके पहले अनेक अनुदित रचनाएँ प्रचलित थीं जो बिलकुल बच्चों के लिए रची थीं। 1824 में प्रकाशित 'चेरु पैतङ्ङ्ळुडे उपकारार्थम् इंग्लीषिल् निन्नु परिभाषप्पेडुत्तिया कथकळ्' इसका उदाहरण है। इसकी एकमात्र कॉपी आज बाकी है जो ब्रिटीश म्यूज़ियम् लाईबरेरी में मिलती है। इसके रचयिता या अनुवादक के बारे में कोई जानकारी प्राप्त नहीं है। इसमें आठ कहानियाँ हैं जो ईसा से सम्बन्धित हैं। 1860 को मान्नानम् सेन्ट जोसफ्स प्रेस से निकाले 'बालनिक्षेपम्' भी इसप्रकार की एक रचना है। 1887 को कोट्टयम् के मलयालम रिलीजियस ड्राकट आण्ड बुक सोसैटी द्वारा प्रकाशित 'बालबोधिनी' में भी ईसा से सम्बन्धित कहानियों को पद्य रूप में प्रस्तुत किया हैं। 1868 में पाच्चु मुत्तु द्वारा लिखित 'बाल भूषणम्' की कहानियाँ सत्य, करुणा, भक्ति तथा नैतिक मूल्यों से बच्चों को परिचित कराती हैं।

4.3.2 केरल वर्मोत्तर युग

केरल वर्मोत्तर युग में मलयालम की बालकथाओं के विकास का पहला पडाव भी इसप्रकार पुनराख्यान से ही मिलता है। पुनराख्यान की मूलकथाओं में एक ओर रामायण, महाभारत, भागवत, उपनिषद्, जातककथा आदि भारतीय सामग्री है तो दूसरी ओर ग्रिम कहानियाँ, ईसप की कहानियाँ, शैक्सपियर की कथाएँ और अनेक पाश्चिमी काव्यों की कथाएँ भी होती थीं। 1880 में प्रकाशित तोमस सकरियास के 'सिनबादिन्टे कप्पलोट्टम्' इसप्रकार की एक पुस्तक है। इसके बाद 1897 में टी.सी. कल्याणियम्मा की 'ईसोप्पिन्टे कथकळ्' (ईसप की कहानियाँ) प्रकाशित हुई। इसमें ईसोप के 56 कहानियाँ

संकलित हैं। 1899 में कोट्टारत्तिल शंकुण्णि के 'विश्वामित्र चरितम्' (विश्वामित्र चरित) प्रकाशित हुई।

19 वीं शती के प्रथम वर्षों में मलयालम में अच्छी बालकथापुस्तकें नहीं के बराबर हैं। शिक्षा के प्रचार की कमी के कारण उस समय पुस्तकों का भी प्रचार-प्रसार ज़्यादात्तर नहीं हुआ। लेकिन 19 वीं शती के अंतिम समय तक आते ही मलयालम में बालकथा साहित्य की अच्छी नींव डाली गयी। 1900 से 1930 तक के तीस वर्षों में तीन सौ तथा इसके आगे के बीस वर्षों में चार सौ से अधिक बालकहानियों का संकलन बाहर निकला।

मलयालम में अधिकाँश बालसाहित्य रचनाएँ, गद्य रूप में ही मिलती हैं। इसमें भी ज़्यादात्तर रचनाएँ पुनराख्यान हैं। शैक्सपियर की रचनाओं को आधार मानकर इस समय बीस से अधिक रचनाएँ निकलीं। 1905 में प्रकाशित परमुप्पिळ्ळा के 'शैक्सपियर कथा' (शैक्सपियर की कहानी) इसका उदाहरण हैं। सि.ऐ गोपालपिळ्ळै के 'मायाविक्रमन्' (1933), आर ईश्वर पिळ्ळै के 'शैक्सपियरुडे नाटकक्थकळ्' (शैक्सपियर की नाटक कहानियाँ) (1938), पी अनन्तनपिळ्ळै के 'बाल शैक्सपियर' (बाल शैक्सपियर) (1958) आदि भी इसप्रकार शैक्सपियर की कहानियों को आधार मानकर रची गयी हैं। 'कथा-रत्नमालिका' (1935) चालर्स लांब की 'शैक्सपियर कहानियों' को आधार बनाकर चङ्ङम्पुषा कृष्णपिळ्ळै द्वारा रचित पुस्तक है।

4.3.3 पूर्वस्वतंत्रता युगीन और उत्तर स्वतंत्रता युगीन बालकथाएँ

इस समय पाश्चात्य साहित्य के अनेक ग्रन्थों का सरल पुनराविष्कार मलयालम में बच्चों के लिए हुआ हैं। इसमें प्रमुख हैं परमुपिळ्ळै के 'चासर

महाकवियुडे कथकळ्' (चोसर महाकवि की कहानियाँ) (1906), सी.पी परमेश्वरनपिळ्ळै के 'इरावती' टेन्निसन के Idylls of the king, 1907), एस कुञ्ञुकृष्णपिळ्ळै के 'यवनकथकळ्' (यवन कथाएँ) (1914), कण्णम्ब्र कुञ्ञुण्णि नायर के 'विल्यमटेल्स' (1922), के पद्मनाभन पिळ्ळै के 'आलिबाबा' (1914), के.पी. उक्कण्डनुण्णि नायर के 'सिनबाद कप्पलक्कारन्' (1915), एस वेंकिटारमणाचार्य के 'अलाउद्दीन' (1915), सि.वी. रामनपिळ्ळै के 'रोबिनसन् क्रूसो' (1916), वी. कृष्णन्तम्पी के 'कप्पलच्चेतम् अनुभविच्चा ओरु कुडुम्बम्' (Sish family Robinson, 1915), ओ.एम. चेरियान के 'गलिवरुडे संचारकथकळ्' (1920), ए गोपालमेनोन् के 'टोलस्टोयियुडे नीति कथकळ्' (1918), अम्बाडि इक्कावम्मा के 'टॉळ्स्टोयियुडे नीतिकथकळ्' (टॉलस्टायी की नीति कथाएँ) (1926), वक्कम् अब्दुल खादर के 'टॉलस्टोयियुडे कथकळ् (टॉलस्टोय की कहानियाँ, तीन भाग) (1953), एन. कृष्णापिळ्ळै के 'इरुळुम् वेळिच्चवुम्' (विक्टर यूगो के Less Miserbles का संग्रह) (1956), एम. जोर्ज के 'ओलिवर ट्विस्ट' (1958), टि.एस. तॉमस के 'निधिद्वीप' (आर.एल. स्टीवनसन के Treasure Island) आदि हैं।

स्वातंत्र्योत्तर युग में माली एक ऐसा नाम है जिन्होंने पुनराख्यान के रूप में कई पौराणिक कथाएँ प्रस्तुत कीं। वी माधवन नायर का उपनाम है 'माली'। श्री जयप्रकाश भारती के अनुसार "कथाकथन की कला में, खासकर बालकों के मन में हर्ष, आश्चर्यरस, करुणा आदि संवेदना भरने में माली बेजोड़

---

1 जयप्रकाश भारती (सं) - भारतीय बालसाहित्य का इतिहास - पृ. सं. 139

हैं।"[1] 'माली रामायणम्' (मालि रामायण) (1962), 'मालि भारतम्' (मालि भारत) (1964), 'माली भागवतम्' (मालि भागवत) (1968) आदि के अलावा उन्होंने अनेक बालकथाएँ भी लिखी हैं। 1977 में प्रकाशित उनकी 'बालकथामालिका' ईजिप्त और मेक्सिको तथा यूरोप के लोककथाओं का पुनराख्यान हैं।

इतिहास तथा पुराणों का पुनराख्यान भी मलयालम में बहुत मिलते हैं। ए. रामप्पै के 'बालभारतम्' (बाल भारत) (1915), आर ईश्वरपिळ्ळै के 'श्रीरामन्' (श्रीराम) (1916), पी.एस. सुब्बराम पट्टर के पुराणकथकळ् (पुराण कथाएँ) (1922), पी. अनन्तन् पिळ्ळै के 'भीष्मर' (भीष्म), चेलनाट्ट अच्युतमेनोन के 'पुराणमंजरी' (1924), मुरक्कोत्तु कुमारन के 'भारत कथासंग्रहम्' (1932), मुरक्कोत्तु कुमारन् के 'शाकुन्तळम्' (शाकुन्तल) (1910), टी.एस. कल्याणियम्मा के 'कादम्बरी कथासंग्रहम्' (1920), चेन्कुळ्ळत्तु चेरिया कुञ्जिराम मेनोन के 'रघुवंशचरित्रम्' (रघुवंश चरित) (1931), पी. कुञ्जिरामन् नायर के 'नागानन्दम्' (नागानन्द) (1931), ई.वी. कृष्णपिळ्ळै के 'पंचतंत्रकथकळ्' (पंचतंत्र कथाएँ) (1935), एम.आर. वेलुप्पिळ्ळै शास्त्री के 'हितोपदेशकथकळ्' (हितोपदेश कथाएँ) (1937), पी.एम. कुमारन नायर के 'भारतकथापात्रमाला' के परमुपिळ्ळै के 'चरित्रकथकळ्' (इतिहास कथाएँ) (1910) नन्तियारु वीट्टिल परमेश्वरन पिळ्ळै के 'तिरुवितामकूर चरित्रकथकळ्' (तिरुवितामकूर इतिहास कथाएँ) (1913) सी.पी. गोविन्दपिळ्ळै के 'तिरुवितांकूर चरित्र कथकळ्' (तिरुवितांकूर इतिहास कथाएँ) (1914), आर. नारायणपणिक्कर के आर्य चरितम् (आर्य चरित) (1918), जोसफ इम्मट्टि माथ्यू के 'धीरोदात्त कथकळ्' (धीरोदात्त कथाएँ) (1928), आर्च डीक्कन् उम्मन के 'बाल प्रियन' (बाल प्रिय) (1912),

पी.वी. मुहम्मद तथा के.सी. कोमुक्कुट्टि के 'नबिचरित्रकथकळ्' (नबिचरित कथाएँ) (1946) आदि इसकेलिए उदाहरण हैं।

4.3.4 मौलिक कथा साहित्य

मौलिक कथासाहित्य के सन्दर्भ में पहला नाम कारूर नीलकण्ठ पिळ्ळै का है। वे एक प्रारंभिक पाठशाला के अध्यापक थे। डॉ रामचन्द्रन नायर के अनुसार "एक अध्यापक होने के नाते उन्हें बच्चों के साथ समय बिताने, उनकी रुचियाँ तथा अरुचियाँ, सपने, निरांशाएँ, वेदनाएँ, खुशियाँ आदि को समझने तथा आत्मसात् करने के बहुत अधिक अवसर प्राप्त हुए। साथ ही कहानी लिखने की कला में वे बहुत ही कुशल भी थे। इन दोनों ने कारूर को बाल कथाकार के रूप में अप्रतिम बनाया। वे हमेशा बच्चों के प्रिय कथाकार बने रहे।"[1] कारूर प्रकृति में भी सरल, शान्त, मितभाषी और संगठनकुशल व्यक्ति थे। गरीब अध्यापकों और छात्रों के मनोविज्ञान की गहरी पैठ उनमें थी। बडी सरल पर मोहक भाषा में कारूर ने बालकथाएँ लिखीं। प्रतिभा और अनुभव के धनी कलाकार कारूर की अनेक कहानियाँ इसप्रकार मलयालम को मिलीं। 'आनक्कारन्' (महावत), 'पूवनपषम' (शहद केला), 'पोतिच्चोरु' (पाथेय) आदि इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं। 'आनक्कारन' में चात्तु नामक महावत की कहानी पेश की गयी है।

---

1 बालसाहित्यम् तत्ववुम् चरित्रवुम् संस्थाना बालसाहित्य इन्स्टिट्यूट पृ. सं 28

4.3.5 साठोत्तर बाल कथाएँ

इस समय के कहानिकारों में उरूब (मल्लनुम् मरणवुम - योद्धा और मृत्यु, 1966), (अंकवीरन, 1967), अप्पुविन्टे लोकम् - अप्पु की दुनिया, 1979), ललितांबिका अन्तर्जनम् (गोसायी परञ्ञ कथा - गोस्साई द्वारा कथित कहानियाँ, 1964)। नरेन्द्रनाथ ने तीस से ज़्यादा कहानियाँ लिखी हैं। उनके 'विकृतिरामन्' (विकृति राम) नामक कहानी जिसमें रामन् नामक एक बन्दर की शरारतों का वर्णन है, जो बच्चों को बहुत पसन्द आया। सुमंगला (लीला नंबूतिरिप्पाड्डु) के 'मिठ्ठायिप्पोती' भी इसप्रकार का एक कथासंकलन है जिसे साहित्य अकादमी पुरस्कार भी मिला है। एम.टी.. वासुदेवन नायर के 'माणिक्यक्कल्लु' (मोती), पी.ए. वारियर के 'आनक्कुट्टि' कडवनाड कुट्टिक्कृष्णन के 'वयनाडिन्टे ओमना' आदि रचनाएँ भी बच्चों के मन को बहुत प्रभावित कर गयीं।

4.3.6 समकालीन बाल कथा साहित्य

मलयालम बालकथा साहित्य में अब भी सृजनरत साहित्यकारों में सी. अच्युतनुण्णि 'केशवनेन्ना आनयुम् ध्रुवमानुकळुम्' (केशव नामक हाथी और ध्रुवमृग, 1963), तिमिंगलवुम्, ध्रुवक्करडियुम् (तिमिंगल और ध्रुवभालू, 1963) भारम् वहिक्कुन्ना कूनन्मारुम् सर्क्कस्सुकारन् राजावुम् (बोझ उठाते कूबडे और सर्कसवाले राजा, 1963), एम. अच्युतन - कुट्टिकळुडे अरबिक्कथकळ् (बाल अरबी कथाएँ, 1994), अच्युतन् मेलङ्ङत्त - पाण्डवन्मार, अनन्तकृष्णय्यर ए.एस - रामायणम् कथा, 1983), अनन्तनारायणन् पी.आर - चरित्र कथावली-1949), अप्पुण्णि मलयत्तु - कुञ्ञन् कुरुक्कन् (छोटा सियार), आनन्दवल्लि

पी (बालरामायणम्-1951), आर्यन टी (केळुक्कुरुक्कन्-केलु सियार-1995) इम्मट्टि जॉर्ज (101 ईसोप कथकळ्), इलञ्जि. जे (कलिवीट-घरौंदा-1985), उत्तमन पाप्पिनिश्शेरी (अवर मनुष्यर-वे इनसान-1982), उण्णिकृष्णन् कलूर (मलयुडे चिरी - टीले की हंसी-1995), उषा. एस. नायर (मुङ्ङिक्किट्टिया मुत्तुकळ् - डुबकी से मिले मोती-1979), कुञ्ञप्पा मुरक्कोत्त (ञानल्ला-मैं नहीं-1967 तोण्णूट्टि ओनपत-निन्यानब्बे-1967), कृष्णन टी.वी (केरळीय नाडोडिक्कथकळ्) लोहिताक्षन तुंबूर (बीरबल कथकळ् - 1994), वेणुगोपाल के.एस. (पूम्पाट्टकळ - पतंगें, मिन्नामिनुङ्ङुकळ्), सिप्पी पळ्ळिप्पुरम् (अप्पूप्पन ताडियुडे स्वर्गयात्रा - आर्कफूल की स्वर्गयात्रा-2002), वि.आर सुधीष (अम्बिळिप्पूतम), किळिरूर राधाकृष्णन (अम्मयोडोप्पम्) चेप्पाड भास्करन् नायर (अवियलिन्टे कथा), काञ्ञिरमट्टम् सुकुमारन (अष्ट्रावक्रनुम् सुकन्ययुम्), यशपाल जेय्न (अहिंसायुडे कथा), प्रोफ. एस. शिवदास (अऱिवूरूम् कथकळ्), रवि (आनवाल् मोतिरम्) कुञ्ञुमुहम्मद पांडिकश्शाला (आनरांचिप्पक्षिकळुम् भूतङ्ङळुम्), कुरीप्पुष़ा सिरिळ् (आमयुडे बस्यात्रा), कातियाल्लम् अबूबक्कर (आरीफा बीवियुम् अरमना ज्योत्सनुम्) सन्तोष प्रियन (उण्णिमायेम् उण्णूलिमुत्तश्शीम्) के श्रीकुमार (उण्यायें पोन्नु मुत्तश्शीम्) बालेन्दु (एन्नु स्वन्तम् भूतम्) कारूर (ओलयुम् नारायवुम्, अष़कनुम् पूवालियुम्) निर्मला जेंस (कन्नालिप्पय्यनुम् तीनाळिप्पेण्णुम्) पुत्तन्वेलिक्करा सुकुमारन (काट्टिले कथकळ्), वी.पी. मुहम्मद् (कुञ्ञायन्टे कुसृतिकळ्) आलंकोड लीलाकृष्णन, (केरळीय कथकळ) एस.एफ जब्बार (क्रिस्मस कथकळ्) शूरनाड रवि (चिरिक्कानुळ्ळा कथकळ्) वी.के विश्वंभरन् (रोमिन्टे अद्भुत कथकळ्), मोहनदास अम्बाट्ट, मुट्टत्तु वर्की (त्यागभूमि), एम.टी. वासुदेवन नायर (दया

ऐन्ना पेण्कुट्टी - दया नामक लडकी) पेरुम्बडव् श्रीधरन (दैवत्तिन्टे कळिप्पाट्टङ्ङळ् - भगवान के खिलौने), कुञ्ञुण्णि (पला तरम् कथकळुम् कार्यङ्ङळुम् - विभिन्न प्रकार की कहानियाँ और बातें) बि.एम. सुहरा (पविष़प्पुट्टु), एवूर परमेश्वरन (पाश्चात्य बालकथकळ् - पाश्चात्य बाल कहानियाँ, लोक बालकथकळ् - विश्व बाल कथाएँ, भारतीय नाडोडिक्कथकळ् - भारतीय लोक कथाएँ) आदि प्रमुख हैं।

इससे स्पष्ट है कि बालकहानी की विधा बहुत ही समृद्ध है। मलयालम के अनेक वरिष्ट साहित्यकार बच्चों को अनेक अमूल्य कहानियाँ दी हैं तथा अब भी दे रहे हैं। इसप्रकार हिन्दी और मलयालम की बालकहानी की विधा अत्यन्त व्यापक एवं समृद्ध है। दोनों भाषाओं में बच्चों को नयी नयी कहानियाँ देने में लेखकगण प्रयत्नरत है।

4.4 लोक बालकथाओं का वर्गीकरण हिन्दी और मलयालम में

लोकसाहित्य तथा इसके अन्तर्गत आनेवाली लोककथाओं पर अनेक विद्वानों ने अपना विचार प्रस्तुत किया है। लेकिन इसके अन्तर्गत आनेवाली बालकथाओं पर विशेष रूप से किसी ने भी उतना स्पष्ट विचार प्रस्तुत नहीं किया है। शायद इसलिए कि लोक कथाओं के अन्तर्गत आनेवाली सभी कहानियों ने बच्चो और बडों को समान ढंग से मनोरंजन दिया हैं।

'खडीबोली का लोकसाहित्य' शीर्षक ग्रंथ में डॉ सत्यागुप्ता ने सामाजिक कथाओं के अन्तर्गत बालकथाओं पर भी विचार किया है। सामाजिक कथाओं के अन्तर्गत आनेवाली बालकथाओं को उन्होंने दो वर्गों में रखा है - लघु छन्द तथा साधारण कहानियाँ[1] उनके अनुसार "लघुछन्द तुकान्त के रूप

---

1 डॉ सत्यागुप्ता खडीबोली का लोकसाहित्य पृ 199

में प्रयुक्त हुए है। इनमें लय बनाये रखने का प्रयत्न है। छन्द भी पूरे छन्द नहीं है। साधारण शब्दों में दो-दो चार-चार लाईनें हैं जिनका प्रयोग कहानी के पात्र कहानी में समय समय पर करते हैं। साधारण कहानियों में छन्द का प्रयोग नहीं किया गया है। केवल लय में ही कही गयी हैं। इसके अलावा आगे उन्होंने पशु-पक्षियों से सम्बन्धित कहानियों को भी बच्चों से सम्बन्धित माना हैं।"[1]

नागपुरी लोकसाहित्य के अन्तर्गत डॉ. भुवनेश्वर अनुज[2] ने भी बाल कथाओं के इन दो रूपों को माना हैं। उन्होंने इन्हें लघुछन्द तथा साधारण कहानियाँ नाम ही दिया हैं।

यह वर्गीकरण वास्तव में कहानी की प्रकृति के आधार पर किया है।

डॉ. कुसुम डोंभाल[3] ने हिन्दी बालसाहित्य के अनेक भेद माने हैं "लोक कथाएँ, पौराणिक कथाएँ, उपदेशपरक कथाएँ, साहसिक कथाएँ, परी कथाएँ, जासूसी कथाएँ, वैज्ञानिक कहानियाँ तथा मुहावरों की कहानियाँ।" उन्होंने हितोपदेश तथा जातककथाएँ आदि को लोककथाओं के माना हैं। तथा लोक कथाओं के अन्तर्गत पशु-पक्षी की कथाएँ रखी हैं। यह सच ही है कि लोक कथाओं के रूप में पंचतंत्र, हितोपदेश तथा जातक कथाएँ प्रचलित हैं लेकिन इसके अन्तर्गत केवल पशु-पक्षी की कहानियाँ ही नहीं आती बलिक वैज्ञानिक कहानियों को छोडकर बाकी सभी प्रकार की कहानियाँ इसके

---

1 डॉ. सत्यागुप्ता - खडीबोली का लोकसाहित्य - पृ सं. 199

2. डॉ भुवनेश्वर अनुजा नागपुरी लोक साहित्य पृ सं 94

3. डॉ कुसुम डोंभाल हिन्दी बालकाव्य में प्रतीक एवं कल्पना तत्व पृ सं 52

अन्तर्गत आती हैं। इसलिए उनका यह वर्गीकरण उतना समीचीन नहीं लगता। इतना ही नहीं यह वर्गीकरण आधुनिक बालसाहित्य के सन्दर्भ में किया गया है। इसलिए लोककथाओं के सन्दर्भ में यह उतना उचित नहीं लगता।

डॉ हरिकृष्ण देवसरे लोकसाहित्य में बालसाहित्य को पृथक रूप में पहचाना है और बाल लोकसाहित्य के रूप में इसको प्रस्तुत किया है। उन्होंने बच्चों के लिए जो लोक-कहानियाँ है इसके चार रूपों पर विचार किया है नीतिपरक कहानियाँ पौराणिक कहानियाँ ऐतिहासिक कहानियाँ और मनोरंजक कहानियाँ।[1] उनका यह वर्गीकरण सबसे उचित है। आगे इसका थोडा और विस्तार किया जाएगा।

4.4.1 नीतिपरक कहानियाँ

उपदेश देने की प्रवृत्ति नीतिपरक कहानियों की सबसे बडी विशेषता है। 'पंचतंत्र' तथा 'हितोपदेश' के किस्म की सभी कहानियाँ इसी वर्ग के अन्तर्गत आ सकती हैं। इनकी कहानियों में नीति या उपदेश अन्तर्निहित है।

4.4.2 पौराणिक कहानियाँ

'पौराणिक कथा' वह है जो किसी युग में घटित दिखायी गयी हो और उसमें किसी देश के धार्मिक विश्वासों, प्राचीन वीरों, देवी-देवताओं जनता की अलौकिक तथा अद्भुत परंपराओं, सृष्टि रचना आदि का वर्णन हो। इनमें विज्ञान पूर्व युग की घटनाओं का वैज्ञानिक रूप से स्पष्टीकरण दिया जाता है।

---

1 डॉ. हरिकृष्ण देवसरे हिन्दी बालसाहित्य एक अध्ययन पृ सं 72

हमारे यहाँ पुराणों की कथाएँ जैसे देवासुर संग्राम, समुद्र मंथन, अवतार आदि की कहानियाँ इसी वर्ग में आती हैं।

4.4.3 ऐतिहासिक कहानियाँ

ये दन्तकथा से मिलती जुलती हैं। इनमें इतिहास और कल्पना का मिश्रण पाया जाता है। इनकी आधार-भूमि इतिहास की ठोस घटनाएँ हैं। कथाकार इनपर अपनी कल्पना के रंग चढाकर सुन्दर बना देता है। राजा विक्रमादित्य, राजा भोज, आल्हा-ऊदल आदि की कहानियाँ इस कोटि की हैं।

4.4.4 मनोरंजक कहानियाँ

इस वर्ग में परियों की कहानियाँ, पशु-पक्षियों की कहानियाँ, भूत-राक्षसों की कहानियाँ आदि आती हैं। इन कहानियों का मुख्य उद्देश्य बच्चों को मनोरंजन प्रदान करना होता हैं।[1]

लोककथाओं के अन्तर्गत आनेवाली कहानीयाँ सब के सब वास्तव में बच्चों के अनुकूल हैं। 'खडीबोली का लोकसाहित्य' शीर्षक ग्रन्थ में डॉ सत्या गुप्ता ने लोक कथाओं को बालकों के मनोभावनाओं के अति निकट माना है। इसके कारण के रूप में उन्होंने दो बातें बतायी हैं - एक ओर तो वह सहज सरल और प्रवाहमयी तथा दूसरी ओर मनोरंजन और कुतूहलपूर्ण होती हैं।"[2]

लोककथाओं का वर्गीकरण अधिकाँश विद्वानों ने धार्मिक कथाएँ, ऐतिहासिक कथाएँ, अलौकिक कथाएँ, सामाजिक कथाएँ, नीति कथाएँ, पशु-

---

1 डॉ हरिकृष्ण देवसरे हिन्दी बालसाहित्य एक अध्ययन पृ. सं 72, 73

2. डॉ. सत्या गुप्ता - खडीबोली का लोकसाहित्य पृ. सं. 226

पक्षी सम्बन्धी कथाएँ, हास्य कथाएँ, कहावतों की कहानियाँ आदि रूपों में किया है। इसमें सबके सब बच्चों के अनुकूल भी हैं। लोक कथाएँ मौखिक रूप से प्रचलित होती हैं। इसलिए इसमें कहनेवाले व्यक्ति की भावनाएँ निहित हैं तथा जिससे कहते हैं उसके अनुसार इसका वर्णन होता हैं। इसलिए सभी लोक-कथाएँ बच्चों तथा बडों को समान रूप से अनुयोज्य हैं। परिवर्तनशीलता लोककथा की एक बडी विशेषता हैं। कहने और सुननेवालों के अनुसार यह परिवर्तित होती हैं।

प्राचीन समाज ने धार्मिक कथाएँ, ऐतिहासिक कथाएँ, अलौकिक कथाएँ, नीतिकथाएँ, सामाजिक कथाएँ, पशु-पक्षी सम्बन्धी कथाएँ आदि सभी कथाएँ सब को दी हैं। डॉ. हरिकृष्ण देवसरे के वर्गीकरण में यह सब आते हैं। नीतिपरक कहानियों में नीति कथाएँ, पंचतंत्रीय कथाएँ आदि हैं। पौराणिक कथाओं के अन्तर्गत धार्मिक कथाएँ भी आते हैं। ऐतिहासिक कथाओं में विक्रम की कहानियाँ तथा राजाओं की कहानियाँ हैं। मनोरंजक कहानियों में अलौकिक कथाएँ, परीकथाएँ, पशु-पक्षी की क़हानियाँ आदि सब आते हैं। इसलिए बच्चों के लोकसाहित्य के सन्दर्भ में उनका वर्गीकरण अधिक समीचीन लगता है।

मलायालम में भी लोक कथाओं के सन्दर्भ में बालकथाओं को कोई विशेष स्थान नहीं दिया गया है लेकिन अधिकाँश विद्वानों ने लोककथाओं को बच्चों के अनुकूल ही मान लिया है। के.एम. माथ्यू ने लोक साहित्य को बच्चों का सार्वलौकिक साहित्य बताया है।[1] उन्होंने लोक साहित्य में बच्चों की

---

1 माथ्यू. के.एम. एन्ताणु कुट्टिकळुडे साहित्यम पृ सं 39

कथाओं के तीन प्रकार माने हैं परियों की कथाएँ, लोक कथाएँ तथा ऐतिहासिक एवं पौराणिक कथाएँ।[1] उन्होंने, सामाजिक लोक कथाओं के लिए लोक कथाएँ नाम ही दिया है इसलिए यह वर्गीकरण पूर्ण नहीं लगता।

विषय की विविधता, लोककथाओं की व्यापकता और अधिकता के कारण इससे बाल कथाओं को पृथक करना तथा वर्गीकरण करना उतना आसान नहीं हैं। अध्ययन की सुविधा के लिए विषयवस्तु की दृष्टि से लोक बालकथाओं को नीतिपरक कहानियाँ, पौराणिक कहानियाँ, ऐतिहासिक कहानियाँ, मनोरंजक कहानियाँ आदि चार भागों में विभक्त कर सकते हैं।

4.5 लोककथा पर आधारित बालकथाएँ

अपनी बातें कहना और दूसरों की बातें सुनना मानव की स्वाभाविक प्रवृत्ति है। शायद इस प्रवृत्ति से लोक कथाओं का जन्म हुआ होगा। लोककथाओं में मानव की सहज प्रवृत्तियाँ स्वाभाविक रूप में प्रकाशित होती हैं। डॉ. विद्या चौहान के अनुसार "लोकभाषा के माध्यम से सामान्य लोक जीवन में प्रचलित वैकल्पिक विश्वास, आस्था और परंपरा पर आधारित कथाएँ लोककथाओं के अन्तर्गत आती हैं।"[2]

डॉ. सत्येन्द्र ने "लोक प्रचलित और परम्परा से चली आनेवाली मूलतः मौखिक रूप में प्रचलित कहानियों को लोक कहानियाँ मान लिया हैं"[3]

---

1 माथ्यू. के.एम. - एन्ताणु कुट्टिकळुडे साहित्यम - पृ.सं. 39

2. डॉ. विद्या चौहान - लोकगीतों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि - पृ. सं 51

3. डॉ सत्येन्द्र लोकसाहित्य विज्ञान - पृ सं 48

डॉ सत्यागुप्ता के अनुसार "लोक कथाओं में लोक मानस की सब प्रकार की कल्पनाएँ तथा जीवन दर्शन समाहित हैं। भूत जानने की जिज्ञासा, घटनाओं की सूत्र सभी कुछ लोक कथाओं में मिल जाते हैं।[1] इसप्रकार लोक मानस की सहज अभिव्यक्ति ही लोक कथाएँ हैं।

लोककथाओं की भाषा सरल, स्वाभाविक एवं अकृत्रिम हैं। डॉ विजयलक्ष्मी सिन्हा के अनुसार "लोककथाओं के प्रत्येक शब्द, प्रत्येक स्वर, प्रत्येक लय और प्रत्येक लहजा सहज ही लोक का अपना है और उसके लिए अत्यन्त सहज और स्वाभाविक है।"[2] इसप्रकार सरल भाषा होने के कारण तथा भाव की सरलता के कारण बच्चे इसे सरलता से ग्रहण करते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि लोककथाएँ बडों तथा बच्चों को समान रूप से प्रिय हैं।

लोक कथाएँ मौखिक रूप में प्रचलित हैं। इसलिए कहनेवाले तथा सुननेवाले के अनुरूप इसका निर्माण है। आप बीती कहना और परबीती सुनना मानव की स्वाभाविक प्रवृत्ति ही है। घटित हुई बात या कल्पना जो भी हो इसमें कहनेवाले की भावना का मिलन ज़रूर है। लोककथाएँ नाम सुनते ही पहले याद आती है 'नानी की कहानियाँ'। मलयालम में इसे 'मुत्तश्शिक्कथकळ्' कहते हैं। पुराने ज़माने में नानी माँ या दादी माँ बैठकर बच्चों को कहानियाँ सुनाती थी। इसमें लोककथाओं के रूप में बिद्वानों द्वारा वर्गीकृत सभी कहानियाँ आती हैं। इसलिए यह कहना अनुचित न होगा कि संपूर्ण लोककथाओं की अधिकारी बच्चे भी हैं।

---

1 डॉ. सत्या गुप्ता - खडीबोली का लोक साहित्य - पृ. सं. 147

2. डॉ. विजयलक्ष्मी सिन्हा - आधुनिक हिन्दी में बालसाहित्य का विकास पृ सं 168

एक बात यह भी है कि लोक कथाओं का चरमलक्ष्य सर्व कल्याण की भावना है इसलिए अधिकाँश लोक कथाओं का अन्त सुखद या सुखान्तर होती है। जीवन की कठिनाईयों में भी लोग आशावादी दृष्टिकोण रखते थे। उस समय भी लोग कष्टताओं के बीच ही जीवन बिताते थे। लेकिन वे कभी भी निराशावादी न थे। वे हमेशा जीवन पर आस्था रखते थे जो आज के जीवन में बहुत कम हैं। आज के बच्चों में आशावादी दृष्टिकोण की कमी है। वे छोटी सी छोटी बातों के लिए भी आत्महत्या करने को सोचते हैं। पुराने ज़माने में परियों तथा भूतों की काल्पनिक कहानियाँ सुनकर सोनेवाले बच्चे भी जीवन की कठिनाईयों में निराश नहीं होते थे। इतिहास पुरुषों, पौराणिक पात्रों, वीर राजकुमारों की कष्टताओं की कथाएँ तथा अंतिम विजय की कथाएँ भी वे सुनते थे तथा अपने जीवन में भी कष्टताओं के बाद अंतिम विजय के सपने देखते थे। आधुनिक कहानियों में घोर निराशा की कहानियाँ भी है तथा क्लिष्ट भाषा तथा भाव को लेकर लिखनेवाले भी हैं। इसलिए बच्चों तथा बडों के लिए स्वाभाविक रूप में अलग अलग लिखना पडा। लोक कथाओं में कामवासना की प्रधानता कहीं भी नहीं है जबकि अधिकांश आधुनिक कहानियाँ इससे भरपूर हैं। लोक कथाओं में नैतिक मूल्यों का समावेश अधिक रूप में हैं जो बच्चों के लिए बिलकुल अनुकूल हैं। इसप्रकार कह सकते हैं कि लोककथाएँ बच्चों तथा बडों को समान रूप से उपयोगी सिद्ध हुई हैं।

4.5.1 नीतिपरक कहानियाँ हिन्दी तथा मलयालम में

बच्चों में बाल्यकाल से ही नीति तथा आदर्श सिखाना ही इसप्रकार की कहानियों का उद्देश्य है। 'पंचतंत्र' इसका उदाहरण हैं। विष्णु शर्मा यह

जानते थे कि नीतिग्रन्थों का पठन-पाठन बच्चों के लिए व्यर्थ ही होगा। बच्चों को वास्तव में ऐसे माध्यम की आवश्यकता है जिसमें इनकी रुचि हो, जो इनके मन में औत्सुक्य का भाव जागृत कर सके और साथ ही मन पर एक ऐसा अमिट प्रभाव छोड जाये जो इनके लिए जीवन दीप बनकर सदा आलोक दे। पंचतंत्रकार इसलिए लिखा था

"यन्नवे भाजने लग्नः संस्कारो नान्यथा भवेत।
कथाच्छालेन बालानां नीतिस्तदिह कथ्यते।।"

याने जिसप्रकार किसी नवीन पात्र के कोई संस्कार नहीं रहते, बच्चों की स्थिति उसी प्रकार की होती है। इसलिए उन्हें तो नैतिक कथा आदि के द्वारा ही संस्कार संपन्न बनाना चाहिए। यह सच हैं कि उस समय का समाज नहीं हैं अब। समाज बदला है और नीति क्या है उसकी धारणाएँ भी बदलीं। लेकिन बच्चों का मनोविज्ञान उस समय और आज समान है याने उतना बदला नहीं हैं। पुराने ज़माने में भी बच्चों को कहानियाँ पसन्द थी और अब भी पसन्द है। हमें केवल यह सोचना है कि कहानियों के माध्यम से बच्चों को क्या दिया जाता है। इसमें कोई तर्क नहीं हैं कि बच्चों को अच्छे स्वभाव गुणों से युक्त बनाने में नीति कथाओं का बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान है।

हिन्दी तथा मलयालम में इसप्रकार की कहानियाँ बहुत मिलती है तथा इनमें समानताएँ ही देखने को मिलती हैं। दोनों भाषाओं में पंचतंत्र, हितोपदेश आदि ग्रन्थों के नीतिकथाऐं बहुत अधिक प्रचलित थीं।

पंचतंत्र तथा हितोपदेश आदि में पशु-पक्षियों के माध्यम से कहानी कही गयी थीं। बच्चों को पशु-पक्षियाँ अत्यन्त पसन्द तथा विस्मय है। प्रिय

वस्तुओं के माध्यम से बातें करते समय उपदेश तथा नीति देते समय बच्चों पर यह सीधा प्रभाव डालता है। पंचतंत्रकार बच्चों के इस मनोविज्ञान से परिचित थे इसलिए उन्होंने पशु-पक्षियों को कहानियों का प्रमुख पात्र बनाया। पशु-पक्षियों से संबन्धित कहानियाँ अधिकांशतः ऐसी होती हैं जिनमें पशु-पक्षी ही प्रमुख पात्र होते हैं और वे आपस में बातें करते हैं। कुछ ऐसी भी कहानियाँ होती हैं जिनमें पात्र की सहायता के लिए पशु-पक्षी होते हैं और वे आदमियों की तरह ही बातें करते हैं। ऐसी भी कहानियाँ होती हैं जिनमें पशु-पक्षियों के बारे में सभी कुछ लेखक ही कहता है। ऐसी कहानियाँ हिन्दी तथा मलयालम में समान रूप में प्रचलित थीं। उदाहरण के लिए कीलोलपाडी वानर की कथा जो हर कहीं बच्चों को बहुत अधिक पसन्द है, मलयालम में विकृतिक्कुरङ्ङन्टे कथा (नटखट बन्दर की कहानी) नाम से यह लोक में प्रचलित थी :-

"एक गाँव के पास, जंगल की सीमा पर मन्दिर बन रहा था। वहाँ के बढई दोपहर के समय भोजन के लिए गाँव में आ जाते थे।

एक दिन जब वे गाँव में आये हुए थे तो बन्दरों का एक दल इधर-उधर घूमता हुआ वहीं आ गया, जहाँ बढई का काम चल रहा था। बढ़ई उस समय वहाँ नहीं थे। बन्दरों ने इधर-उधर उछनला और खेलना शुरू किया। वहीं एक बढई शहतीर को चीरने के बाद उसमें कील फंसाकर गया था। छोटे बन्दर को कौतूहल हुआ कि यह कील यहाँ क्यों फंसी है। बुजुर्ग बन्दर ने उसे मना किया। उसने उसे उपदेश दिया कि अनावश्यक बातों पर सर नहीं डालना हैं। लेकिन छोटे बन्दर ने उसकी बातों को अनसुना कर दिया। वह आधे चिरे हुए शहतीर पर बैठकर अपने दोनों हाथों से कील को बाहर निकालने लगा।

कील बहुत मज़बूती से वहाँ गडी थी - इसलिए बाहर नहीं निकली। लेकिन बन्दर भी हठी था। वह पूरे बल से कील निकालने में जूझ गया। अन्त में भारी झटके के साथ वह कील बाहर निकल आयी किन्तु उसके निकालते ही बन्दर का निचला भाग शहतीर के चिरे हुए दो भागों के बीच में आकर पिचक गया। अभागा बन्दर वहीं तड़प तड़प कर मर गया। मलयालम के इस कहानी में शहतीर के चीरे हुए भागों के बीच बन्दर का पूँछ पिचक जाने का वर्णन है और बन्दर का पूँछ कट जाता है। कटे हुए पूँछ होने के कारण दूसरे बन्दर उनको अपने दल से बाहर निकालता है।

हिन्दी प्रदेशों में इस कहानी के माध्यम से बच्चों को यह उपदेश दिया था कि गैर ज़रूरी मामलों में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। मलयालम में इस कहानी का उपदेश यह दिया जाता था कि बडों की बातों को मानना चाहिए। जब बच्चे बडों की बातों को नहीं मानते है या अनावश्यक बातें हमेशा करते रहते हैं तब उनसे कहते हैं कि सुनो यदि तुम ऐसा करें तो तुझे भी उस बन्दर की स्थिति होगी। तब बच्चा बहुत जल्दी समझ जाता है। यही ऐसी कहानियों का महत्व है कि अनजा्ने ही बच्चों पर इसका प्रभाव सरल रूप से पडता है। पंचतंत्र की कहानियों के माध्यम से बच्चों में मित्रों के चुनाव से लेकर जीवन के सभी नीति नियमों से अवगत हो जाते हैं।

डॉ विजयलक्ष्मी सिन्हा के अनुसार "नीतिशास्त्र का सर्वाधिक महत्वपूर्ण ग्रन्थ 'पंचतंत्र' का ऋणी तो देश. तथा विदेश दोनों हैं। पंचतंत्र एवं नीति कथाएँ भी बहुतायत रूप में बाल साहित्य पर छायी रही। इनका मुख्य उद्देश्य रहा बालकों को नीति की शिक्षा देना।"[1]

---

1 डॉ. विजयलक्ष्मी सिन्हा - आधुनिक हिन्दी में बाल साहित्य का विकास - पृ. सं. 173-174

डॉ धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार "इन नीति कथाओं की विशेषता यही है कि इनमें मनुष्य के स्थान पर पशु-पक्षी, वृक्ष आदि पात्र के रूप में गृहीत हुए हैं। वे मानवीय स्वभाव गुणों से युक्त है। इनका उद्देश्य राजनीतिक एवं नैतिक शिक्षा देना तथा दैनिक जीवन के विविध पक्षों का प्रतिपादन करना है।"[1]

डॉ. कुसुम डोंभाल के राय में "पशु-पक्षियों, परियों आदि से सम्बन्धित कहानियाँ मनोविज्ञान के अनुसार बच्चों के लिए उपयोगि नहीं है। लेकिन आगे उन्होंने ही लिखा है कि पशु-पक्षी बच्चों को बहुत प्रिय होते हैं और हमारे देश में इनके माध्यम से कहानी कहने की परम्परा प्राचीनकाल से रही है। साहित्य में ये पशु पक्षी प्रतीकात्मक रूप में आये हैं। आधुनिक समय का भी अधिकाँश बाल कथा साहित्य पशु-पक्षियों से सम्बन्धित है। चिड़िया, कौआ, बिल्ली, कुत्ता आदि ये पशु-पक्षी बालक के प्रारंभिक परिवेश के मित्र होते हैं और इनसे सम्बन्धित कहानियों को बच्चे बहुत पसन्द करते हैं। इस प्रकार की कहानियों में पशु-पक्षियों को मानवीय भाषा में बातचित करते देखकर बच्चे बहुत खुश होते हैं। अतः पशु-पक्षियों से सम्बन्धित कहानियाँ हिन्दी बाल साहित्य में पर्याप्त मात्रा में लिखी गयी हैं और लिखी भी जा रही हैं।"[2] इससे स्पष्ट है कि पशु-पक्षियों से सम्बन्धित कहानियाँ बच्चों के अनुकूल ही हैं। इसे आधुनिकता के नाम पर बालोपयोगी न मानना ठीक नहीं हैं।

इसप्रकार लोक साहित्य से बच्चों को प्राप्त सबसे महत्वपूर्ण संपत्ति है नीति कथाएँ। हिन्दी तथा मलयालम में प्राचीनकाल से लेकर आज भी इसप्रकार की कथाएँ प्रचलित रहीं।

---

1 (सं) धीरेन्द्र वर्मा हिन्दी साहित्यकोश - पृ सं. 214

2. डॉ. कुसुम डोंभाल - हिन्दी बाल काव्य में प्रतीक एवं कल्पना तत्व पृ सं. 53

मलयालम में ई.वी. कृष्णपिळ्ळै के 'पंचतंत्र कथकळ्' से लेकर एम.एम. मोनायी के 'पंचतंत्र' तक पंचतंत्र के अनेक पुनराख्यान हुए हैं। ई.वी कृष्णपिळ्ळै द्वारा पंचतंत्र का पुनराख्यान 'पंचतंत्र कथकळ्' नाम से 1935 में प्रकाशित हुआ। एम.एम. मोनायी का पुनराख्यान 'पंचतंत्रम्' 2002 में प्रकाशित हुआ। इसके बाद भी पंचतंत्र के विभिन्न भागों की कहानियों के पुनराख्यान कई पुस्तकों में प्रकाशित हुई हैं। उसी प्रकार हितोपदेश का भी पुनराख्यान बहुत मिलते हैं। एम.आर. वेलुप्पिळ्ळा शास्त्री ने 1937 में 'हितोपदेश कथकळ्' लिखा था।

हिन्दी बाल साहित्य में स्वतंत्रता के पूर्व तथा पश्चात् भी 'पंचतंत्र' की कथाएँ तथा पशु पक्षियों को माध्यम बनाकर रचित अनेक नीति कथाएँ प्रचलित रहीं। द्विवेदी युग में 'पंचतंत्र' तथा 'हितोपदेश' के बाल संस्करण प्रकाशित हुए थे। सुदर्शन कृत 'बच्चों का हितोपदेश' निरंकार देव सेवक एवं प्रसारण मंत्रालय द्वारा प्रकाशित हैं। इसमें पशु-पक्षियों के माध्यम से जीवन मूल्यों एवं नीतियों पर प्रकाश डाला गया है। योगराज यानी कृत 'पशु-पक्षियों की कहानियाँ' राममूर्ति मेहरोत्रा की 'पशु-पक्षियों की नीति कथाएँ' आदि भी प्रमुख है। विष्णु प्रभाकर का 'सरल पंचतंत्र' सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय द्वारा प्रकाशित पंचतंत्र की कहानियों का सरल हिन्दी रूपान्तरण, हेमलता की 'पंचतंत्र की कहानियाँ' तथा 'मित्र की परख' शिवकुमार की 'पंचतंत्र की कहानियाँ (चार भागों में) डॉ. देवसरे का 'नया पंचतंत्र' आदि पंचतंत्र के पुनराख्यान हैं।

इसके अलावा 'सिंहासन बत्तीसी' तथा 'बेताल पच्चीसी' का भी अनुवाद हुआ है। यशपाल जैन का 'सिंहासन बत्तीसी' हिन्दी में अनूदित है। जातक कथाओं का संकलन 'जातक कथाएँ' नाम से भारत सरकार के प्रकाशन विभाग द्वारा प्रकाशित हुआ। कांता ऐंगरा का 'वीर बौना' वासुदेव गोस्वामी तथा प्रभु दयाल गोस्वामी की 'जातक की कहानियाँ' प्रभुदयाल अग्निहोत्री की 'लोक गंगातीर' कृष्ण चैतन्य का 'रोहंत और नंदिया' आदि जातक कथाओं के रूपान्तरण है।

जातक कथाएँ पालिभाषा में रचित है। इसका रचनाकाल पाँचवीं शताब्दी ई.पू. से लेकर पहली शताब्दी ई.पू. तक माना जाता है। डॉ. विजयलक्ष्मी सिन्हा के अनुसार "पशु-पक्षियों की कहानी का सबसे प्राचीन ग्रन्थ है जातक कथाएँ, इसमें लोक में प्रचलित छोटी बडी कथाएँ हैं, जो बोधिसत्व के पुनर्जन्म से सम्बन्धित हैं। ये कहानियाँ सीधी-सादी बिना संवारी अवस्था में मिलती हैं जिनमें गद्य और पद्य दोनों का समावेश है"[1] इससे स्पष्ट है कि लोक में प्रचलित कथाओं से ही इसका निर्माण हुआ है। ऐसा माना जा सकता है कि पंचतंत्र, हितोपदेश तथा जातक कथाएँ आदि लोक भाषा में प्रचलित थीं। बच्चे बहुत प्राचीन काल से ही इससे परिचित थे।

बच्चों को नीति की शिक्षा देना नीति कथाओं की रचना का उद्देश्य है जिसकी पूर्ती पशु-पक्षी के माध्यम से की जाती है। इसके द्वारा जीवन के अच्छे और बुरे दोनों स्वरूपों का प्रतिपादन हुआ है। साथ ही जीवन की

---

1 डॉ. विजयलक्ष्मी सिन्हा - आधुनिक हिन्दी में बालसाहित्य का विकास पृ सं 53

व्यावहारिता का भी स्पष्ट चित्रण दृष्टिगोचर और नीतिपरक होने के साथ साथ रोचक भी हैं। रामचन्द्र उच्चिल के अनुसार नीति कथाओं में निहित नीति, चातुर्य, युक्ति, उपाय आदि बच्चों को जितना आकर्षित कर सके हैं उतना अन्य कृति नहीं। मूर्ख से राजकुमारों को सर्व विद्या विशारद बना देने का श्रेय पंचतंत्र की कहानियों को है। इस संसार में कैसी कैसी मनोवृत्तियाँ हैं, और उनका सामना किस तरह करना चाहिए आदि का ज्ञान देती हैं ये कहानियाँ।"[1]

शंकरदयाल यादव मानते हैं कि पंचतंत्र की कहानियाँ विश्व साहित्य को भारतीय साहित्य की एक महत्वपूर्ण देन हैं। उनके अनुसार "पंचतंत्र की कहानियाँ बहुत दूर-दूर की सैर कर चुकी हैं। इनके भ्रमण की एक कहानी स्वयं बडी रोचक हैं। संस्कृत की इन कहानियों का संसार में इतना अधिक प्रचार हुआ कि वे विश्वसाहित्य का अंग बन गयी हैं।"[2]

इसप्रकार आज भारत ही नहीं यूरोपीय साहित्य भी पंचतंत्र का बहुत आभारी हैं। नीतिपरक कहानियाँ बालमन के अनुकूल हैं। ये बच्चों को मनोरंजन के साथ साथ नीति का उपदेश भी देती हैं। हिन्दी तथा मलयालम में समान रूप से पंचतंत्र, हितोपदेश आदि की परंपरा की अनेक नीतिकथाएँ लोक कथाओं के अन्तर्गत प्रचलित हैं।

4.5.2 हिन्दी तथा मलयालम की पौराणिक लोककथाएँ

हिन्दी तथा मलयालम में पौराणिक कहानियाँ भी लोककथाओं के माध्यम से बच्चों को मिली हैं। राम, कृष्ण, शिव, अर्जुन, द्रोण, रावण, हनुमान

---

1 मधुमती (जुलाई-आगस्त - 1967) - पृ. सं. 79

2. शंकरदयाल यादव - लोकसाहित्य सिद्धांत और प्रयोग - पृ. सं 342

आदि अनेक पुराण पात्रों से सम्बन्धि कहानियाँ लोक में जनभाषा में प्रचलित थीं। मलयालम में मावेली और वामन (महाविष्णु) से सम्बन्धित अनेक कहानियाँ प्रचलित थीं। हिन्दी में ये कहानियाँ नहीं हैं। हिन्दी तथा मलयालम में ज़्यादात्तर प्रचलित लोक कथाएँ शिव से सम्बन्धित हैं। उदाहरण के लिए उत्तर भारत में प्रचलित शिव पार्वती के विवाह की कथा :-

"एक था राजा। बहुत तप करने के बाद उसके एक लडकी हुई। उसका नाम उसने पार्वती रखा। जब पार्वती बडी हुई तो राजा को राजकुमारी के विवाह के चिन्ता हुई। चारों ओर नाई ब्राह्मण वर की खोज में भेजे गये, पर राजकुमारी के संग किसी की कुण्डली ही नहीं मिलती थी। राजा बडे परेशान थे कि क्या किया जाय। कन्या के विवाह का योग ही नहीं बनता है।

अपने माता-पिता को बहुत चिन्तित देखकर एक दिन पार्वती बोली, "पिताजी आप मेरे लिए वर ढूँढने के लिए इतने परेशान क्यों हो रहे हैं? मेरे भाग्य में तो रमता योगी लिखा है। दूर जो पर्वत दिखायी पड़ता है। उसी पर भभूत रमाए एक योगी है। विधाता ने मेरा विवाह-संयोग उसी से बनाया है। आप पण्डित और नाई को उस योगी से मेरा सम्बन्ध करने के लिए भेज दें।

राजा ने सोचा, बेटी सयानी और समझदार है इसी का कहना मानकर देख लें। उन्होंने नाई और ब्राह्मण को सफेद पर्वत पर भेज दिया। उन दोनों ने वहाँ जाकर देखा कि एक सिल पर गौर वर्ण का एक योगी गले में सर्पों की माला, बाघम्बर पहने, भमूत रमाए, पास में कमण्डल और त्रिशूल रखे, समाधि लगाए बैठा है। समाधि टूटने पर उन्होंने उससे कहा, "महाराज! आप

के लिए सगाई आई है। हमारे राजा की गुणवती बेटी ने आपको अपना पति चुना है।"

ब्राह्मण और नाई का आना सुनकर और लोग-बाग भी इकट्ठे हो गये और शिवजी महाराज से बोले, "राजा की बेटी की सगाई लेकर ये लोग आये हैं, सो इनकी आवभगत तो करो।"

शिवजी महाराज थे साक्षात् भगवान् ही। उन्होंने पतलों पर रेत परोस कर ऊपर से गंगा जल डाल दिया। बस उनके प्रताप से रेत तो बन गया बूरा और गंगाजल उस पर से घी बनकर बहने लगा। पंडित और नाई ने घी-बूरा डटकर खाया। अब दक्षिणा देने की बारी आई। शिवजी ने कंकडों से उन दोनों की झोली भर दी। ब्राह्मण ने तो गुस्से में आकर रास्ते में ही सब कंकड फेंक दिये, पर नाई ने अपने रख छोडे। घर पहूँचते-पहूँचते नाई को अपनी झोली बहुत भारी लगने लगी। उसने हाथ डालकर जो कंकड निकालने चाहे तो देखा कि झोली में तो सोने की मोहरें ही मोहरें भरी हैं। अब तो ब्राह्मण पछताने लगा कि हमें क्या मालूम था कि राजकुमारी का वर ऐसा करामाती है।

खैर घर आकर उन्होंने राजा को खबर की कि हम तिलक चढ़ाकर विवाह तय कर आये हैं।

ठीक दिन शिवजी महाराज डमरू बजाते हुए अपने भूत-प्रेतों को लेकर नादिया बैल पर बैठकर पार्वती को व्याहने आन पहूँचे। ऐसी विचित्र बारात देखकर सब पुरवासी हँसने लगे। इधर जब वर की आरती उतारने के लिए पार्वती की माँ सखियों के सहित आगे आई तो भूत-प्रेतों की डरावनी

शक्लें और भभूत रमाए, गले में साँप डाले, बाघम्बर पहने हुए वर को देखकर, वह घबराकर महलों में भागी और राजा से आकर बोली, "हाय, करम फूटे हमारी राजकुमारी के, कहाँ वह फूल सी राजकुमारी और कहाँ यह नंग-धडंग योगी। क्या तीन लोक में मेरी बेटी के योग्य यही वर बचा था?"

माँ को कलपती देख पार्वती ने शिव को सन्देश भेजा कि "मेरे बाप की लाज तुम्हारे हाथ है। भला क्यों उनकी जगहँसाई करवा रहे हो? समेट लो अपनी लीला।"

यह सुनकर भगवान शिव महाराज ने हँसकर शंख बजाया। बरात का रूप रंग ही पलट गया। इन्द्रपुरी से सब देवता बरात में शामिल होने के लिए अपनी-अपनी सवारी पर चढ़कर आ गये। उनके आ जाने पर जनवासा जगमगा उठा।

बडी धूम धाम से ब्याह हुआ। ब्याह कराकर शिवजी महाराज पार्वती को लेकर चल निकले।

कैलाश पर आकर शिव-पार्वती के दिन बडे आनन्द से कटने लगे। दुनिया की खैर-खबर लेने के लिए जब कभी शिवजी निकलते, तो पार्वती भी उनके साथ जाती। जब कभी भी उन्हें कोई दुखिया दिखायी पड जाता, तो पार्वती हठ पकड़ लेतीं कि इसका दुःख दूर करो तब आगे बढ़ूँगी। कभी कभी तो शिवजी पार्वती की हठ से बहुत परेशान हो जाते, पर वह पार्वती को नाराज़ नहीं करना चाहते थे, इस कारण से उन्हें उनकी बात माननी ही पड़ती। धीरे-धीरे दुनिया का सिलसिला बिगड़ चला। लोग अपने पापों का दंड ही न भोग

पाते थे। यह देखकर एक दिन शिवजी ने सोचा कि अबकी बार यात्रा में पार्वती को साथ नहीं ले जाएँगे। बस, कुछ बहाना बनाकर वह कुछ दिनों के लिए पार्वती को घर पर छोडकर अकेले ही चल दिये।

शिवजी को गये लगभग एक साल हो गया, तो पार्वती का मन बडा उदास हुआ। मौज में आकर उन्होंने एक दिन उबटन का सुन्दर सा बालक गढ लिया। अपने सतीत्व के बल पर उसे प्राण भी दिया।

शिवजी वापस लौटने में पाँच बर्ष हो गये और बच्चा भी चार साल का हो गया। एक दिन पार्वती जी आँगन में नहा रही थीं अतः उन्होंने अपने बेटे को ड्योढी में रखवाली के लिए बिठा दिया। इतने में शिवजी महाराज अपनी यात्रा से लौटे। ड्योढ़ी पर बच्चे को देखकर उन्होंने पूछा, तू कौन है, किसका बच्चा है?" बच्चा बोला, "मेरा नाम गणेश है और मेरी माँ का नाम है पार्वती।" यह सुनकर शिवजी को सन्देह हुआ और क्रोध में भरकर उन्होंने अपने त्रिशूल से गणेश जी का सिर उडा दिया। अन्दर घुसकर पार्वती से गणेश के बारे में पूछा। उन्होंने सारा हाल बता दिया पर शिवजी को यकीन नहीं आया। हारकर पार्वती ने अपना सती-तेज प्रकट किया। हटकर शिवजी उसकी स्तुति करने लगे। जब पार्वती को पता लगा कि शिवजी ने उनके पुत्र का सिर उड़ा दिया है तो लगीं धाड़ें मार-मारकर रोने कि या तो मेरा बेटा जीता करो नहीं तो मैं प्राण छोड दूँगी।

अब तो शिवजी के हाथ पाँव फूल गये। वह भागे-भागे किसी सयाने के पास उपाय पूछने गये। उसने कहा कि अगर माँ अपने बच्चे को जनकर उसकी ओर पीठ करके सोई पड़ी हो, तो उसके बालक का सिरर

काटकर ले आओ और उसके सिर को गणेश की गर्दन पर धर दो तो गणेश जी उठेगा। पर यह काम चौबीस घण्टे के अन्दर ही होना चाहिए।

शिवजी ने चारों ओर अपने गण दौडा दिये, पर उन्हें कोई भी बालक ऐसा नहीं मिला जिसकी माँ उसकी ओर पीठ करके सोई पडी हो। हारकर शिवजी स्वयं ढूँढने निकल पड़े। उन्हें जंगल में एक हथिनी अपने बच्चे की ओर पीठ करके सोती दिखायी पडी। बस उन्होंने अपने त्रिशूल से झट से हथिनी के बच्चे का सिर काट लिया। तभी से यह बात चली आ रही है कि कोई माँ अपने बच्चे की ओर पीठ करके न सोए। इससे बच्चे का अहित होता है।

घर आकर शिवजी ने गणेश के कंधों पर हाथी के बच्चे का सिर लगा दिया और यह देखकर पार्वती को बडी खुशी हुई। पर पार्वती को इस बात की बडी चिन्ता हुई कि मेरे बेटे की शम्ल-सूरत के कारण सब जगह अपमान होगा। पर शिवजी ने आशिर्वाद दिया कि सब देवता गणेश को मान देंगे। प्रत्येक शुभ कार्य में सबसे पहले गणेश की ही पूजा होगी।

"तभी से यह रीति चली आ रही है कि कोई भी शुभ कार्य हो, सबसे पहले गणेश का पूजन किया जाता है।"[1]

इसमें पुराण कथा का कथन हुआ है साथ ही कुछ लोकविश्वास भी इसके अन्तर्गत निहित है, जैसे माँ अपने बच्चे की ओर पीठ करके सोना नहीं चाहिए। ऐसी कहानीयों का आरंभ इसप्रकार होता है कि नानी माँ पूछती

---

1 सावित्री देवी वर्मा (सं) - उत्तर भारत की लोक कथाएँ पृ. सं 24-30

हैं जानते हो कि सबसे पहले गणेश की पूजा क्यों होती है? तब यह जानने के लिए कहानी के अन्त तक बच्चे उत्सुक रहते हैं।

इसप्रकार रामायण तथा महाभारत की अनेक कहानियाँ लोक कथाओं के अन्तर्गत देखने को मिलती हैं। लोक कथाओं की एक विशेषता यह है कि इसका कोई रचनाकार नहीं होता। पुराणों का तो रचनाकार है, इस दृष्टि से पौराणिक कथाएँ लोककथाओं के अन्तर्गत नहीं आ सकती। लेकिन जनभाषा में सरल रूपों में मुँह से कान प्रचलित पुराण की कथाएँ लोककथाओं के अन्तर्गत आती हैं।

डॉ. विजयलक्ष्मी सिन्हा के अनुसार "भारतीय संस्कृति तथा धर्म की शिक्षा देने के लिए पौराणिक कहानियाँ महत्वपूर्ण हैं।"[1] यह सच है कि पौराणिक कहानियाँ धर्म की शिक्षा देती है। प्राचीनकाल में यह सफल भी था। लेकिन आज बच्चों को ऐसी कहानियाँ देते समय बहुत सतर्कता की आवश्यकता है। आज लोग सत्ता और अधिकार के लिए धर्म का दुरुपयोग करते हैं। इसलिए बच्चों को धर्म की शिक्षा देते समय इसका सही लक्ष्य क्या है इसपर ध्यान देना बहुत ज़रूरी है।

4.5.3 हिन्दी और मलयालम की ऐतिहासिक कथाएँ

ऐतिहासिक कहानियों का आधार इतिहास के प्रमुख पात्र, प्रमुख घटनाएँ आदि हैं। विक्रमादित्य, राजा भोज, वीरबल, तेनाली राम आदि की कहानियाँ हिन्दी तथा मलयालम में समान रूप से मिलती हैं। लेकिन स्थानीय

---

1 डॉ विजयलक्ष्मी सिन्हा - आधुनिक हिन्दी में बाल साहित्य का विकास पृ. सं 176

इतिहास और ऐतिहासिक पात्रों पर भी कहानियाँ है जैसे मलयालम में वेलुत्तम्पी, कुंजाली मरक्कार, पेरुंतच्चन, तच्चोळि ओतेनन, कायमकुलम् कोच्चुण्णी, उण्णियार्चा आदि स्थानीय नायकों को लेकर अनेक लोककथाएँ प्रचलित हैं। हिन्दी में मुगल शासकों और सदस्यों के सम्बन्ध में अनेक लोक कथाएँ प्रचलित है। उदाहरण के लिए अक्बर, बीरबल, राजा विक्रमादित्य आदि की कहानियाँ। मलयालम में नाराणत्तु भ्रान्तन की कथाएँ इसके लिए उदाहरण हैं। मलयालम भाषा में 'भ्रान्तन्' शब्द का अर्थ होता है पाग़ल। 'नाराणत्तु' शायद नारायण का तद्भव रूप है। नाराणत्तु भ्रान्तन केरल के एक बडे ज्ञानी पुरुष थे जिनकी सिद्धियाँ अलौकिक थीं पर वह कई ऐसे अजीब काम किया करते थे जो साधारण लोगों की नज़र में पागलपन लगते थे। इसलिए मामूली लोग उन्हें 'पागल' पुकारने पर मन ही मन वे उनके प्रति श्रद्धा का भाव रखते थे।

नाराणत्तु भ्रान्तन के पिता ब्राह्मण थे। मगर जाति - पांति छुआछूत या ऐसा कोई विचार उनको छू तक नहीं गया था। किसी का भी दिया हुआ खाना वे खा लेते थे। कहीं भी सो जाते। खूंब मेहनत करते। उनकी शारीरिक शक्ति गज़ब की थी। वे कभी-कभी एक अजीब विनोद करते थे। वे एक टीले पर जाकर भारी पत्थर ढूँढ लेते। उस पत्थर को वे बडी मेहनत से ऊपर की तरफ लुढ़काते-लुढ़काते टीले की ऊपर जाता तब वे एक क्षण रुकते। उसके बाद चारों तरफ देखकर वे उस पत्थर को नीचे की ओर धकेल देते। पत्थर तेज़ी से लुढ़कते-लुढ़कते नीचे ज़मीन पर आ जाता। यह दृश्य देखकर वे तालियाँ बचाकर हँस लेते। वे यही देखकर हँसते थे कि किसी के ऊपर तक पहुँचने में कितना कष्ट होता है और कितनी जल्दी वह नीचे की ओर आ जाता

है। आदमी की प्रकृति में दिखायी देनेवाली इस विशेषता पर नाराणत्तु भ्रान्तन हँस पडते थे।

नाराणत्तु भ्रांतन रात में श्मशान में बैठकर खाना पकाकर भोजन करते थे तथा वहीं सो जाते थे। जलती चिता या रोते गीदड़ों की चीख-चिल्लाहट से वे डरते नहीं थे। एक दिन वे इसी प्रकार श्मशान में बैठे थे तो एक यक्षिणी उनके सामने आयी। नाराणत्तु के निडर भाव से वह प्रसन्न हुई और कहा, "तुम पर हम प्रसन्न हैं। कोई वर माँग लो।" और कोई होता तो उस वरदान से अत्यधिक प्रसन्न होता। मगर नाराणत्तु लापरवाही से बोले, "अच्छा, तो बताओ कि किस दिन मेरी मृत्यु होगी।" यक्षिणी ने थोडी देर सोचने के बाद कहा कि अमुक दिन होगी। नाराणत्तु ने अब कहा "तो मुझे उस दिन के दो दिन बाद मरने का वर दो।" यक्षिणी ने कहा, "यह तो संभव नहीं।" नाराणत्तु हँसते हुए बोले "तो उस दिन के एक दिन पहले ही मरने का सुयोग दो।" यक्षिणी ने बताया, "यह वर भी मैं नहीं दे सकती। मौत का दिन और वक्त जन्म के समय ही निश्चित होता है। नाराणत्तु अब खूब हँसे, "यह भी नहीं! तो क्या दोगे।" यक्षिणी ने कहा, "मैं जब आई हूँ तब वर दिये बिना लौट नहीं सकती, कोई न कोई वर तुम्हें माँगना ही पड़ेगा।" नाराणत्तु ने कहा, "अगर यह बात है तो दाहिने पैर में जो सूजन है उसे बायें पैर में कर दो।" यक्षिणी को अपनी तुच्छता पर बडी ग्लानि हुई।"[1]

नाराणत्तु के सम्बन्ध में कितने ही ऐसे किस्से सुनाये जाते हैं। नाराणत्तु हमेशा आम मानव के पक्ष में थे। कटु ब्राह्मणवाद आदि से उन्हें कट्टर

---

1 डॉ एन.ई विश्वनाथ अय्यर केरल की लोक कथाएँ पृ सं 19 22

विरोध था। इसप्रकार की ऐतिहासिक कहानियों से बच्चों में देश तथा हमारी संस्कृति के प्रति प्रेम एवं आस्था उत्पन्न होती है एवं मानवीय संवेदना भी बढ़ाती हैं। हिन्दी की तुलना में मलयालम की अनेक ऐसे ऐतिहासिक कहानियाँ है जो स्थानीय नायकों पर आधारित है। इसकी विशेषता यह है कि ये नायक हमेशा दुर्बल आम मानव के लिए खडे होते थे जिसे पढकर बच्चों में भी ऐसा सद्विचार ज़्यादा उत्पन्न होता हैं। केरल के एक स्थानीय नायक कायमकुलम कोच्चुण्णी चोर होने पर भी इसलिए सबको प्रिय है कि वह संपन्न लोगों के यहाँ से धन और सामान लूटकर गरीब लोगों को देते थे। इस सद्वृत्ति से उनको चोर कहकर लोग उनसे घृणा नहीं करते थे। आम लोगों को वह ईश्वर के समान थे। हिन्दी में इसप्रकार की स्थानीय नायकों से सम्बन्धित कहानियाँ कम है जिन्होंने समाज एवं आम मानव के लिए खडा था।

4.5.4 हिन्दी तथा मलयालम में मनोरंजक कथाएँ

लोककथा पर केन्द्रित मनोरंजक कहानियों में शुद्ध मनोरंजन हैं। हास्य कथाएँ, पशु-पक्षी से सम्बन्धित कहानियाँ, व्यंग्य कथाएँ, परियों की कथाएँ आदि अनेक कथाएँ इसके अन्तर्गत आते हैं। ऐसी कहानियाँ बच्चों के मन में आनन्द भर देती हैं और उनमें कुतूहल, आश्चर्य का भाव जगाती हैं। पशु-पक्षियों की कहानियों में उनकी आदतें रहने का ढंग, खाने-पीने का तरीका आदि का विवरण होता था। इससे बच्चे इनके बारे में जानकारियाँ प्राप्त करते है तथा इनके सम्बन्ध में अनेक कल्पनाएँ भी करते हैं।

परियों के बारे में भी बच्चों के मन में अनेक सुन्दर कल्पनाएँ तथा स्वाभाविक जिज्ञासाएँ होती हैं। परियों के बारे में अनेक विद्वानों ने अपना

विचार प्रस्तुत किया है। लीच ने परियों की उत्पत्ति के बारे में कहा कि "परियाँ वे देवता तथा महापुरुष है जिनका महत्व कम हो गया और वे पुराने देवताओं के रूप में नयी राहें दिखाते हैं। दूसरा सिद्धाँत यह है कि परियाँ प्रकृति की आदि शक्तियों का मानवीकरण हैं।"[1]

परियों की कल्पना तो बहुत पुरानी हैं। ऐसा माना जा सकता है कि मानव इतिहास के आदिम युग में, जब मनुष्य प्रृथ्वि पर उतना विजय प्राप्त नहीं कर पाया था। तभी उसने ऐसे अलौकिक तत्वों की कल्पनाएँ की होंगी। भयानक वर्षा, बाढ़, आंधी, तूफान आदि के कारणों को न समझकर लोग इन्हें प्रकृति कोप समझते थे। उन्होंने इसके किसी अलौकिक वस्तु का हाथ समझा। इसलिए जहाँ इस प्रकार के भयानक कार्य करनेवाले अलौकिक तत्व की कल्पना हुई वही उससे रक्षा करनेवाले अलौकिक तत्वों की भी कल्पना की गयी। इसी तरह उस समय के बच्चों ने भी अपनी मधुर कल्पना में परियों को जन्म दिया और अनेक मुसीबतों में रक्षा कर्रनेवाली तथा बच्चों की कठिनाईयों को हल करनेवाली परियों की कथाएँ बन गयीं। फिर जैसे जैसे ये कहानियाँ एक मुँह से दूसरे कान तक पहूँचती गयीं। इसप्रकार परीलोक तथा राजा-रानियों राजाकुमार आदि से सम्बन्धत अनेक कल्पनाएँ हुई।

हर एक देश की परियों के बारे में, उस देश की अपनी अलग अलग मान्यताएँ होती हैं लेकिन वे दुनिया के हर कोने में मौजूद हैं।

---

1. ....that fairies are discarded gods or hewes reduced in stature and importance as an old set of gods gives ways to new

   ....that the fairies are a personification of the eld primitive spirits of nature Mc Edward Lech - The standard dictionary of folklore Vol. I. P. 363

'शेख चिल्ली' जैसी हास्यात्मक कहानियाँ हिन्दी तथा मलयालम में समान रूप से मिलती हैं। वीरबल तथा बादशाह अक्बर पर अनेक हास्यात्मक कहानियाँ हिन्दी तथा मलयालम में प्रचलित हैं। बीरबल सबसे बुद्धिमान व्यक्ति है जिसके पास बादशाह की हर समस्या का समाधान है। हर चोट का खरा जवाब है। इसप्रकार मनोरंजक कथाएँ हिन्दी तथा मलयालम में समान रूप में मिलता है।

4.6 निष्कर्ष

बच्चों को सही रास्ते पर ले ज़ाने के लिए कहानियों से ज़्यादा अच्छा माध्यम कोई दूसरा नहीं है। पुराने ज़माने में अपने महत्वपूर्ण अनुभवों को लोग कहानियों के रूप में सुनाया करते थे। इन लोककथाओं से प्रौढ़ ही नहीं बच्चे भी समान रूप से आनन्द लेते थे। बच्चों के नाम पर पृथक रूप में कहानियाँ न होने पर भी जो कहानियाँ प्रचलित थी वे बडों से अधिक बच्चों को मनोरंजन तथा उपदेश देती थी। उन्हीं की स्मरण शक्ति के परिणाम स्वरूप वे कहानियाँ हज़ारों मील की यात्रा करके संसार के एक कोने से दूसरे कोने में पहूँची और एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक सुरक्षित रहीं, इसलिए दुनिया के विभिन्न प्रदेशों की इन कहानियों में समानताएँ अधिक होना सहज ही हैं।

हिन्दी तथा मलयालम की लोक बाल कथाओं के अध्ययन से हम इस निष्कर्ष पर पहूँच जा सकता है कि दोनों भाषाओं की लोक बालकथाओं में समानताएँ अधिक हैं। हिन्दी तथा मलयालम में अनेक नीति कथाएँ, पौराणिक कथाएँ, पशु-पक्षी सम्बन्धी कथाएँ, परी कथाएँ आदि समान रूप से मिलती हैं।

हिन्दी तथा मलयालम में पशु-पक्षी सम्बन्धी कहानियों के माध्यम से बच्चों को बडा प्रोत्साहन तथा शिक्षा मिलती है। इन कथाओं के छोटे-छोटे चरित्रों से छोटे-छोटे बच्चे अमूर्त मित्रता स्थापित कर लेते हैं तथा उसी रूप में सोचने लगते हैं। अभिप्रायों का विस्तार लोक कथाओं की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता है जो देश-काल की सीमाओं से सर्वधा मुक्त है। इसलिए इसमें समानताएँ ही दृष्टिगत होती है। प्रवृत्ति की दृष्टि से भी हिन्दी तथा मलयालम की बालकथाएँ समान ही हैं।

नीति कथाओं के सन्दर्भ में पंचतंत्र, हितोपदेश, जातककथाएँ, कथासरितसागर आदि की कहानियाँ हिन्दी तथा मलयालम में लोक कथाओं के रूप में समान रूप से प्रचलित थीं। नाम स्थान आदि में ही थोडी भिन्नताएँ हैं। पौराणिक कहानियों में मावेली से सम्बन्धित कहानियाँ केरल में सबसे अधिक प्रचलित हैं। हिन्दी में ये कहानियाँ नहीं हैं। शिव, पार्वती, अर्जुन आदि पुराण पात्रों से सम्बन्धित कहानियाँ दोनों भाषाओं में समान रूप से मिलती हैं। ऐतिहासिक लोककथाओं में ऐसे स्थानीय नायकों से सम्बन्धित कहानियाँ मलालम में बहुतायत से मिलती हैं जो शोषण और अन्याय के विरुद्ध खडे थे। हिन्दी में इसप्रकार की कहानियाँ कम हैं। मनोरंजक कहानियों में परीकथाएँ, हास्य-व्यंग्य कथाएँ आदि हिन्दी और मलयालम में समान रूप से प्रचलित थीं। जो भी हो इसमें सन्देह नहीं है कि लोक बालकथाएँ आज भी अत्यधिक प्रचलित और बहुचर्चित है।

.....📖.....

अध्याय पाँच

हिन्दी और मलयालम की बाल पहेलियाँ

अध्याय पाँच

हिन्दी और मलयालम की बाल पहेलियाँ

5.0 प्रस्तावना

लोकसाहित्य में अधिकाँश विद्वानों ने पहेलियों, मुहावरों तथा लोकोक्तियों को प्रकीर्ण साहित्य के अन्तर्गत रखा है। कुछ आलोचक लोरियों या पालने के गीतों तथा खेल के गीतों को भी प्रकीर्ण साहित्य के अन्तर्गत रखा है। लेकिन यह उतना उचित नहीं लगता। ये गीत ही हैं इसलिए इसे लोकगीतों के अन्तर्गत रखना ही अधिक उपयुक्त है। प्रकीर्ण साहित्य के अन्तर्गत आनेवाली सभी विधाएँ बच्चों तथा बडों को समान रूप से ज्ञान तथा उपदेश देती रहीं। इसमें पहेलियाँ बच्चों को सबसे अधिक प्रिय हैं। इसपर विचार करने से पहले मुहावरे लोकोक्ति तथा कहावत क्या है और इसमें क्या अंतर है आदि पर विचार करना समीचीन होगा। तंब अपने आप स्पष्ट हो जायेगा कि पहेलियाँ बच्चों को इतनी पसन्द क्यों हैं।

5.1 लोकोक्तियाँ और कहावतें

डॉ सत्यागुप्ता के अनुसार "जनजीवन के मौखिक साहित्य में जिसप्रकार गीतों और कहानियों आदि का स्थान है उसी प्रकार वरन् कुछ अंशों में उससे भी अधिक महत्वपूर्ण स्थान लोकोक्तियों का है। गीत और कहानियाँ तो समय विशेष पर प्रयुक्त होती हैं पर लोकोक्तियाँ जीवन में स्थायी स्थान

रखती हैं। वे सदैव ही जनता के अन्तर्मन पर अच्छादित रहती हैं जो समय समय पर अनायास ही प्रकट हो जाती हैं। निरन्तर होनेवाले अनुभव ही मनुष्य की चेतना के अंग बन जाते हैं और अपना गहन प्रभाव छोड़ते हैं जो यदा-कदा लोकोक्तियों में व्यक्त होते रहते हैं।"[1]

'लोकसाहित्य के प्रतिमान' में डॉ. कुन्दनलाल उप्रेती ने लोकोक्ति को "किसी विशेष व्यक्ति की उक्ति न मानकर लोक की उक्ति कहा है। उनके अनुसार वस्तुतः लोकोक्ति का निर्माण प्रारंभ में तो व्यक्ति के उक्ति के रूप में ही हुआ होगा परन्तु उस निर्माता का व्यक्तित्व इतना लोकमत रहता है कि वह उस व्यक्ति विशेष की उक्ति न होकर लोक की उक्ति हो जाती हैं।"[2]

डॉ. श्याम परमार के अनुसार "जीवन के विस्तृत प्रांगण में भिन्न भिन्न अनुभव सर्वसाधारण जन के मानस को प्रभावित करके उसकी अभिव्यक्ति से संबंधित अंग को उत्कर्ष प्रदान करते है। ये ही अनुभव लोकोक्तियाँ या कहावतें हैं।"[3]

कुछ आलोचक लोकोक्तियों तथा कहावतों को पर्यायवाची शब्द मानते हैं। डॉ. कुन्दनलाल उप्रेती की राय में "लोकोक्तियाँ तथा कहावतें एक ही अर्थ के दो पर्याय शब्द हैं फिर भी उन्में कुछ तात्विक अन्तर हैं। जब कोई कथन अनुभव की कसौटी पर खरा उतर जाता है तभी उसे लोकोक्ति की संज्ञा

---

1 डॉ सत्या गुप्ता - खडीबोली का लोकसाहित्य - पृ. सं 243

2. डॉ कुन्दनलाल उप्रेती लोकसाहित्य के प्रतिमान पृ. सं. 191

3. श्याम परमार भारतीय लोक साहित्य - पृ. सं 184

मिलती है किन्तु कहावत शब्द की व्यंजना लोकोक्ति के अनुरूप नहीं। वास्तव में कहावत से ही लोकोक्ति का विकास होता है। अतः कहावत के सभी गुण और तत्व लोकोक्ति में समाप्त हो जाते हैं। परन्तु लोकोक्ति के सभी तत्व कहावत में नहीं पाये जाते। किसी व्यक्ति द्वारा कहा हुआ वाक्य जब अपनी अभिव्यक्ति के अनुरूप सत्य का प्रतिपादन करता है तभी वह कहावत कहने का अधिकारी है। इसप्रकार जब ऐसे कथन लोकानुभव की पृष्ठभूमि पर व्यक्तिहीन होकर प्रतिष्ठित हो जाते है तब लोकोक्ति कहा जाता है।"[1]

इसप्रकार लोकोक्ति तथा कहावत में थोडा सा ही अंतर है। डॉ बंशीराम शर्मा के अनुसार "कहावत सूत्र रूप में किया गया अनुभव सिद्ध वाक्य होता है। जिसके द्वारा संक्षिप्त तथा स्पष्ट रूप में सत्य का प्रतिपादन किया जाता है।"[2]

डॉ. कन्हैयालाल ने कहावतें को मानव स्वभाव और व्यवहार कौशल के सिक्के के रूप में प्रचलित होनेवाली बात बतायी है और ये वर्तमान पीढ़ी को पूर्वजों से उत्तराधिकार कै रूप में प्राप्त होती है। पथ प्रदर्शन की दृष्टि से भी उनकी उपादेयता सहज ही समझ में आ सकती हैं।"[3]

डॉ कुन्दनलाल उप्रेती ने लोक साहित्य के प्रतिमान में कहावतों के लिए विभिन्न भाषाओं में प्रचलित शब्दों का परिचय दिया है जो इसप्रकार है - "संस्कृत में कहावत के लिए 'लोकोक्ति' 'प्रवाद' 'आमाणक' 'प्रयोवाद'

---

1 डॉ. कुन्दनलाल उप्रेती - लोकसाहित्य के प्रतिमान - पृ. सं. 196

2. कन्हैयालाल सहल - राजस्थानी कहावतें पृ सं 11

3. डॉ. बंशीराम शर्मा किन्नर लोकसाहित्य - पृ. सं 136

'लोकप्रवाद' 'लौकिकी' 'गाथा' आदि कहते है। लेटिन में 'प्रोवरबियो' (Proverbio) ग्रीक में 'पारोनिया' (Paronia) तुर्की में 'अटालर सोगर' (Atalar sogar), रूसी में 'पोस्टोविस्टा' (Postovista) अरबी में 'मातल' हिब्रू में 'माशल' (Mashal) फारसी में 'अमसाल' (Amsal), अंग्रेज़ी में 'प्रोवर्ब' (Proverb), उर्दू में 'जुर्बल' 'मिस्ल' लहँदा में 'अखाण' राजस्थानी में 'ओखाणो' तथा 'कहबर' गढ़वाली में 'पखाणा' गुजराती में 'कहेवत' तथा 'उखाणु' बंगला में 'प्रवाद' 'लोकोक्ती' तथा 'प्रवचन' मराठी में 'आणा' 'न्याय' तथा 'लोकोक्ति' तेलुगु में 'समीटा' मलयालम में 'पषम्चोल्लु', तमिल में 'पषमोषि' तथा हिन्दी में 'लोकोक्ती' 'कहनावत' 'उपखान' 'पाखान' आदि कहते हैं।"[1] इसप्रकार विभिन्न भाषा में कहावत तथा लोकोक्ति के लिए एक ही शब्द का प्रयोग है। हिन्दी में कहावत के पर्यायवादी शब्द के रूप में लोकोक्ति शब्द दिया है। इससे स्पष्ट है कि लोकोक्ति तथा कहावत में अधिकाँश आलोचक ज़्यादात्तर अन्तर नहीं देखता।

5.2 मुहावरा तथा लोकोक्ति

मुहावरे तथा लोकोक्ति में तो स्पष्ट अन्तर है। मुहावरे को संस्कृत में 'वागरीति' और अंग्रेज़ी में 'इडियम' कहा जाता है। डॉ कृष्णदेव उपाध्याय ने मुहावरे की परिभाषा यों दी हैं - "मुहावरा किसी बोली या भाषा में प्रयुक्त होनेवाला वह अपूर्ण वाक्य खण्ड अथवा वाक्यांश है जो अपनी उपस्थिति के समस्त वाक्य को सबल, सतेज, रोचक तथा चुस्त बना देता है।"[2]

---

1 डॉ. कुन्दनलाल उप्रेती लोकसाहित्य के प्रतिमान पृ. सं. 206

2. डॉ कृष्णदेव उपाध्याय - लोकसंस्कृति की रूपरेखा - पृ. सं. 303

डॉ कुन्दनलाल उप्रेती के अनुसार "मुहावरा किसी बोली या भाषा में प्रयुक्त होनेवाले अपूर्व वाक्य खण्ड है, जो अपनी उपस्थिति से समस्त वाक्य को सबल, सतेज़ और रोचक बना लेते हैं। मुहावरा लोकोक्ति के समान अपने में पूर्ण नहीं होता है और उसकी सार्थकता वाक्य में प्रयुक्त होने पर ही होती है। उसका व्यवहार स्वतंत्र रूप से नहीं किया जा सकता। यह सदैव अपने मूल रूप में प्रयुक्त होता है। शब्द में परिवर्तन करने से अर्थों में भी परिवर्तन हो जाता है। संसार में मनुष्य ने अपने लोक व्यवहार में जिन-जिन वस्तुओं और विचारों को बहुत कौशल से देखा समझा और बार-बार उनका अनुभव किया, उन्हीं को शब्दों में बाँधा है, यही मुहावरे कहलाते हैं।"[1]

वास्तव में मुहावरा शब्द अरबी भाषा का है जो 'हौर' शब्द से बना है। इसका व्युत्पत्तिपरक अर्थ है परस्पर बातचीत करना या एक दूसरे से सवाल जवाब करना। हिन्दी शब्द सागर में मुहावरे का अर्थ इसप्रकार दिया गया है कि मुहावरा लक्षणा या व्यंजना द्वारा सिद्ध वाक्य या वह प्रयोग है जो किसी एक ही बोली या लिखी जानेवाली भाषा में प्रचलित हो और जिसका प्रत्यक्ष अभिधेय अर्थ से विलक्षण हो। किसी एक भाषा में दिखायी पड़नेवाली असाधारण शब्द योजना अथवा प्रयोग मुहावरे के नाम से अभिहित की जा सकती है।

इसप्रकार मुहावरे तथा लोकोक्ति में स्पष्ट अन्तर देख सकता है। दोनों के अध्ययन से ये अन्तर मुख्यतः व्यक्त होता है कि मुहावरे वाक्याँश होते हैं, वाक्य नहीं, इसकी तुलना में कहावतें पूर्ण वाक्यरूप होती हैं।

---

1 कुन्दनलाल उप्रेती लोकसाहित्य के प्रतिमान पृ. सं 206

जो भी हो, किसी भी बोली में जितने अधिक मुहावरे होंगे, वह उतनी ही अधिक सशक्त होगी। मुहावरों अथवा कहावतों का निर्माण साहित्यकारों द्वारा नहीं किया जाता बल्कि जनसाधारण के अनुभव इनकी आधार शिला है।

5.3 पहेलियाँ

प्रकीर्ण साहित्य के अन्तर्गत आनेवाले और एक विधा है पहेलियाँ। मानव अपने जीवन में मनोरंजन के लिए अनेक साधनों को उपयोग में लाता है। पहेलियाँ भी उनमें से एक है। डॉ. कुन्दनलाल उप्रेती के अनुसार "प्रति दिन के व्यवहार में एवं साधारण बैठकों में मानव कभी-कभी यह चाहता है कि उसके कथनों को सर्व साधारण न समझ सकें, तब वह इसप्रकार की भाषा का प्रयोग करता है जो साधारण व्यक्तियों की समझ में नहीं आ सकती। यही पहेली का रूप धारण कर लेती है। वास्तव में मानवजीवन का विकास ही एक पहेली है। आदिम मानव सृष्टि की प्रत्येक वस्तु और मानव का अस्तित्व तक एक पहेली रहा होगा। यह भी कहा जा सकता है कि इन्हीं पहेलियों के समाधान के प्रयत्न में मानव को ज्ञान-विज्ञान की उपलब्धि हुई होगी। ज्ञान-विज्ञान से अर्जित गंभीरता एवं गुरुता को प्रदर्शित करने के लिए मानव ने अपने ही साथियों से अनेक प्रश्न किये होंगे। इन्हीं प्रश्नों को पहेली कहा गया। इसप्रकार मानव की साधारण से साधारण वस्तु तक पहेली के अन्तर्गत आ जाती है। इन्हीं पहेलियों में मानव का चिन्तन और विश्लेषण छिपा हुआ है।"[1] इसप्रकार डॉ कुन्दनलाल उप्रेती ने पहेलियों का स्थान लोकोक्तियों से भी महत्वपूर्ण माना है।

---

1 डॉ. कुन्दनलाल उप्रेती लोकसाहित्य के प्रतिमान पृ. सं. 212

5.3.1 पहेली और बुझौवल

पहेलियों को कुछ आलोचक बुझौवल भी कहा है लेकिन इन दोनों में थोडा सा अंतर है। डॉ. कुन्दनलाल उप्रेती के अनुसार "पहेली और बुझौवल में तात्विक अन्तर है। पहेली में एक मात्र प्रश्न ही रहता है जबकि बुझौवल में प्रश्न के साथ साथ उसके समाधान का भी संकेत रहता है। पहेली अपने आप उपस्थित हो सकती है परन्तु बुझौवल को अपने स्वरूप को स्पष्ट तथा व्यक्त करने के लिए किसी प्रश्नकर्ता या बुझानेवाले की अपेक्षा होती है।"[1]

5.3.2 पहेली और कहावत

पहेलियों तथा कहावतों में स्पष्ट अन्तर है। ब्रज लोकसाहित्य के अध्ययन में डॉ. सत्येन्द्र ने लोकोक्ति का विस्तृत अर्थ बताकर कहावतों और पहेलियों के बीच का अन्तर स्पष्ट किया है। उनके अनुसार "लोकोक्ति केवल कहावत ही नहीं हैं, प्रत्येक प्रकार की उक्ति लोकोक्ति है। इस विस्तृत अर्थ को दृष्टि में रखकर लोकोक्ति के दो प्रकार मांने जा सकते हैं एक पहेली तथा दूसरा कहावतें। 'पहेली' भी लोकोक्ति है। लोक मानस इसके द्वारा अर्थ गौरव की रक्षा करता है और मनोरंजन प्राप्त करता है। यह बुद्धि परीक्षा का भी साधन है। यद्यपि पहेलियाँ स्वभाव से कहावतों की प्रवृत्ति के विपरीत प्रणाली पर रची जाती हैं, क्योंकि पहेलियों में एक वस्तु के लिए बहुत से शब्द प्रयोग में आते हैं, भाव से इसका सम्बन्ध नहीं होता, प्रकृत को गोप्य करने की चेष्टा रहती है, बुद्धि कौशल पर निर्भर करती है जबकि कहावत में सूत्र प्रणाली होती

---

1 डॉ. कुन्दनलाल उप्रेती - लोकसाहित्य के प्रतिमान पृ. सं. 212

है, भाव की मार्मिकता घनीभूत रहती है। लघु प्रयत्न से विस्तृत व्यक्त करने की प्रवृत्ति रहती है, फिर भी पहेलियाँ भी उतनीं ही उक्तियाँ है जितनी कहावतें।"[1]

प्रभाव की दृष्टि से भी इनमें अन्तर मालूम होता है। पहेली तो मनोरंजनप्रधान है तथा कहावतें उपदेशप्रधान है। दोनों ज्ञानवर्धक है लेकिन ज्ञान बढाने की रीति में अन्तर हैं। पहेली विवेचन बुद्धि को बढावा देती है तथा कहावत विवेक बुद्धि को बढावा देता है। पहेलियाँ बुद्धि कौशल पर निर्भर है पर कहावत अनुभव के आधार पर देनेवाला उपदेश है।

मलयालम में डॉ. एम.वी. विष्णुनंबूतिरि ने कहावत, मुहावरा, लोकोक्ति तथा पहेली को वाणीविनोद या भाषा विनोद कहा है। उनके अनुसार "समाज में इनका महत्वपूर्ण स्थान है। इनका शिक्षा सम्बन्धी मूल्य ही मुख्य है, विशेषकर पहेलियाँ समाज तथा भाषा में बहुत अधिक प्रभाव डालती है।"[2]

प्रकीर्ण साहित्य का लोक सुभाषित लोक कथाओं तथा लोकगीतों की अपेक्षा लोक में प्रचलित होने के लिए अधिक समय लेते है क्योंकि लोकमानस उन्हें अपनाने के लिए जल्दबाज़ी का आश्रय नहीं लेता। साथ ही इनके प्रचार प्रसार में लोकमानस की रुचि का होना आवश्यक है। एक बार प्रचलित हो जाने पर वे स्थायी हो जाते हैं और भाषा का अभिन्न अंग बन जाते हैं।

इसप्रकार भाषा को सशक्त बनाने में लोकोक्तियों, मुहावरों तथा पहेलियों का महत्वपूर्ण योगदान हैं। लोकोक्तियों, मुहावरों तथा कहावतों की

---

1 डॉ सत्येन्द्र ब्रजलोकसाहित्य का अध्ययन - पृ. सं 519, 520

2. डॉ एम.वी विष्णु नंबूतिरी नाडन् कळिकळुम् विनोदङ्ङळुम् पृ सं. 70

तुलना में पहेलियों की विशिष्टता यह है कि यह बुद्धि परीक्षा का उपकरण है तथा मनोरंजन प्रधान हैं। अन्य विधाओं में उपदेशात्मकता अधिक है। प्रकीर्ण साहित्य के अन्तर्गत आनेवाले सभी विधाएँ बडों तथा बच्चों को एक समान आवश्यक सिद्‌ध हुआ है लेकिन पहेलियाँ ही बच्चों को अधिक पसन्द हैं। मुहावरे, कहावत तथा लोकोक्तियों का प्रयोग बच्चों को सही रास्ते पर लाने के लिए किया जाता है तो पहेलियाँ मनोरंजन के साथ साथ उनके बुद्धि विकास का कार्य करती हैं। पहेलियाँ बूझना बच्चों का प्रिय खेल हैं। इसलिए बालसाहित्य के सन्दर्भ में पहेलियाँ अधिक महत्वपूर्ण हैं। डॉ. हरिकृष्ण देवसरे ने बाल लोकसाहित्य पर विचार करते समय कहानियाँ, गीत तथा लोरियों के समान पहेलियों को भी महत्वपूर्ण स्थान दिया है।

5.3.3 पहेलियों की उत्पत्ति एवं परंपरा

पहेली का अर्थ विषम अवस्था या उलझन हैं। संस्कृत में इसे प्रहेलिका कहते हैं। अन्य भाषाओं में पहेली इसप्रकार जाना जाता है - भोजपुरी में 'बुझौवल' निमाडी में 'ताडनू की वार्ता' अर्थात् 'पूछने की बात' मालवी में 'प्याली' या 'पारसी' किन्नर बोली में 'स्यानो' चीढी (शास्त्रङ) या 'तूझगे की कौथा' कहते हैं। अंग्रेज़ी में इसे 'रिडिल्स' कहते हैं। मलयालम में पहेलियों के लिए 'कडम्कथा' कहते हैं।

पहेली की उत्पत्ति के बारे में लोकसाहित्य के आलोचकों ने अपना मत प्रकट किया है। फ्रेज़र के शब्दों को उद्‌धृत करते हुए डॉ कुन्दनलाल उप्रेती ने पहेलियों के उद्‌भव के बारे में लिखा है कि पहेलियों का उदय उस

समय हुआ होगा जब किन्हीं कारणों से वक्ता को किसी बात को स्पष्ट शब्दों में कहने में किसी प्रकार की अटचन हुई होगी।"[1] किसी व्यक्ति की बुद्धि परीक्षा के लिए भी पहेलियों का प्रयोग किया जाता है। डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय के अनुसार "भारतवर्ष के मूल निवासियों में मध्यप्रदेश के मंडला जिले के गोंड, प्रधान तथा बिरहौर जातियों में विवाह के समय जब वर वैवाहिक विधि के पश्चात् 'कोहवर' में प्रवेश करने लगता है तब घर की स्त्रीयाँ उससे पहेलियाँ पूछती है जिन्हें 'छेंका' कहा जाता है। इन पहेलियों का उत्तर देने पर ही वर 'कोहबर' में प्रवेश कर सकता है अन्यथा नही। यह प्रथा संभवतः वर की विद्वता और बुद्धि की परीक्षा लेने के लिए ही की जाती है।"[2]

लोकसाहित्य और संस्कृति में दिनेश्वर प्रसाद ने पहेली को लोकमानस की एक पुरातन अभिव्यक्ति माना है। उनके अनुसार ये उतनी पुरातन नहीं जितनी कि लोककथा और लोकगीत क्योंकि इसमें मानव बुद्धि का अपेक्षाकृत अधिक विकसित और जटिल उपयोग मिलता है। संभव है कि एक विधा के रूप में यह सुदूर अतीत में किसी प्रतिभाशाली व्यक्ति द्वारा उद्भावित हुई हो, किन्तु इससे कहीं अधिक संभव यह है कि यह किसी प्रदेश के लोकसाहित्य की शैलीगत प्रवृत्ति या कथन प्रकार हो जिसे व्यक्ति या व्यक्तियों के एक रचनात्मक समुदाय ने लोकजीवन की किन्हीं गहरी आवश्यकताओं से प्रेरित होकर एक नयी विधा का रूप प्रदान किया है। वस्तुतः संस्कृति के इतिहास में

---

1 डॉ कुन्दनलाल उप्रेती लोकसाहित्य के प्रतिमान पृ. सं 212

2. डॉ कृष्णदेव उपाध्याय लोकसाहित्य की भूमिका पृ. सं 206

जिसे नया कहा जाता है, वह अभूतपूर्व और आकस्मिक न होकर रचनात्मक व्यक्तित्व या व्यक्तित्वों द्वारा पूर्ववर्ती रचनाओं का विकास मात्र है।"[1]

त्रिलोचन पाण्डेय के अनुसार "पहेलियाँ मानवजाति की आरंभिक अवस्था में उत्पन्न हुई जिनमें गोपनीयता, सांकेतिकता और प्रतीकात्मकता की प्रवृत्ति लक्षित होती है।"[2]

डॉ राजेन्द्रसिंह ने "हिन्दी पहेलियों का सांस्कृतिक अध्ययन में पहेली के उद्भव के कारण के रूप में मानवीय सभ्यता के मूल उत्सों मनुष्य जीवन के आत्यन्तिक प्रयोजनों और लोकमानस के गह्वरों में स्थित तत्व को मानते हैं।"[3]

श्री सौभाग्य सिंह शेखावत भी पहेलियों के उद्भव में इस गोपनीयता को मानते हुए लिखा है कि "पहेलियों का जन्म कब और क्यों हुआ? यह बता पाना सहज कार्य नहीं हैं, पर प्रत्येक कार्य के अधिकार के मूल में कोई न कोई कारण तो अवश्य होता है। पहेलियों पर इस दृष्टि से विचार करते हैं तो लगता है कि इनके उद्घाटन में गुप्तता का भाव व्यापक रहा है। गोपनीय बात अथवा कथन को असम्बन्धित व्यक्ति न जान लें कि भाव के साथ-गोपनीय की गोपनीयता बनाये रखने में पहेलियों की सार्थकता मानी जा सकती हैं।"[4]

---

1 दिनेश्वर प्रसाद - लोकसाहित्य और संस्कृति - पृ. सं 121
2. त्रिलोचन पाण्डेय कुमाऊँ लोकसाहित्य का अध्ययन पृ सं. 27
3. डॉ राजेन्द्र सिंह हिन्दी पहेलियों का सांस्कृतिक अध्ययन - पृ सं 44
4. श्री सौभाग्य सिंह शेखावत राजस्थानी पहेलियाँ और दृष्टिकूट पृ. सं. 21 22

मलयालम में भी श्री एम.वी. विष्णु नंबूतिरी जैसे आलोचकों ने भी पहेली के उद्भव का कारण मानव की गोपनीयता की प्रवृत्ति ही मान लिया है। आवश्यकताओं से प्रेरित होकर भी लोग पहेली की ओर उन्मुख हो गये होंगे। कई अवसरों में शारीरिक क्षमता के अलावा बुद्धि परीक्षण की भी ज़रूरत होती तो इसके लिए पहेलियों का प्रयोग किया जाता था। भारत के विभिन्न प्रदेशों में इसप्रकार पहेलियाँ पूछकर बुद्धि परीक्षण करने की अनेक कहानियाँ प्रचलित हैं। अनेक ऐसे राजा है जिन्होंने अपनी पुत्री के लिए वर ढूँढते समय बुद्धि परीक्षा के लिए पहेलियों का प्रयोग किया है।

संस्कृत में भी अनेक ऐसे प्रतिपाद्य हैं जहाँ पहेली या प्रहेलिका पूछकर बुद्धिपरीक्षा किया गया है। लोकजीवन में ही नहीं बलिक संस्कृत साहित्य के सामाजिक जीवन में पहेली अभिजात्य गोष्ठियों में मनोरंजन के साथ विविध गोष्ठियों में विद्वतापूर्ण संभाषण के लिए व्यवस्था हुई है। वैदिक ग्रन्थों में बाइबिल में और महाभारत के यक्ष और युधिष्ठिर के बीच के संवादों में पहेलियाँ प्रयुक्त हुई हैं।

इसप्रकार अधिकाँश विद्वानों की राय में पहेलियों का उद्भव लोकमानस में लोक कथाओं और लोकगीतों की भाँति ही हुआ होगा। इसके उद्भव के पीछे मानव मन की गोपनीयता की प्रवृत्ति ही है। जो भी हो पहेलियाँ बुझाने की परंपरा आज भी कायम है। ये आज भी लोगों को विशेषकर बच्चों को पसन्द है।

---

1 डॉ. एम.वी. विष्णु नंबूतिरी नाडन् कळिकळुम् विनोदङ्ङळुम् पृ. सं 70

5.3.4 पहेलियाँ स्वरूप एवं परिभाषा

पहेलियाँ मनोरंजन की सामग्री है साथ ही साथ बौद्धिक व्यायाम भी हैं। पहेलियाँ उतनी ही पुरानी है जितनी मानव सभ्यता डॉ. कुसुम डेंभाल की राय में "सभ्यता के विकास के साथ-साथ मनुष्य में प्रकृति और संसार के विभिन्न तत्वों को जानने की जिज्ञासा बलवत्ती हो गयी और आज भी अपनी उसी रूप में है। इन चीज़ों के बारे में एक दूसरे को बताने और उनके बारे में ज्ञान प्राप्त करने का माध्यम भी पहेलियाँ ही रही हैं। समझ में न आनेवाली बात के लिए इसलिए कहा जाता है कि पहेलियाँ बूझा रहे हो। वास्तव में ये पहेलियाँ अभिव्यक्ति का माध्यम भी रही हैं। जिन वस्तुओं के गुण, नाम आदि से कोई परिचित नहीं है, वह निश्चय ही उसके आकार या रंग की बात कहकर जानना चाहेगा कि वह क्या है। बस जिज्ञासा की इसी प्रक्रिया का नाम पहेलियाँ पड़ गया है।"[1]

डॉ सत्या गुप्ता के अनुसार "पहेलियों में एक शब्द चित्र होता है। प्रश्नकर्ता उस चित्र को उपस्थित करके अर्थात् पूर्व पक्ष की स्थापना करके अपने प्रतिपक्षी से उस चित्र के उत्तर की अपेक्षा करता है। पहेलियों में छिपाने की प्रवृत्ति रहती है जिससे बुद्धि कौशल के द्वारा ही उनके मर्म को जाना जा सके।"[2]

'लोकसाहित्य की भूमिका' में डॉ कृष्णदेव उपाध्याय ने प्रकीर्ण साहित्य के अन्तर्गत लोकोक्तियाँ, मुहावरे, पहेलियाँ, सूक्तियाँ, पालने के गीत

---

1 डॉ कुसुम डोंभाल हिन्दी बालकाव्य में प्रतीक एवं कल्पना तत्व पृ सं 80

2. डॉ सत्यागुप्ता खडीबोली का लोकसाहित्य पृ. सं. 271

तथा खेल के गीत आदि को रखा है। लोकसंस्कृति की रूपरेखा में उन्होंने पहेलियों को लोकसुभाषित की दूसरी विधा माना है। उनके अनुसार 'मानवप्रवृत्ति रहस्यात्मक है। जब वह चाहता है कि उसके कथन के अभिप्राय को साधारण लोग न समझ सकें तब वह ऐसी भाषा का प्रयोग करता है जो सामान्य बुद्धि के परे हो। यह पहेली का रूप धारण कर लेती है।"[1]

डॉ. विजयलक्ष्मी सिन्हा के अनुसार "पहेलियाँ हमारे समाज में किसी न किसीरूप में व हर भाषा में उपलब्ध हैं, जो मानव मस्तिष्क की उस विधा की ओर संकेत करती हैं, जिसे मनोवैज्ञानिक भाषा में बिम्बनिर्माण कहते हैं। अर्थात् मनुष्य हर वस्तु की एक विशेष इमेज के आधार पर ढेर सारी वस्तुओं में से उस विशेष वस्तु को पहचान लेता है। पहेलियाँ यथार्थ में किसी वस्तु का वर्णन है। यह ऐसा वर्णन है जिसमें अप्रकृत के द्वारा प्रकृत का संकेत होता है। अप्रकृत इन पहेलियों में बहुधा वस्तु उपमान के रूप में आता है।"[2]

पं रामनरेश त्रिपाठी की राय में "पहेलियाँ बुद्धि पर शान चढाने का यंत्र है। ये स्मरण शक्ति और वस्तु ज्ञान बढाने की कला है।'[3] श्री दिनेश्वर प्रसाद पहेलियों को लोककविता का ही एक अंग मानते हैं। इसलिए इसमें तुक, अन्तः तुक और यति जैसी वे सभी युक्तियाँ मिलती हैं जिनका उपयोग लोककविता करती हैं।"[4]

---

1 डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय - लोकसंस्कृति की रूपरेखा - पृ. सं 300

2. डॉ विजयलक्ष्मी सिन्हा - आधुनिक हिन्दी में बालसाहित्य का विकास पृ सं. 257

3. पं. रामनरेश त्रिपाठी - ग्राम साहित्य, तीसरा भाग - पृ. सं. 290

4. दिनेश्वर प्रसाद पहेली एक रूपात्मक और सांस्कृतिक परिचय पृ. सं. 122

किन्नर की पहेलियों पर विचार करते समय डॉ बंशीराम शर्मा ने "पहेलियों को बुद्धि चातुर्य की विशेष उपलब्धि माना है। इस प्रति-दिन जिन वस्तुओं को देखते हैं उनके नामों से उन्हें जानने के यत्न भी करते हैं। परन्तु पहेली अथवा प्रहेलिका में किसी साधारण बात को इस ढंग से पूछा जाता है कि श्रोता अथवा पाठक के मस्तिष्क पर दबाव पड़ता है और गणित के प्रश्न की भाँति उसका उत्तर ढूँढने के लिए वह अपनी ज्ञान-चक्षुओं को खोल कर शीघ्रति शीघ्र समाधान प्राप्त करने की चेष्टा करते हैं।"[1]

डॉ. सन्तराम अनिल की राय में "पहेलियों में ज्ञानतत्व की अधिकता है तथा पहेलियों के स्वरूप को, विश्लेषण करते समय उनकी मनोरंजकता, चमत्कारिता और सर्वग्राह्यता को विस्मृत नहीं किया जा सकता। पहेलियों के वर्ण्य विषय में भी पर्याप्त विविधता और व्यापकता होती है। लोकजीवन की अनुभूति और कल्पना की सूक्ष्मातिसूक्ष्म अभिव्यक्ति इन्में सूत्र शैली में होती है। इनमें वस्तुओं का सांकेतिक चित्र प्रस्तुत किया जाता है - कुछ स्पष्ट और कुछ अस्पष्ट। इनमें अप्रस्तुत द्वारा प्रस्तुत का संकेत किया जाता है। समस्त अप्रस्तुत योजना की आधारशिला चिरपरिचित एवं अनुभूति लोक-जीवन पर रखी जाती है, समस्त उपमान ग्रामीण वातावरण से ही ग्रहण करते हैं।"[2]

मालवी लोकसाहित्य के अध्ययन के वक्त डॉ श्याम परमार ने 'लोकोक्ति साहित्य की भूमिका' में पहेलियों को लोकोक्ति साहित्य का अंग ही

---

1 डॉ बंशीराम शर्मा - किन्नर लोकसाहित्य - पृ सं 154

2. डॉ सन्तराम अनिल कन्नौजी लोकसाहित्य - पृ सं 218, 219

माना है, क्योंकि लोकोक्तियों में शब्दसंकोंच द्वारा अर्थविस्तार का जो तत्व निहित है, वह पहेली में विद्यमान है। पहेली द्वारा गोप्य वस्तु के सम्बन्ध में कतिपय लाक्षणिक संकेत दिये जाते हैं। रूप, रंग, गुण और आकार-प्रकार भी सांकेतिक रूप में व्यक्त किये जाते हैं। उन्हें ही आधार मानकर इसका उत्तर दिया जाता है।[1]

डॉ सत्येन्द्र के अनुसार "पहेलियाँ यथार्थ में किसी वस्तु का वर्णन है जिसमें अप्रकृत के द्वारा प्रकृत का संकेत होता है। अप्रकृत इन पहेलियों में बहुधा 'वस्तु-उपमान' के रूप में आता है। पहेलियाँ एकप्रकार से वस्तु को सुझानेवाले उपमानों से निर्मित शब्द चित्रावली है, जिसमें चित्र प्रस्तुत करके यह पूछा जाता है कि यह किसका चित्र है। पर इससे यह न समझना चाहिए कि उपमानों के द्वारा यह चित्र पूर्ण होता है। उपमानों द्वारा जो चित्र निर्मित होता है, उससे अभिप्रेत वस्तु का बहुत अधूरा संकेत मिलता है, पर वह संकेत इतना निश्चित होता है कि यथासंभव उससे किसी अन्य वस्तु का बोध नहीं हो सकता।"[2]

डॉ विद्या चौहान ने पहेलियों को मानवहृदय की भावनाओं की प्रेरणा मानी है। उनके अनुसार "मानव हृदय अनन्त भावनाओं का स्त्रोत है। इन अनन्त भावनाओं में बहुत सी प्रकार की भावनाएँ होती है, जो सार्वजनिक हो सकती हैं जिनकी अभिव्यक्ति उन्मुक्त रूप से की जा सकती है और बहुत सी

---

1 डॉ श्याम परमार - मालवी लोकसाहित्य - पृ सं. 19

2. डॉ सत्येन्द्र - लोकसाहित्यविज्ञान - पृ. सं. 462, 463

ऐसी भावनाएँ भी होती है जिनकी अभिव्यक्ति सबके समक्ष नहीं की जा सकती, यहीं पर मनुष्य में गोपनीय की प्रकृति जन्म लेती हैं। ऐसी स्थिति में मनुष्य निर्दिष्ट व्यक्ति तक अपनी भावना को प्रेरित करने के लिए गुप्त साधनों का प्रयोग करता है। 'पहेली' वाणी का वह दुरूह व्यापार है जिसमें मनुष्य की गोपनीयता की प्रवृत्ति अन्तर्भूत है। प्रारंभ में पहेली का जन्म मनुष्य की इसी स्वाभाविक गोपनीयता की आवश्यकतावश हुआ होगा, पर आगे चलकर यह बौद्धिक माप का मनोरंजक पैमाना बन गयी।"[1]

'अवधि लोकसाहित्य' में श्री सत्यव्रत अवस्थी ने पहेलियों को बुद्धि वैभव की सुन्दर अभिव्यक्तियाँ मानी हैं। उनके अनुसार "पहेली ऐसा वाक्य है जो लोक-मानस में शताब्दियों से अपने अर्थ की व्यंजना करता हुआ भी, आज भी मात्र पहेली है। पहेली में उर्वर मस्तिष्क का एक विलास पाया जाता है। जो मस्तिष्क जितना ही कल्पनापरक होता है उतना ही अधिक वह अपनी पहेलियों में चारुता एवं वैलक्षण्य की सृष्टि कर सकता है, और साथ ही इन पहेलियों में मानव मन की सुरुचि का भी परिचय प्राप्त होता है। जटिलता के साथ एवं अह्लादपूर्ण प्रसाधन ही पहेली की चारुता है।"[2]

मलयालम के सुप्रसिद्ध महाकवि उळ्ळूर के अनुसार "पहेलियाँ मनोरंजन के साथ-साथ बौद्धिक विकास देनेवाला विनोद है।"[3]

---

1 डॉ. विद्या चौहान - लोकसाहित्य - पृ. सं 34, 35

2. श्री सत्यवत अवस्थी - अवधी का लोकसाहित्य पृ. सं 117

3. उळ्ळूर केरळसाहित्य चरित्रम् पहला भाग पृ. सं 503

डॉ एम.वी. विष्णु नंबूतिरी के अनुसार "मनोरंजनप्रधान साहित्यिक रूपों में एक है पहेलियाँ। पहेलियाँ मन को उल्लास तथा मनोरंजन देती है और बुद्धि को तीक्ष्ण बनाती हैं।"[1]

'इंडियन फोकलोर' नामक पत्रिका में वेलच्चुरु नारायण रावु ने "पहेलियों को एक प्रकार का गूढार्थवाक्य बताया है जो जल्दी जवाब न मिलनेवाला तथा सोचकर सूक्ष्मार्थ ग्रहण करने योग्य प्रश्न है।"[2]

पी. के परमेश्वरन् नायर के अनुसार "सामान्य बोलचाल की भाषा का सूत्रबद्ध रूप है पहेलियाँ तथा कहावतें।"[3]

इन आलोचकों की परिभाषाओं का अध्ययन करने से निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि पहेलियाँ बुद्धि मापने का एक साधन है। इसकी मूलप्रवृत्ति गोपनीयता है जो मानवस्वभाव का एक अंग है। इस गोपनीयता की प्रवृत्ति की अभिव्यक्ति ही पहेलियों का रूप धारण करके बाहर आता है। पहेलियाँ एक साथ मनोरंजक तथा ज्ञान प्रदान करने का माध्यम हैं।

5.3.5 पहेलियों का वर्गीकरण

पहेलियाँ अधिकतर अलिखित रूप में ही प्राप्त हैं। इनके अध्ययन तथा संकलन ज़्यादातर नहीं हुआ है। लोकसाहित्य के सन्दर्भ में ही अधिकतर अध्ययन हुआ है तथा पहेलियों का वर्गीकरण भी हुआ है।

---

1 डॉ एम.वी. विष्णु नंबूतिरी - नाडन् कळिकळुम् विनोदङ्ङळुम् पृ. सं 70, 71

2. इंडियन फोकलोर प्रोवर्बस आण्ड रिडिल्स - पृ. सं. 29

3. पी. के. परमेश्वरन नायर - मलयालसाहित्य चरित्रम - पृ. सं. 13

लोकसाहित्य की भूमिका में डॉ कृष्णदेव उपाध्याय[1] ने पहेलियों को सात भागों में विभक्त किया है। वे हैं -

1) खेती सम्बन्धी पहेलियाँ

2) भोज्य पदार्थ सम्बन्धी पहेलियाँ

3) घरेलू वस्तु सम्बन्धी पहेलियाँ

4) प्रकृति सम्बन्धी पहेलियाँ

5) अंग-प्रत्यंग सम्बन्धी पहेलियाँ

6) प्राणी सम्बन्धी पहेलियाँ तथा

7) अन्य पहेलियाँ।

डॉ. सत्येन्द्र[2] ने ब्रज में प्राप्त पहेलियों के आधार पर पहेलियों का वर्गीकरण साधारणतः सात भागों में विभक्त किया है :-

1) खेती सम्बन्धी

2) भोजन सम्बन्धी

3) धरेलू वस्तु सम्बन्धी

4) प्राणी सम्बन्धी

5) प्रकृति सम्बन्धी

6) शरीर सम्बन्धी तथा

7) अन्य।

---

1 कृष्णदेव उपाध्याय - लोकसाहित्य की भूमिका - पृ 211

2. डॉ सत्येन्द्र लोकसाहित्यविज्ञान - पृ सं 463

डॉ. सत्यागुप्ता[1] ने पहेलियों का वर्गीकरण इसप्रकार किया है:-

1) शरीर सम्बन्धी
2) जीव सम्बन्धी
3) प्रकृति सम्बन्धी
4) खान-पान सम्बन्धी
5) प्रकीर्ण (दैनिक व्यवहार में आनेवाली)

नागपुरी पहेलियों को आधारित करके डॉ भुवनेश्वर अनुज[2] ने नागपुरी पहेलियों का वर्गीकरण इसप्रकार किया है :-

1) घरेलू वस्तु सम्बन्धी (भोजन सम्बन्धी वस्तु को भी इसी के अन्तर्गत लाया जा सकता हैं।)
2) व्यवसाय सम्बन्धी (इसके अन्तर्गत कृषि, उद्योग, तथा व्यापार से सम्बन्धित पहेलियाँ आता हैं।)
3) शरीर सम्बन्धी
4) प्राणी सम्बन्धी
5) प्रकृति सम्बन्धी
6) ऐसी अनेक पहेलियाँ है जिन्हें वर्गों में विभाजित नहीं किया जा सकता।
7) अन्यान्य।

---

1 डॉ. सत्यागुप्ता - खडीबोली का लोकसाहित्य - पृ. सं. 280

2. डॉ भुवनेश्वर अनुज - नागपुरी लोकसाहित्य - पृ. सं. 175

किन्नर पहेलियों के आधार पर डॉ. बंशीराम शर्मा[1] ने पहेलियों को निम्न वर्गों में विभक्त किया है :-

1) वस्तु सम्बन्धी

2) जीव सम्बन्धी

3) फल सम्बन्धी

4) घर सम्बन्धी

5) प्रकृति सम्बन्धी।

पं रामनरेश त्रिपाठी[2] के अनुसार पहेलियाँ बारह प्रकार है जो इसप्रकार है :-

1) आकाश और समय

2) आग 3) पानी

4) पशु पक्षी एवं जीव जन्तु

5) अन्न फल-फूल एवं पेड़-पौधे

6) शरीर 7) कुटुम्ब 8) व्यवसाय 9) आहार

10) घर-गृहस्थी की वस्तु 11) गणित तथा

12) विविध।

---

1. डॉ. बंशीराम शर्मा - किन्नर लोकसाहित्य - पृ. सं. 152
2. डॉ. रामनरेश त्रिपाठी - ग्रामसाहित्य, तीसरा भाग पृ. सं 292

कुमाऊं से प्राप्त पहेलियों को डॉ त्रिलोचन[1] पण्डेय ने सात वर्गों में बाँटा है जो इसप्रकार है :-

1) भोजन-पदार्थ सम्बन्धी

2) घरेलू-वस्तु सम्बन्धी

3) प्राणी सम्बन्धी

4) प्रकृति सम्बन्धी

5) अंग-प्रत्यंग सम्बन्धी

6) कृषि सम्बन्धी तथा

7) प्रकीर्ण

डॉ सत्येन्द्र से प्रभावित होकर डॉ. कुन्दनलाल उप्रेती[2] ने पहेलियों का वर्गीकरण यों किया है :-

1) घरेलू वस्तु सम्बन्धी

2) व्यवसाय सम्बन्धी

3) प्राणी सम्बन्धी

4) प्रकृति सम्बन्धी

5) शरीर सम्बन्धी तथा

6) अन्य।

---

1 डॉ. त्रिलोचन पाण्डेय कुमाऊं का लोकसाहित्य पृ सं 259

2. डॉ कुन्दनलाल उप्रेती लोक साहित्य का प्रतिमान पृ सं 216

लोकसाहित्य और संस्कृति में डॉ. दिनेश्वर प्रसाद[1] ने पहेलियों को दो भागों में विभक्त किया है 1) एक शब्दात्मक और 2) अनेक वाक्यात्मक। "एक शब्दात्मक पहेलियाँ केवल आफ्रिकी भाषाओं में मिलती हैं। उदाहरण के लिए 'अगण्य' पहेलियों के अन्तर्गत दो वाक्यों की पहेलियों से लेकर पहेली गीत और पहेली कथा तक सम्मिलित हैं। अन्य आलोचकों की तुलना में यह वर्गीकरण विषय के आधार पर नहीं बल्कि शब्द संयोजन की दृष्टि से है। उन्होंने संरचनात्मक धरातल पर पहेलियों को चार भागों में विभक्त किया है - मुख-बंध, विषय का विवरण, उस विवरण से असंगति रखनेवाला या उस विषय की पहचान को दुरूह बनाने वाले उल्लेख-भाग और समापन वाक्य या वाक्यांश।"[2]

अवधी का लोकसाहित्य[3] में पहेलियों को पाँच प्रकार से वर्गीकरण किया है :-

1) प्रकृति सम्बन्धी

2) कृषि सम्बन्धी

3) धरेलू

4) खानपान सम्बन्धी तथा

5) विविध विषय सन्बन्धी।

राजस्थानी पहेलियों को आधार बनाकर श्री सौभाग्य सींह शेखावत[4] ने पहेलियों को मोटे रूप में विषय की दृष्टि से तेरह वर्गों में विभक्त किया है :-

---

1 दिनेश्वर प्रसाद लोकसाहित्य और संस्कृति - पृ सं 124

2. वही पृ सं 125

3. देवी शंकर अवस्थी - अवधी का लोकसाहित्य पृ. सं. 12

4. सौभाग्य सिंह शेखावत राजस्थानी पहेलियाँ और दृष्टिकूट निबंध पृ. सं. 87

1) प्रकृति सम्बन्धी

2) जीव सम्बन्धी

3) शरीर सम्बन्धी

4) आभूषण, श्रृंगार और परिधान सम्बन्धी

5) मनोरंजन और उसके उपकरण सम्बन्धी

6) घर-गृहस्थी की वस्तु सम्बन्धी

7) भोज्य पदार्थ सम्बन्धी

8) खेती बाड़ी सम्बन्धी

9) उद्योग-धन्धों सम्बन्धी

10) सामाजिक रिश्ते नाते सम्बन्धी

11) अस्त्र-शस्त्रों सम्बन्धी

12) देवी-देवताओं सम्बन्धी तथा

13) शकुन, ज्योतिष्, ज्ञान-मन सम्बन्धी।

डॉ श्रीधर मिश्र[1] ने भोजपुरी पहेलियों के सन्दर्भ में पहेलियों को नौ भागों में रखा है, वे हैं :-

1) घरेलू वस्तु सम्बन्धी पहेलियाँ

2) भोज्य-पदार्थ सम्बन्धी पहेलियाँ

3) खेती सम्बन्धी पहेलियाँ

---

1 भोजपुरी पहेलियाँ डॉ श्रीधर मिश्र - पृ. सं 9

4) प्रकृति तथा प्राकृतिक वस्तु सम्बन्धी पहेलियाँ

5) प्राणी सम्बन्धी पहेलियाँ

6) पौराणिक कथा सम्बन्धी पहेलियाँ

7) अंग-प्रत्यंग तथा श्रृंगार सम्बन्धी पहेलियाँ

8) हिसाब सम्बन्धी पहेली अथवा 'बइठावक' तथा

9) प्रकीर्ण पहेलियाँ।

डॉ. शंकर लाल यादव[1] के अनुसार पहेलियाँ आठ प्रकार की है :-

1) खेती सम्बन्धी

2) भोजन सम्बन्धी

3) घरेलू वस्तु सम्बन्धी

4) प्राणी सम्बन्धी

5) प्रकृति सम्बन्धी

6) अंग-प्रत्यंग सम्बन्धी

7) पौराणिक कथा सम्बन्धी तथा

8) अन्य।

मलयालम में भी डॉ एम.वी.'विष्णु नंबूतिरी[2] जैसे आलोचकों ने विषय के आधार पर पहेलियों को खेती सम्बन्धी पहेलियाँ, प्राणी सम्बन्धी

---

1 डॉ. शंकरलाल यादव हरियाणा प्रदेश का लोक साहित्य - पृ. सं 436-443

2. डॉ एम.वी. विष्णु नंबूतिरी कडम्कथकळ् ओरु पठनम् - पृ. सं. 33

पहेलियाँ, घरेलू वस्तु सम्बन्धी पहेलियाँ, शरीर सम्बन्धी पहेलियाँ प्रकृति सम्बन्धी पहेलियाँ, अन्य पहेलियाँ आदि छह वर्गों में ही विभक्त किया हैं।

बालसाहित्य के सन्दर्भ में डॉ. हरिकृष्ण देवसरे[1] जैसे आलोचकों ने पहेलियों का वर्गीकरण प्रस्तुत किया है। उनके अनुसार पहेलियाँ कई तरह की होती हैं। इनके प्रमुख भेद हैं, गुण, रूप, रंग, आकार, उपयोग और स्वभाव, समान ध्वनिवाले शब्द, गणित, शब्द प्रयोगवाली पहेलियाँ आदि।

डॉ कुसुम डोंभाल[2] ने विषय के आधार पर बालपहेलियों का वर्गीकरण इसप्रकार किया हैं :-

1) साहित्यिक सौन्दर्य युक्त पहेलियाँ :-

इस प्रकार की पहेलियाँ, विशुद्ध गणितात्मक नहीं होती हैं। इनमें काव्यात्मकता होती है। उदा :-

एक थाल मोती से भरा, सबके सिर पर
औंधा धरा,
चारों ओर वह थाल फिरे,
मोती उससे एक न गिरे। (उत्तर आकाश)

2) रूप, गुण, आकार पर आधारित पहेलियाँ :-

इस प्रकार की पहेलियों में नित्य जीवन की साधारण वस्तुओं के रूप, आकार, स्वभाव या गुण को ऐसे सांकेतिक शब्दों में बाँधकर प्रस्तुत किये

---

1 डॉ हरिकृष्ण देवसरे - हिन्दी बालसाहित्य एक अध्ययन - पृ सं 397-398
2. डॉ. कुसुम डोंभाल - हिन्दी बालकाव्य में प्रतीक एवं कल्पना तत्व पृ सं 80-84

जाते हैं जो उसकी मुख्य विशेषता की ओर संकेत तो करते हैं, पर शीघ्रता करने पर या ध्यान एवं सतर्कता से न सोचने पर वे गुण अन्य वस्तुओं में दिखायी देने लगते हैं और पहेली बूझनेवाला सही उत्तर पर पहूँचकर भी भडक जाता है। यों सही उत्तर बता देने के बाद भी जब तक पहेली बुझानेवाला हाँ नहीं कर देता, उत्तर की सत्यता में सन्देह ही बना रहता है। जैसे :-

एक खेत में ऐसा उग्गां
आधा बगला आधा सुग्गां (तोता)

3) शाब्दिक पहेलियाँ :-

इसमें शब्दों का खेल रहता है।

उदा :- *आलू में भी भालू में भी और*
तुम्हारे तालू में भी,
गरम हवा का सदा निवास, बूझो
तो हो जाओगे पास।
(उत्तर लू)

4) विचार प्रेरक पहेलियाँ :-

ये पहेलियाँ बच्चों को सोचने को बाध्य कर देती हैं। उनमें न तो किसी वस्तु के रूप, गुण, आकार, स्वभाव का स्पष्ट वर्णन रहता है, न ही शाब्दिक जाल।

उदा :- *बाबा कहने से मिल जाऊँ*

काका कहने से पास न आऊँ।

उत्तर :- होंठ, बार-बार बाबा, काका कहें और विचारें तो समझ में आ जाता है कि ऐसा होंठ ही कर सकता है।

5) स्वयं संकेदात्री पहेलियाँ :-

इसमें कुछ शब्द ही या तो उत्तर होते है या उत्तर की ओर निश्चयात्मक संकेत करते हैं। जैसे -

बीसों का सर काट लिया

ना मारा ना खून किया।

(उत्तर नाखून)

6 संख्यात्मक पहेलियाँ :-

यह पहेलियाँ गणित की संख्याओं को आधार बनाकर लिखी गयी होती है।

उदा :- *एक सन्दूक में बारह खाने*

हर खाने में तीस तीस दाने।

(उत्तर वर्ष)

इसप्रकार अनेक विद्वानों ने पहिलोयों का वर्गीकरण प्रस्तुत किया है। पहेलियों का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है इसलिए इसके विभाजन की कोई स्पष्ट रेखा खींचना बहुत ही मुश्किल हैं। दुनिया की सभी चीज़ें पहेली का

विषय रहा है। मानवसंस्कृति के आरंभ के साथ पहेलियाँ भी बनी और आज भी बन रही है। उन्होंने अध्ययन की सुविधा के लिए पहेलियों को मोटे रूप में विभक्त किया है। इन वर्गीकरणों के अध्ययन से पता चलता है कि इनमें अधिकाँश वर्गीकरण सामान्यतः समान तौर पर किया गया है। पं. रामनरेश त्रिपाठी जैसे कुछ आलोचकों के वर्गीकरण में ही थोडा सा अन्तर है। इनमें अधिकाँश विद्वानों ने पहेलियों के वर्गीकरण में खेती सम्बन्धी पहेलियाँ, भोज्य पदार्थ सम्बन्धी पहेलियाँ, प्रकृति सम्बन्धी पहेलियाँ, घरेलू वस्तु सम्बन्धी पहेलियाँ, प्राणी सम्बन्धी पहेलियाँ, अंग-प्रत्यंग सम्बन्धी पहेलियाँ तथा अन्य पहेलियाँ का वर्गीकरण समान रूप से किया है। बच्चों पर पडनेवाले प्रभाव की दृष्टि से यह वर्गीकरण उचित ही है, पर यह उतना बालमनोनुकूल नहीं लगता है। इसलिए बच्चों की पसन्द की दृष्टि से पहेलियों का वर्गीकरण यों किया जा सकता है :-

1) पशु-पक्षी तथा जीव जन्तुओं सम्बन्धी पहेलियाँ

2) फल-फूल एवं पेड-पौधों से सम्बन्धी पहेलियाँ

3) प्रकृति तथा प्राकृतिक घटनाएँ सम्बन्धी पहेलियाँ

4) शरीर एवं आहार सम्बन्धी पहेलियाँ

5) घर-गृहस्थी, खिलौने सम्बन्धी पहेलियाँ

6) विज्ञान-गणित-इतिहास-पुराण सम्बन्धी पहेलियाँ

7) अन्य पहेलियाँ।

इसप्रकार बाल रुचि के अनुसार पहेलियों को सात वर्गों में विभक्त कर सकते हैं।

5.4 हिन्दी तथा मलयालम की बालपहेलियाँ

एक अर्थ में पहेलियाँ प्रकृति के चित्र-विचित्र रंगस्थली है। इसमें प्रकृति के चित्र-विचित्र अद्‌भुत शोभा संस्कार रूपायित हैं। डॉ राजेन्द्र प्रसाद सिंह के अनुसार "समस्त विश्व की प्राचीन सभ्यता का इतिहास इस तथ्य की पुष्टि करता है कि मनुष्य ने प्रारंभ में जीवन-संघर्ष की यात्रा वन-पर्वत तथा सर-सरिताओं से भरी धरती और नाना प्रकार" के पक्षियों से गुंजित विस्तृत आकाश के नीचे की है। इसलिए उक्त अ्वस्थाओं के अनुभवों में एक ओर मनुष्येतर प्राणियों और भौतिक जगत के प्रति लोक-मानस की आश्चर्य मिश्रित जिज्ञासा प्राप्त होती है, तो दूसरी ओर इनमें प्रकृति के साथ सामान्य जन के प्रत्यक्ष साहचर्य से जनित रागात्मक अनुभव - संसार प्राप्त होते हैं। इसप्रकार पहेलियों में प्रकृति सजीव, विचित्र और मनोरम हैं। ऐसा ही नहीं जहाँ भी हो पहेलियों में इसप्रकार संसार के अधिकाँश वस्तुओं से सम्बन्धित पहेलियाँ भी मिलते हैं।"[1] बच्चों का स्वभाव हर कहीं एक जैसा है, इसलिए उनके लिए बने पहेलियाँ भी समान स्वभाव दिखाना स्वाभाविक ही है। हिन्दी तथा मलयालम के बालपहेलियों का विश्लेषण करंते समय यह बात स्पष्ट हो जाता है।

सुविधा की दृष्टि से वर्गीकरण के आधार पर हिन्दी तथा मलयालम के बाल पहेलियों का विश्लेषण करना उचित हैं।

5.4.1 पशु-पक्षियों तथा जीव-जन्तुओं से सम्बन्धी पहेलियाँ

इन पहेलियों में पशु-पक्षियों तथा जीव-जन्तुओं से सम्बन्धी प्रश्न पूछा जाता है तथा उत्तर भी इससे सम्बन्धित हैं। इनकी सबसे बडी विशेषता

---

1 डॉ राजेन्द्रप्रसाद सिंह हिन्दी पहेलियों का सांस्कृतिक अध्ययन- पृ॰ सं - 14

यह हैं कि इनमें प्राणियों से सम्बन्धित सूक्ष्मनिरीक्षण मिलना है। बच्चों को ऐसी पहेलियाँ बहुत पसन्द हैं। इन पहेलियों के उत्तर बताने में वे बहुत उत्साह प्रकट करते हैं। हिन्दी तथा मलयालम में अनेक ऐसी पहेलियाँ है जो जीवजन्तुओं से सम्बन्धित हैं।

5.4.1.1 पालतू पशु-पक्षी सम्बन्धी पहेलियाँ

पालतू पशु-पक्षी जैसे बिल्ली, कुत्ता, गाय, तोता आदि तथा हमारे आसपास दिखायी देनेवाले कौआ, कोयल, साँप, तितली, चींटी आदि को देखना और इनके बारे में सुनना बच्चों को बहुत ही पसन्द है। वैसे सभी जानवर पक्षी बच्चों को पसन्द हैं। इन प्राणियों के बारे में जानने के लिए वे जिज्ञासू हैं। जिनकी जानकारी उन्हें प्राप्त है इसके बारे में पूछते समय उन जानकारियों के आधार पर उत्तर बताना तथा अपने को बुद्धिमान समझना वे पसन्द करते हैं। इसलिए ही प्राणियों से सम्बन्धित इसप्रकार की अनेक पहेलियाँ प्रचलित हो गयी हैं।

5.4.1.1.1 बिल्ली संबन्धी पहेली

बिल्ली से सम्बन्धित एक पहेली -

"बस चुपचाप लगाऊँ घात, करूँ न
मैं ज्यादा उत्पाद
दूध मलाई की शौकीन, ढूँढा करती हूँ दिनरात।"[1]

---

1 पहेलियाँ (विश्व साहित्य) - विश्वविजय प्राइवेट लिमिटेड - पृ सं 20

बिल्ली दबे-पाँव चलती है तथा इसे दूध मलाई सबसे पसन्द है। बिल्ली की इस विशेषता को इस पहेली में बतायी गयी है। मलयालम में इसप्रकार की पहेली है

"आँखें है मोती जैसी
सर गेंद सा
पूंछ बाघ की सी।"[1]

इसमें बिल्ली की शारीरिक विशेषताएँ बतायी गयी हैं।

5.4.1.2 गिलहरी संबंधी पहेली

गिलगहरी से सम्बन्धित पहेली देखिए -

"लंबी पूंछ, पीठ पर रेखा
दो दो हाथों खाते देखा।"[2]

मलयालम में :-

आंगन के आम के पेड की टहनी पर
खेल रहा है गुल्ली एक"[3]

पहली पहेली में गिलहरी की शारीरिक विशेषता बतायी गयी है तो दूसरी पहेली में चरित्र और रूप दोनों के बारे में बताया गया है।

---

1 जोबी जोस 1001 कडम्कथकळ् पृ. सं. 25

'कण्णु पळुंकु पोले,
तला पन्तु पोले
वाल पुलिवाल"

2. पहेलियाँ (विश्वसाहित्य) विश्वविजय प्राइवेट लिमिटेड़ - पृ. सं 20

3. जोबि जोस (स) - 1001 कडम्कथकळ् - पृ. सं. 25

"मुट्टत्ते तैमाविन् कोम्पिल् कुरुवडियोडिक्कळिक्कुन्नु"

5.4.1.3 मच्छर संबंधी पहेली

एक पहेली इसप्रकार है

"कद के छोटे, कर्म के हीन
बीन बजाने के शौकीन"[1]

मलयालम में :-

"नज़र में न आती मितभाषी छोकरी पर
काम है टीकाकरण और कर्नाटक संगीतालाप"[2]

इन दोनों में मच्छर के छोटा शरीर खून का पीना तथा गाने की विशेषताओं का परिचय मिलता है।

5.4.1.4 मोर संबन्धी पहेली

पक्षियों में मोर बच्चों को बहुत ही पसन्द हैं। मोर देखने में बहुत सुन्दर हैं। इसी विशेषता को लेकर अधिकाँश पहेलियाँ मिलती हैं। हिन्दी में :-

"एक जानवर ऐसा जिनकी दुम पर पैसा।"[3]

मलयालम में :-

"बगल के पंख को छत्री बनाके नाचती मैं कौन?"[4]

---

1 पहेलियाँ (विश्वसाहित्य) - पृ सं 23

2. जोबि जोस 1001 कड्मकथकळ् - पृ सं. 26
कण्णिलपिडिक्कात्त कळवाणि पेण्णिन्नु
कर्णाटकसंगीतोम् कुत्तिवेप्पुम्।"

3. डॉ. कुन्दनलाल उप्रेती लोकसाहित्य के प्रतिमान पृ सं 217

4. कुञ्जुण्णि कडम्कथकळ् पृ. सं 47
वालु कोण्डु कुडा पिडिच्चु नृत्तम् वेक्कुन्ना आनारु

5.4.1.5 तितली से संबन्धित पहेली

रंग विरंगी तितलियों ने हमेशा बच्चों के मन को भाया है। तितली से सम्बन्धित अनेक पहेलियाँ भी प्रचलित है -

"देखो मैं हूँ रंग बिरंगी,
सबके मन को भाती हूँ
फुदकफुदक फूलों पर चलती
हाथ लगे डर जाती हूँ।"[1]

मलयालम में :-

"फूल में है कली में नहीं
व्रज में है अयोध्या में नहीं
हवा में है, बारिश में नहीं
शहद ही मेरा मुख्य भोजन"[2]

5.4.1.6 मेंढक से संबन्धित पहेली

इसीप्रकार मेंढक भी बच्चों के प्रिय प्राणी है। मेंढक के बारे में अनेक पहेलियाँ हैं।

उदाहरणार्थ -

"हम ने देखा ऐसा बन्दर
जो उछले पानी के अन्दर।"[3]

---

1 पहेलियाँ (विश्व साहित्य) - पृ. सं 28
2. जोबि जोस 1001 कडम्कथकळ् - पृ सं 54
पूविलुण्डु मोट्टिटलिल्ला
अम्पाडियिलुण्डु अयोध्ययिलिल्ला
3. पहेलियाँ (विश्व साहित्य) - पृ सं 23
काट्टत्तुण्डु मषयत्तिल्ला तेनाणेन्डे मुख्याहारम्।"

मलयालम में :-

"तालाब में तैरता होनहार
पोखरे में कूदता होनहार
गोल-गोल आँखों का छोटा होनहार।"[1]

इन दोनों पहेलियों में मेंढकों की इस चारित्रिक विशेषता को दिखाया है कि ये अक्सर पानी में उछलते कूदते हैं।

5.4.1.7 मधुमक्खी से संबन्धित पहेली

मधुमक्खी के छाते के बारे में हिन्दी तथा मलयालम में समान पहेलियाँ प्रचलित हैं।

"एक महल में बुर्ज हज़ार,
बुर्जबुर्ज पर पहरेदार
कैसा अजीब किला बनाया?
न मिट्ठी न चूना लगाया।"[2]

इन पहेलियों में मधुमक्खी की छत्ता का रूप कैसा है यह बताया गया है। बच्चों को मधु बहुत ही पसन्द हैं। यह कहाँ से मिलता है इसकी जानकारी इन पहेलियों द्वारा मिलता हैं।

---

1 स्करिया सखरियास कडम्कथकळ् पृ. सं. 28
"वट्टक्कुळत्तिल् नीन्तुम् मिडुक्कन्
पोट्टाक्कुळत्तिल चाडुम् मिडुक्कन्
वट्टक्कण्णन् कोच्चु मिडुक्कन्।"
2. पहेलियाँ (विश्व साहित्य) पृ सं 23

5.4.2 फ़ल-फूल तथा पेड-पौधों से सम्बन्धित पहेलियाँ

ऐसी पहेलियों में विषय फल-फूल, पेड तथा पौधे से सम्बन्धित रहते हैं। इसमें भी फल-फूलों तथा पेड़-पौधों से सम्बन्धित सूक्ष्म जानकारियाँ मिलती हैं। फल-फूलों तथा पेड़-पौधों को पहचानते तथा इसकी विशेषताओं के बारे में जानकारी प्राप्त करने के लिए ऐसी पहेलियाँ बहुत उपयोगी हैं।

5.4.2.1 नारियल से संबन्धित पहेली

नारियल से सम्बन्धित एक पहेली :-

"जडा जूट है मेरे सिर पर, और
लम्बी सी दाढी
पड़ा पेट में मेरे पानी,
यों तकदीर बिगाडी।"[1]

मलयालम में :-

"पानी है, रोशनी है, नीड़ है और कानन है।"[2]

नारियल एक लंबे ऊँचे वृक्ष में पैदा होता है। इसकी आकृति गोल तथा ऊपरी छिलका बहुत कड़ा और रेशेदार होता है। अन्दर पानी भरा रहता है इसके ऊपर गिरी है जो खाने में मीठा और स्वादिष्ठ है। इन विशेषताएँ

---

1 पहेलियाँ (विश्वसाहित्य) - पृ सं 20

2. जोबि जोस 1001 कडम्कथकळ् पृ. सं 63
"वेळ्ळमुण्डु वेळिच्चयुण्डु, कूडुण्डु, काडुमुण्डु।"

नारियल सम्बन्धी पहेलियों में देखी जा सकती हैं। उपर्युक्त दोनों पहेलियों में ये विशेषताएँ ज़ाहिर हैं। मलयालम की तुलना में हिन्दी में नारियल सम्बन्धी पहेलियाँ बहुत कम हैं। केरल के समान हिन्दी प्रदेश में नारियल का बराबर पेड़ नहीं है। केरल में सबसे अधिक दिखायी देनेवाले वृक्ष हैं नारियल तथा लोग सबसे अधिक इसका उपयोग भी करते हैं। इसलिए केरल में नारियल सम्बन्धी पहेलियाँ भी सौ से अधिक हैं।

5.4.2.2 केले से संबंधित पहेली

केले से सम्बन्धित अनेक पहेलियाँ हिन्दी तथा मलयालम में हैं। उदाहरण के लिए :-

"पेड़ सटका; डांढ लटका।

फूल गुलाबी, फर नवाबी।"[1]

मलयालम में :-

"सूई सा अंकुर आया चटाई था पत्ता खिला

खम्ब सा डंडल आया।"[2]

केले का पेड भी लम्बा सीधा होता है। इसकी पत्तियाँ बड़ी बड़ी होती हैं। केले का फूल भी बहुत सुन्दर हैं। इसमें एक ही बार फूल लगते हैं। इसका पका फल बहुत मीठा होता है। केले के पेड़ की रूप तथा उसके फलने-

---

1 पहेलियाँ (विश्वसाहित्य), विश्वविजय प्राईवेट लि - पृ सं 18

2. जोबि जोस 1001 कडम्कथकळ् पृ. सं 42

"तूशि पोले मुळा वन्नु

पाया पोले इला विरिञ्ञु

तूणु पोले तटि वन्नु

फूलने की विधि, फल के रूप-स्वाद आदि का वर्णन इससे सम्बन्धित पहेलियों में होता है। ऊपर उल्लिखित दोनों पहेलियों में इसप्रकार केले के पेड़ का सरल वर्णन मिलता हैं।

5.4.2.3 कटहल से संबन्धित पहेली

कटहल से सम्बन्धित अनेक पहेलियाँ हिन्दी तथा मलयालम में प्रचलित हैं। उदाहरण के लिए :-

"किर-किर कांटा, कपूर चो बास।
तूचो-मोर्चा घंदा छै-छै मास?"[1]

UNIVERSITY LIBRARY ★ COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY Cochin - 682 022

मलयालम में :-

"पेटी यह पेटी सहजन की पेटी
पेटी के खुलने पर कस्तूरी गंध।"[2]

कटहल के फल का बाहरी छिलका कांटेदार है। इसके फल बहुत मीठे, स्वादिष्ट बूदार है। कटहल से सम्बन्धित पहेलियों में कटहल के फल का रूप, रंग, स्वाद, गन्ध आदि की जानकारी मिलती है। हिन्दी और मलयालम के इन दोनों पहेलियों में कटहल के ऊपरी भाग के काँटेदार छिलके का तथा अन्दर के कर्पूर गन्ध का वर्णन है।

---

1 लाला जगदलपुरी - बस्तर की बोलियों में पहेलियाँ पृ. सं. 84
2. जोबि जोस 1001 कडम्कथकळ् पृ सं 50
"पेट्टि पेट्टकम् मुरिक्किन् पेट्टकम्
पेट्टि तुरक्कुम्पोळ् कस्तूरि गन्धम्"

इसप्रकार हिन्दी तथा मलयालम में अन्य फल-फूल तथा पेड-पौधों से सम्बन्धित अनेक पहेलियां मिलतीं हैं।

5.4.2.4 मिर्च से संबन्धित पहेली

वर्ण्य की दृष्टि से, रूप तथा भाव में बिलकुल समान पहेलियाँ मिलते हैं। मिर्च सम्बन्धी एक पहेली :-

"अगर कहीं मुझ को मिल जाता,
बडे प्रेम से तोता खाता
बच्चे बूढ़े यदि खा जाएँ,
व्याकुल हो कर जल मंगवाएँ।"[1]

मलयालम में :-

"आंगन में खडे सुन्दर छोकरे
रुलाते हैं बच्चों को झटके से।"[2]

5.4.2.5 पपीता संबंधी पहेली

पपीते से सम्बन्धित पहेली :-

"हरी डब्बी, पीला मकान
उसमें बैठे कालूराम।"[3]

---

1 पहेलियाँ (विश्वसाहित्य) - पृ. सं 23

2. जोबि जोस - 1001 कडम्क्कथकल् पृ. सं. 56
"मुट्टत्तु निल्क्कुम् सुन्दराक्कुट्टन
पिळ्ळेरे करयिक्कुम्।"

3. पहेलियाँ (विश्वसाहित्य) - पृ. सं. 22

मलयालम में :-

"हरे तख्ते के महल में हैं बैठे

सैकडों हज़ारों सूखे नारियल।"[1]

इन पहेलियों में भी गुण तथा रूप के आधार पर प्रश्न पूछा गया है जो हिन्दी तथा मलयालम में समान रूप से पा जाता है।

5.4.3 प्रकृति तथा प्राकृतिक घटनाओं से सम्बन्धित पहेलियाँ

प्रकृति मानव की चिर-सहचरी हैं। उसे विभिन्न रूप है जिसे बच्चे ही नहीं बडे भी बडी कौतूहलता की दृष्टि से देखते हैं। इन विविध रूपों में आग वर्षा, ऋतुएं, धूप, आदि से संबंधित अनेक विषय आते हैं। इनसे सम्बन्धित अनेक पहेलियाँ भी हिन्दी तथा मलयालम में हैं।

5.4.3.1 आग संबंधी पहेली

"गोला (भूरा) बैला खूब खाय, जेते देय आते खाय;

पानी पीते मर जाय।"[2]

मलायलम में :-

"सब कुछ खाती है, सब कुछ पचते है

पानी के पीने पर मर जाती है।"[3]

---

1 जोबि जोस 1001 कडम्कथकळ् पृ. सं 17

"पच्चप्पलकाक्कोट्टारात्तल् पत्तुम्,

नूरुम् कोट्टलेङ्ङा।"

2. लाला जगदल पुरी बस्तर की बोलियों में पहेलियाँ पृ. सं. 85

2. जोबि जोस 1001 कडम्कथकळ् पृ. सं. 19

"एल्लाम तिन्नुम् एल्लाम् दहिक्कुम्

वेळ्ळम् कुडिच्चाल चत्तु पोकुम्"

आग दाहक एवं प्रज्वलनशील है। इसमें जल के अलावा बाकी सभी चीज़ों को दहकने जलाने करने की क्षमता है। लेकिन जल पीते ही आग बुझ जाता है। आग की इस विशेषता को अधिकाँश पहेलियों में बताया गया हैं। इसप्रकार की अनेक पहेलियाँ हिन्दी तथा मलयालम में हैं। हिन्दी के कुछ अन्य उदाहरण देखिए -

"पैर बिना ऊपर चढ़े, बिन मुख भोजन खाय
एक अंचमा मैं ने सुना, जल पीते मर जाय।"[1]

"जा घर लाल बलैया जाय।
ताक घर में दुन्द मचाय।।"[2]
"लाखन मन पानी पी जाय
घर ढंका सब घर का खाय।।"[3]

इसी प्रकार मलयालम की कुछ अन्य पहेलियाँ देखिए -

"हर किसी से लडता है पहलवान
पानी के पीने पर मर जाता है।"[4]
"हर किसी से दावा बोलता है गुस्सैला
पानी को देखते ही सहम जात है।"[5]

---

1 पहेलियाँ (विश्वसाहित्य) - पृ सं 19
2. सत्या गुप्त खडीबोली का लोकसाहित्य - पृ. सं 247
3. पहेलियाँ (विश्वसाहित्य) - पृ. सं. 16
4. जोबि जोस 1001 कडम् कथकळ् - पृ. सं. 12
"आरोडुम्, मल्लडिक्कुम् मल्लन्
वेळ्ळम् कुडिच्चाल चत्तुपोकुम्।"
5. वहीं - पृ सं. 15 "आरोडुम् पोराडुम् चूडन्
वेळ्ळम् कण्डाल परुङ्ङुम्।"

इसप्रकार आग से सम्बन्धित अनेक पहेलियाँ हिन्दी तथा मलयालम में मिलता हैं।

5.4.3.2 चन्द्रमा से संबंधित पहेलियाँ

चान्द को बच्चे बहुत पसन्द करते हैं। बच्चे रोते समय और उन्हें खाना-खिलाते समय माताएँ चान्द को दिखाते हैं। चान्द से सम्बन्धित अनेक मनोरम कल्पनाएँ लोक में मिलते है जो ़गीतों, कहानियों तथा पहेलियों में अभिव्यक्त हैं।

उदा :- *"गाडा भर गेहूँ में एठ ठन रोटी।"*[1]

इसमें चन्द्रमा को गोंहू से भरी गाड़ी के मध्य की गोठी बताया है।

केरल में चाव का उपयोग अधिक है गोहूँ का नहीं। इसलिए मलयालम के पहेलियों में इससे सम्बन्धित कल्पनाएँ अधिक हैं।

उदा :-

1 "नूरा परयरिक्कु ओरु पप्पडम्।"[2]

2. "नूरु परयरियुम् ओरु तेङ्ङाप्पूळूम्।"[3]

5.4.3.3 तारों से संबंधित पहेलियाँ

तारों से सम्बन्धित अनेक पहेलियाँ हिन्दी तथा मलयालम में हैं।

---

1 पहेलियाँ (विश्वसाहित्य) - पृ. सं 28

1 जोबि जोस 1001 कडम् कथकळ् पृ. सं 45

2. जोबि जोस 1001 कडम् कथकळ् पृ सं 46

हिन्दी उदाहरण :-

"काली चटईयाँ पर मोती बिहरी (बिखरे)"[1]

मलयालम में :-

"रेशम में सफेद फूल।"[2]

तारों से सम्बन्धित पहेलियों में रात में इनकी चमक, सुदूरता, असंख्यता आदि का वर्णन है। इन पहेलियों में तारों को मोती, फूल आदि बताये गये हैं। रात के अन्धेरे में तारे चमकते हैं।

5.4.3.4 सूरज से संबंधित पहेलियाँ

हिन्दी में सूर्य से सम्बन्धित जो पहेलियाँ प्रचलित हैं, उनमें से एक यहाँ दृष्टव्य है

"बिना तेल का बिना बाती का,
दिन भर दिया जलता है।
और दीप जलने से पहले
पश्चिम जाकर ढ़लता है।"[3]

मलयालम में -

"दिन भर हंसते हंसते चलता है
राव को समुन्दर में डूबता है।"[4]

---

1 पहेलियाँ (विश्वसाहित्य) - पृ. सं. 30

2. शंकरनारायण वि.ए. एन्तुत्तरम्? "करुत्ता पट्टिल वेळुत्ता पूक्कळ"

3. पहेलियाँ (विश्व साहित्य) - पृ. सं 32

4. जोबि जोस 1001 कडम् कथकळ् पृ. सं. 46
"पकलेल्लाम् चिरिच्चु नडक्कुम्
रात्रियायाल् कडलिल् मुङ्ङुम्।"

सूरज हमें प्रकाश देता है। इससे ही प्रकृति के अनेक व्यापार चलते हैं। यह प्राकृतिक दीप है। सामान्यतः पहेलियों में सूर्य की प्रकृति का चित्रण मिलता हैं। बच्चों केलिए सूरज का उदय, पश्चिम में डूबना आदि विस्मयकारी बातें हैं। इसलिए इनसे सम्बन्धित अनेक पहेलियाँ भी हैं। इसप्रकार प्रकृति तथा प्राकृतिक घटनाओं से सम्बन्धित अनेक पहेलियाँ हिन्दी तथा मलयालम में मिलती हैं। इनमें अधिकाँश पहेलियों का वर्ण्य-विषय समान है। यदि भेद हैं तो प्रादेशिक भिन्नता के कारण पाये जानेवाले ही हैं।

5.4.4 शरीर एवं आहार सम्बन्धी पहेलियाँ

बच्चों को शरीर सम्बन्धी पहेलियाँ बहुत पसन्द हैं। छोटे बच्चों को आँख, नाक, कान जैसे अंगों को दिखाकर यह क्या है पूछना तथा इसका जवाब देना पसन्द की बात है और इससे सम्बन्धित पहेलियाँ भी। उसीप्रकार खान पान की चीज़ें भी पहेलियों का विषय रहा है।

5.4.4.1 आँख से संबंधित पहेलियाँ

आँख की विशेषताओं पर केन्द्रित कई पहेलियाँ हिन्दी और मलयालम में मिलती हैं।

"बिन बोले कह जाती हैं, दिल की सौ सौ बातें
बन्द करो तो हो जाती हैं। सारी दुनिया की रातें।"[1]

---

1 पहेलियाँ (विस्त्व साहित्य) - विश्व विजय प्राईवेट लिमिटेड पृ सं 32

मलयालम में :-

"झिलमिल, रात को अंधेरी गुफा में।"[1]

इन दोनों पहेलियों में आँखों की विशेषताएँ बतायी गयी हैं।

शरीर के विभिन्न अवयवों के साथ ही साथ बाल पर भी कई पहेलियाँ मिलती हैं।

5.4.4.2 बाल से सम्बन्धित पहेली

हिन्दी में इसका उदाहरण देखिए :-

"एक खेत की शान निराली,
फसल सबकी देखी भाली
बेशाक काटो जितनी बार,
अपने आप होती तैयार।"[2]

मलयालम में :-

"वह जंगल है जो न फलता है फूलता
काटने पर दोबारा उगता है।"[3]

इन दोनों पहेलियों में बाल की इस विशेषता को बताया गयी है कि बाल काटने पर भी बढ़ता है।

---

1 जोबि जोस 1001 कडम् कथकळ् पृ सं 46
"पकलेल्लां मिन्निमिन्नि रात्रि इरुट्टरायिल"

2. पहेलियाँ (विश्व साहित्य) विश्व विदय प्राइवेट लिमिटेड - पृ सं 20

3. जोबि जोस 1001 कडम् कथकळ् पृ. सं. 50
"पूक्कात्त काय्क्कात्ता वेट्टियाल्
वीण्डुम् तळिरक्कुन्ना काड़।"

5.4.4.3 खाद्य पदार्थ संबंधी पहेलियाँ

हिन्दी तथा मलयालम में खाद्य पदार्थ सम्बन्धी अनेक पहेलियाँ हैं। इनमें कुछ खाद्य पदार्थों में समानताएँ हैं पर ज़्यादात्तर इसके निर्माण विधि तथा व्यवहार के साथ क्षेत्रीय भिन्नताएँ भी देखने को मिलती हैं। हिन्दी प्रदेश में रोटी, पूरी, बुआ आदि खाद्य पदार्थों को ही लोग अधिक खाते हैं। केरल में भात, बुट्टा, इड्डली आदि खाद्य पदार्थों का प्रचलन ज़्यादा है। हर कहीं बच्चे मीठे खाद्य पदार्थ को पसन्द करते हैं, पर केरल की तुलना में हिन्दी प्रदेश के सभी लोग मीठा खाद्य पदार्थ बहुत पसन्द करते हैं। इसलिए जलेबी, लड्डू जैसे मीठे पकवानों से सम्बन्धित पहेलियाँ हिन्दी प्रदेश में ज़्यादा मिलती हैं।

उदा -

"गोल गोल चौंतरा, पोरी पोरी रस
बता दो बता, नहीं रुपए दे बस।।"[1]

अपने दीर्घ वृत्ताकार तथा सफेद रंग के कारण अण्डा बच्चों को बहुत पसन्द हैं। अण्डा बच्चों को कौतूहल की चीज़े हैं। अण्डे से सम्बन्धित अनेक पहेलियाँ हिन्दी तथा मलयालम में प्रचलित हैं। उदाहरण के लिए एक हिन्दी पहेली देखिए

"राजारानी की सुनो कहानी
एक घडे में दो रंग का पानी।"[2]

---

1 पहेलियाँ (विश्व साहित्य) विश्वविजय प्राइवेट लिमिटेड - पृ सं 6
2. वहीं - पृ सं 17

मलयालम में :-

"एक बोतल में दो प्रकार के तेल।"[1]

अण्डे की अन्तर्वस्तु दो रंगों की होती है, इसी विशेषता के बारे में इन पहेलियों में बताया गया है।

5.4.5 घर गृहस्थी तथा खेल खिलौने से सम्बन्धित पहेलियाँ

ऐसी पहेलियों में परिवार और घर से सम्बन्धित विभिन्न वस्तुओं तथा खेल-खिलौने से संबंधित पहेलियाँ आती हैं। भारतीय संस्कृति में परिवार का अत्यधिक महत्व है। इसलिए बचपन से ही इससे सम्बन्धित ज्ञान बच्चों दिया जाता है। पहेलिएँ इसके लिए बहुत सहायक हैं। हिन्दी तथा मलयालम में ऐसी अनेक पहेलियाँ देखने को मिलती हैं।

5.4.5.1 मथानी मटकी

मथानी मटकी से सम्बन्धित पहेली देखिए :-

"इनहुं नदी उनहूं नंदी,
बीच में झंझारी,
जहाँ जोगी दण्ड करे
नाचे है बोवारी।।"[2]

---

1 जोबि जोस 1001 कडम्कथकळ् पृ सं 22
"ओरु कुप्पियिल् रण्डु तरम् एण्णा"

2. पहेलियाँ (विश्वसाहित्य) - विश्व विजय प्राइवेट लि. पृ सं 16

मलयालम में :-

"काठ का डंडल मटकी के पेट में

उछलता कूदता है।"[1]

मथानी तथा मटकी की संयुक्त क्रिया तथा इसकी आकृति अधिकाँश पहेलियों का विषय बना है। मथने की क्रिया को बच्चे कौतूहल की दृष्टि से देखते हैं।

5.4.5.2 चूल्हा

बच्चों को विस्मय में डूबोनेवाली एक चीज़ है चुल्हा। हिन्दी तथा मलयालम में चूल्हे से सम्बन्धित अनेक पहेलियाँ है। उदाहरण केलिए

"माथ पर मोटरी। मुँह में लकड़ी।"[2]

मलयालम में :-

"तीन माताएं बैठकर जल रही है।"[3]

इन दोनों पहेलियों में चूल्हे की आकृति, आग में तपने तथा लकड़ी डालने आदि बातें बतायी गयी है। हिन्दी प्रदेशों में चूल्हा मिट्ठी का बना होता है और ऊपर खुला रहता है। वहीं बर्तन आदि सामग्रियाँ रखी जाती

---

1 जोबि जोस-1001 कडम् कथकळ् पृ. सं. 53
"मरक्कुट्टि मण्कुट्टियुडे वयट्टिल
तुळ्ळिक्कळिक्कुन्नु।"

2. डॉ. सत्यागुप्त खडीबोली का लोकसाहित्य - पृ सं. 281

3. जोबि जोस-1001 कडम् कथकळ् - पृ. सं. 56
"मून्नम्ममारिरुन्नु वेन्तु नीरुन्नु।"

हैं और नीचे ईंधन के रूप में लकडी सूखी टहनी जलायी जाती हैं। केरल में तीन पत्थरों को एक विशेष क्रम से रखकर चूल्हा बना जाता है। इसके ऊपर बर्तन रखा जाता है तथा नीचे लकडी और सूखी टहनी जलायी जाती हैं। ये क्षेत्रीय भिन्नता हैं। इन भेदों को पहेलियों में भी दिखायी देती है। पर दोनों की प्रवृत्ति एक ही है इसलिए समानताएँ भी देखने को मिलती हैं।

5.4.5.3 गुब्बारा

खेलना बच्चों को सबसे अधिक मनोरंजन प्रदान करनेवाली बात है। वे खेल तथा खिलौनों को बहुत अधिक पसन्द करते है इसलिए इनसे सम्बन्धित अनेक पहेलियाँ भी हिन्दी तथा मलयालम में हैं। उदाहरण के लिए गुब्बारे से सम्बन्धित पहेली :-

"रहता हूँ सहमासहमा,
गुस्सा आए फूल के कुप्पा
धागे से ही मुझे उडाओ,
मर जाऊँ जब चुभे सुई।"[1]

मलयालम में :-

"न चाहिए पानी न चाहिए रोशनी भी
महज वायू ही अकेला भोजन है।"[2]

---

1 पहेलियाँ (विश्व साहित्य) विश्वविजय प्राइवेट लिमिटेड - पृ. सं 10

2. जोबि जोस-1001 कडम् कथकळ् पृ. सं 63

"वेळ्ळों वेण्डा वट्टुम वेण्डा
वायु मात्रम् भक्षणम्।"

इन दोनों पहेलियों में गुब्बारे की विशेषताएँ जाहिर हैं। गुब्बारे के अन्दर वायु भरायी जाती हैं। फिर धागे से बान्धकर इसे उडाया जाता है। सुई से चूभे तो वायु बाहर निकलता है और गुब्बारे फट जाता हैं।

5.4.5.4 पतंग उड़ाना

पतंग उडाना बच्चों का प्रिय खेल है। पतंग से सम्बन्धित जो पहेलियाँ हिन्दी तथा मलयालम में है, उनमें कई समानताएँ हैं। उदाहरण के लिए हिन्दी में

"काठ का घोड़ा। डोरे का लगाम
छोड दिया घोड़ा उड़ेगा आसमान।"[1]

मलयालम में :-

"आसमान से होकर रथ चलता है
सारथी ज़मीन पर खडा है।"[2]

पतंग रंगीन कागज़ से बनाया जाता है। इसे एक डोरी से बान्धकर हवा में उडाया जाता है। डोरी का दूसरा छोर उडानेवाले के हाथ में है और वह ज़मीन पर खडे होकर डोर को ऊपर नीचे खींचकर उसका नियंत्रण करता है। इन विशेषताओं को ऊपर उल्लिखित पहेलियों में बताया गया हैं।

---

1 पहेलियाँ (विश्वसाहित्य) विश्व विजय प्राइवेट लिमिटेड - पृ. सं 25

2. जोबि जोस-1001 कडम् कथकळ् पृ. सं 9
"आकाशत्तूडे तेरोडुन्नु
तेराळि भूमियिल् निल्क्कुन्नु।"

5.4.6 विज्ञान, गणित तथा पुराण सम्बन्धी पहेलियाँ

पहेलियाँ मनोरंजन के साथ-साथ ज्ञान भी प्रदान करती हैं। पहेली जानकारियों की पोटली है। इसमें गणित, विज्ञान, इतिहास तथा पुराण से संबंधित अनेक पहेलियाँ हैं।

5.4.6.1 वर्ष और महीने के नाम

वर्ष में कितने महीने तथा कितने दिन है इसका ज्ञान भी पहेलियों के माध्यम से मिलता है :-

"एक बूढे को बारह बेटे,
कोई बडा तो कोई छोटा
कोई गरम तो कोई ठंडा
बताओ जल्दी नही तो खाओगे डंडा।"[1]

मलयालम में :-

"ऐसा है एक पेड़
जिसके है बारह डालियाँ
छः है हरे और छः है सूखे।"[2]

---

1 पहेलियाँ (विश्वसाहित्य) विश्वविजय प्राईवेट लिमिटेड पृ सं 6

2. डॉ एम. वी. विष्णु नंबूतिरी कडम्कथकळ् ओरु पठनम् पृ सं 24
"ओराडियेन्नोरु मरम्
ईरारु पन्द्रण्डु कोम्पु
अतिलारु पच्चा अतिलारुणक्क।"

इनमें बताया गया है। बारह बेटे बारह महीने हैं। कुछ महीने ठंडे होते हैं। तथा कुछ महीने गर्म। दूसरे में वर्ष को एक पेड़ बताया गया है। इसके बारह डालियाँ है याने बारह महीने। छह महीनों को हरा तथा छह महीनों को सूखा बताया गया है। याने छह महीने ठंडे तथा छह महीने गर्म होते हैं। वर्ष के छः महीनों तक गर्मी तथा छः महीनों तक वर्षा और सर्दी के ठंडे होते हैं। इसी बात को इसमें बताया गया है। इसप्रकार इन पहेलियों से गणित तथा विज्ञान की बातें बच्चों को मिलते हैं।

5.4.6.2 पुराण संबंधी पहेलियाँ

पुराण सम्बन्धी पहेलियाँ भी अनेक हैं।

5.4.6.2.1 रावण

रावण से सम्बन्धित पहेली देखिए :-

"खैर सुपारी बंगला पान।
डौकी डौका के बाईस कान।।"[1]

बच्चों को रावण भयानक तथा विस्मयकारी हैं। रावण के दस सर हैं तथा बीस हाथ। इसलिए बच्चे रावण से डरते हैं। इस पहेली में रावण तथा उसकी पत्नी मन्दोदरी का उल्लेख है। दोनों के मिलाकर कुल बाईस कान होते हैं। यह पहेली सुनकर बच्चे इसकी कल्पना करते हैं, हँसते है तथा जवाब देते हैं।

---

1 डॉ. राजेन्द्र प्रसाद सिंह हिन्दी पहेलियों का सांस्कृतिक अध्ययन पृ. सं. 96

5.4.6.2.2 ओणम

केरल का राष्ट्रीय त्योहार है ओणम्। कहते है केरल में एक राजा थे जो बहुत अच्छे तथा दयावान थे। उनका नाम है महाबली। महाविष्णु ने वामन रूप धारण करके उनसे तीन पग ज़मीन मांगी। वामन आकार से बडा बना। चौदह दुनियाओं को उसने दो पगों में नापा। तीसरे पग के रूप में उसने पैर महाबली के सर पर रखा और उसे पाताल में रौंद दिया। इससे सम्बन्धित पहेली है :-

"दान देकर वह दिवालिया बना।"[1]

हिन्दी प्रदेश में दीपावली, होली जैसे त्योहार प्रमुख हैं तो केरल में ओणम तथा विषु की प्रधानता है। मलयालम में भी रावण से सम्बन्धित पहेली हैं, लेकिन हिन्दी की तुलना में मलयालम में रावण से सम्बन्धित पहेलियाँ कम हैं। महाबली से सम्बन्धी पहेलियाँ तो हिन्दी में नहीं के बारबर हैं।

5.4.7 अन्य पहेलियाँ

ऐसी अनेक पहेलियाँ हैं जिनका वर्गीकरण नहीं किया जा सकता। कृषि सम्बन्धी अनेक पहेलियाँ, हिन्दी तथा मलयालम में मिलती हैं।

---

1 जोबि जोस-1001 कडम् कथकळ् पृ सं 34
कोडुत्तु मुडिञ्ञवन्

5.4.7.1 हल संबन्धी पहेली

हलं कृषि कार्य का प्रधान उपकरण है। जुताई केलिए हल का प्रयोग किया जाता है। हल से सम्बन्धित पहेलियों में खेती सम्बन्धी विशेषकर जुताई से सम्बन्धी जानकारियाँ प्राप्त होती हैं। उदाहरण के लिए :-

"राघो चले रघ मघ।
तीन माथा दस पग।"[1]

मलायलम में :-

"छें दो, नाक भी तीन जी भ तो चार
चलते पाँव दस, बता सकते हो वह क्या है।"[2]

इन दोनों पहेलियों में हल, हलवाहा, बैल तीनों का चित्र एक साथ प्रस्तुत किया है। वस्तुतः यह चित्र खेत की जुताई का है। दो बैल तथा एक हलवाहा हैं इसमें। दोनों बैलों की दो पूँछे बैलों तथा हलवाहे के तीन नाक तथा तीन माथा है और बैल, हल तथा हलवाहे की चार जीभें तथा दस पैर हैं। इन्हीं का चित्रण इन पहेलियों में मिलता हैं।

---

1 डॉ. सत्येन्द्र - लोकसाहित्य विज्ञान - पृ. सं. 147
2. जोबि जोस-1001 कडम् कथकळ् - पृ. सं 61
"वालु रण्डु, मूक्कु मून्नु, नाक्कु नालु
नड कालु पत्तु, आनार?"

5.5 निष्कर्ष

हिन्दी तथा मलयालम की पहेलियों के विश्लेषण से पता चलता है कि दोनों भाषाओं में अनेक पहेलियाँ समान रूप में देखने को मिलती हैं। क्षेत्र तथा वातावरण की भिन्नता के कारण ही कुछ अन्तर पाये जाते हैं।

विषय की दृष्टि से समानताएँ दिखानेवाली अनेक पहेलियाँ हिन्दी और मलयालम में हैं। मानव की साधारण सी साधारण वस्तु भी पहेलियों का विषय रहा है। पहेलियों के विषय में पर्याप्त विविधता और व्यापकता भी है। इसमें वर्णित वस्तुओं की विशेषताओं को समान रूप से प्रस्तुत किया गया है। प्रश्न पूछने की तरीका भी समान है। पहेलियों में जिस वस्तु का वर्णन होता हैं उसके रूप, गुण, रंग, आकार-प्रकार उपयोग या स्वभाव के सम्बन्ध में संकेत मिलता है।

पहेलियों में मानव का चिन्तन और विश्लेषण छिपा हुआ है। हर वस्तु के प्रति पैनी नज़र तथा कल्पना प्रवणता ही पहेलियों के जन्म का कारण है। इन पहेलियों के बूझने-बूझाने से बच्चों में बुद्धिविकास होता है तथा बच्चों को अनेक जानकारियाँ प्राप्त होती हैं। पहेलियों द्वारा बच्चों में कल्पनाशक्ति का विकास भी होता है। पहेलियाँ समय के रीतेपन को भी दूर करती हैं।

पहेलियों की अनेक भूमिकाएँ हैं जिन्में प्रमुख तथा सामान्यतः उल्लेख करनेवाली चार भूमिकाएँ हैं - प्रतिफलन, शिक्षण, बुद्धि परीक्षा तथा मनोरंजन। इनमें कल्पना की सूक्ष्मातिसूक्ष्म अभिव्यक्ति मिलती है। हिन्दी तथा मलयालम की पहेलियों में यह विशेषताएँ विद्यमान है। दोनों भाषाओं की

पहेलियों में प्रायः सार्थक शब्दों का ही प्रयोग किया है जिससे सूचित वस्तुओं का संकेत मिलता है लेकिन एक प्रकार की अस्पष्टता भी दिखायी देता है जिससे वस्तु को बहुत जल्दी पकड न सकें।

संक्षेप में पहेलियाँ प्रायः पद्यमय हैं। इनमें वर्षों का चिन्तन, मनन तथा विश्लेषण छिपा है। पहेलियों में छिपांने की प्रवृत्ति रहती है ताकि बुद्धि कौशल के द्वारा ही मर्म को जाना जा सके। इसके द्वारा संस्कृति की अभिव्यक्ति भी होती है। इसमें क्षेत्रीय विशेषताएं जुडी रहती हैं। पहेलियाँ ज्ञान की अमूल्य निधि हैं। ये गाँवों की कुटियों से लेकर शहरों की हवेलियों तक लोक तथा संस्कृत में विकसित होकर लोगों की सूझबूझ एवं प्रभुत्वन्नमतित्व को परखती आ रही हैं। बच्चों को पहेलियाँ बूझना आज भी प्रिय खेल हैं। आधुनिक जीवन सन्दर्भ में इसका महत्व थोडा घट गया है। फिर भी पहेलियों का निर्माण आज भी हो रहा है।

.....📖.....

उपसंहार

किसी भी देश की संस्कृति का अध्ययन करना हो तो उस देश के लोकसाहित्य का आश्रय लेना पड़ता है क्योंकि लोकजीवन की समस्त विशेषताएँ लोक साहित्य में समाहित हैं।

भारतीय संस्कृति कन्याकुमारी से काश्मीर तक प्रायः समान भाव लेकर विभिन्न भाषाओं की लिबास पहनकर अनेक रूप में दिखाई देती है। किन्तु परस्पर अपरिचित होने के कारण यह तत्व प्रायः उपेक्षित रह जाता है। इस एकता को उजागर कर भावात्मक एकता बनाये रखने में तुलनात्मक शोध का अपना महत्व है। भारत के दो छोर की दो भाषाएँ - हिन्दी तथा मलयालम के लोकसाहित्य से बालसाहित्य को खोज निकालकर तथा इनके विश्लेषणात्मक अध्ययन द्वारा इनमें अन्तर्निहित गुणवत्ता को समकालीन समाज के प्रयोजन हेतु पुष्ट प्रमाणों द्वारा प्रस्तुत करंना ही इस शोध का लक्ष्य रहा है।

बच्चों के लिए लिखित और प्रयुक्त साहित्य बालसाहित्य है। यह बच्चों को मनोरंजन के साथ साथ ज्ञानवर्धन भी कराता है। बालसाहित्य की भाषा तथा विषय दोनों बच्चों के अनुकूल सरल होते हैं। वास्तव में बालसाहित्य बच्चों में उन अंकुरों को पुष्ट करता है जो बडा होकर उन्हें जीवन के मूल्य एवं सत्य को पहचानने में सहायता देता है। बालसाहित्य स्कूली साहित्य से भिन्न होते हैं। स्कूली पाठ्यपुस्तकें एक परिनिष्ठित योजना एवं सीमित योजना के

अन्तर्गत तैयार की जाती हैं, और बालसाहित्य सीमातीत। उससे बच्चों को अपनी रुचि के अनुसार चयन किया जा सकता है। इसप्रकार बालसाहित्य का अपना अस्तित्व और महत्व है।

किसी भी भाषा में बालसाहित्य सृजन के मुख्य ध्येय मनोरंजन, उपदेशात्मकता, कल्पनाओं का विकास करना, पात्रों के ज़रिये नैतिक मूल्यों से परिचित करना, यथार्थ का बोध कराना, उत्सुकता को बढाने के साथ साथ जिज्ञासा की तृप्ति कराना, विभिन्न संस्कृतियों में जीवन के मूल्यों तथा धाराओं का परिचित कराना आदि है।

अधिकाँश विद्वानों ने बालगीत, बालकथाएँ, बालनाटक बाल उपन्यास, आत्मकथा, पहेलियाँ, बालजीवनी आदि को बालसाहित्य के विभिन्न प्रकार माने हैं। लोकसाहित्य के अन्तर्गत इनमें से बालगीत, बालकथाएँ, पहेलियाँ आदि आते हैं।

हिन्दी तथा मलयालम के बालसाहित्य का मूलश्रोत लोकसाहित्य एवं संस्कृत साहित्य है। दोनों भाषाओं में सबसे पहले की बालसाहित्य रचनाएँ इन्हीं का पुनराख्यान थीं। आधुनिक काल में ही हिन्दी तथा मलयालम में स्वतंत्र रूप में बालसाहित्य का प्रणयन आरंभ हुआ था। जिसप्रकार हिन्दी में भारतेन्दु ने स्वतंत्र रूप में बालसाहित्य-लेखन की सूत्रपात की उसीप्रकार मलयालम में केरळवर्मा वलियकोयित्तम्पुरान ने बालसाहित्य को स्वतंत्र अस्तित्व देने की पहल शुरू की। लेकिन भारतेन्दु तथा केरळवर्मा के युग में पाठ्यपुस्तकों की रचनाएँ ही अधिक हुईं। भारतेन्दु के समय हिन्दी-उर्दू संघर्ष चल रहा था

तथा भारतेन्दु ने हिन्दी को आगे बढाने में सराहनीय कार्य किया। उनके युग में ज़्यादात्तर उपदेशात्मक तथा धार्मिक कथाओं से युक्त बाल साहित्य ही लिखा गया था। उन्होंने संस्कृत साहित्य को अधिक स्थान दिया तथा विदेशी साहित्य को उतनी प्रमुखता नहीं दी। लेकिन केरळवर्मा ने विदेशी साहित्य के अनुवाद करने की प्रेरणा दी।

भारतेन्दु युग के बाद हिन्दी बालसाहित्य द्विवेदी युग से गुज़रकर स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद फली-फूली। मलयालम में भी कवित्रय के युग से गुज़रकर स्वतंत्रताप्राप्ति के बाद बालसाहित्य की धारा को काफी विस्तार मिला। आधुनिक काल में हिन्दी तथा मलयालम के बालसाहित्य को स्वतंत्र अस्तित्व प्राप्त हुआ।

आधुनिक काल में बच्चों के लिए उपन्यास और नाटकों की रचनाएँ भी स्वतंत्र रूप से हुई। हिन्दी तथा मलयालम में बहुत अधिक उपन्यास निकले हैं लेकिन नाटक दोनों भाषाओं में बहुत कम ही निकले हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के बाल साहित्य की सबसे बडी उपलब्धि वैज्ञानिक बालसाहित्य का सृजन है। आजकल हिन्दी तथा मलयालम में बच्चों के लिए बहुत अधिक पुस्तकें तथा पत्रिकाएँ निकल रही हैं।

इसप्रकार हिन्दी तथा मलयालम में बालसाहित्य का विकास प्रवृत्तिगत दृष्टि से समान रूप में हुआ है। लेकिन हिन्दी की तुलना में मलयालम में बालसाहित्य-रचनाएँ परिमाण में कम है।

लोक अभिव्यक्ति ही मुखर होकर लोकसाहित्य का रूप लेती है, जिसमें उसके सुख-दुःख का स्पन्दन स्पष्ट सुनाई पड़ता है। लोक-कल्पना

मानव के सुख-दुःख में ही सीमित नही है, अपितु पशु-पक्षी और पेड-पौधें भी मनुष्य के सुख-दुःख में साझीदार बन जाते हैं। मनुष्य का जन्मजात संबंध उसके लोक-जीवन से ही होता है। लोक-मानव अपने जीवन के विविध क्षेत्रों में जितनी धूप-छाँह देखता है उसका प्रतिबिंब ही लोक साहित्य है। यही कारण है कि लोक साहित्य लोक-मानव को संवेदनात्मक अनुभूति प्रदान करता है।

लोकसाहित्य लोकजीवन की यथार्थ अभिव्यक्ति है। प्रत्येक देश के साहित्य का आरंभिक रूप लोकसाहित्य में ही मिलता है। लोकसाहित्य की प्रासंगिकता इसमें हैं कि यह हमें व्यावहारिक ज्ञान देता है।

'लोक' एवं 'साहित्य' मिलकर लोकसाहित्य बनता है। विद्वानों ने 'लोक' की परिभाषा भिन्न भिन्न प्रकार की है। डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय जैसे विद्वानों ने आम जनता के रूप में 'लोक' का प्रयोग किया है। मलयालम में श्री राघवन पय्यनाडु ने भी आम मानवों के लिए 'लोक' शब्द का प्रयोग किया है। भारत में आर्यों के आगमन के उपरान्त आर्य एवं आर्येतर जातियों के बीच वेद एवं वेदेतर या शास्त्रेतर स्थिति का आविर्भाव हुआ। उस समय आम लोग वेद या संस्कृत पढ़ने, जानने की मनाही थी। इसलिए उन्हें संस्कृत शून्य या असंस्कृत कहा। उन्हें अनुभव के आधार पर जो भी ज्ञान मिला वह लोकसाहित्य एवं लोककलाओं के माध्यम से उन्होंने पीढ़ियों तक पहूँचाया। आगे चलकर 'लोक' शब्द शास्त्रेतर संस्कृति की संकुचित सीमा तोडकर ऊँचा उठ गया। संस्कृत और लोकसाहित्य घुल-मिल गया।

लोकसंस्कृति का एक अंग है लोक साहित्य। लोकसंस्कृति में लोकजीवन सम्बन्धी सभी वस्तुएँ आती हैं। लोकजीवन का यथार्थ चित्रण

लोकसाहित्य में मिलता है। मलयालम में लोकसाहित्य के लिए 'नाटोटि साहित्यम्' का प्रयोग है।

लोक साहित्य मुख्य रूप से अलिखित होता है, जो लोककंठ में जीवित रहता है लेकिन आज लोकसाहित्य को लिपिबद्ध करने का प्रयास हर कहीं हो रहा है क्योंकि इसमें अनेक जानकारियाँ ऐसी हैं जो पुस्तकीय ज्ञान के परे हैं। इसलिए लोकसाहित्य का बहुत अधिक महत्व है। लोकसाहित्य की अनेक विशेषताएँ हैं - अपनी मौखिक रूप के कारण लोकसाहित्य परिवर्तनीय है। लोकसाहित्य व्यक्तिविशेष की कृति नहीं यह समाज की ही अभिव्यक्ति है। यह जिन जिन व्यक्तियों से गुज़रता है उनकी मौलिक देन की इसमें सम्मिलित हैं। आचरण नियम, नैतिक तथा सामाजिक मूल्य सम्बन्धी जानकारियाँ आदि लोकसाहित्य के माध्यम से मिलती हैं। समाज में प्रचलित कुरीतियों का चित्रण भी लोकसाहित्य में मिलता हैं। कहीं कहीं इसमें सामाजिक व्यवस्था पर तीखा व्यंग्य भी है। लोकसाहित्य की अनेक सांस्कृतिक विशेषताएँ हैं। प्रत्येक प्रदेश की समाज में प्रचलित अनुष्ठानों और उत्सवों का चित्रण वहाँ के लोकसाहित्य में मिलता है। हिन्दी तथा मलयालम में लोकगीत, लोक कथाएँ, लोक गाथा, लोक नाट्य तथा प्रकीर्ण साहित्य आदि अनेक विधाओं में लोक साहित्य प्राप्त है। इसमें सरलता, सहजता, मार्मिकता, संस्कृति का चित्रण, हास-परिहास, व्यंग्य विनोद आदि अनेक तत्व विद्यमान हैं। इसप्रकार हिन्दी और मलयालम में लोकसाहित्य अत्यन्त समृद्ध है।

हिन्दी लोकसाहित्य के अन्तर्गत खडीबोली, ब्रज, भोजपुरी, बुन्देलखण्डी, मालवी, कुमाऊँनी, अवधी, निंमाडी आदि अनेक जन भाषाओं के

साहित्य आते हैं। क्योंकि हिन्दी प्रदेश बहुत विशाल है। उपर्युक्त भाषाएँ हिन्दी प्रदेश की विभिन्न जनभाषाएँ हैं। इसलिए हिन्दी लोक साहित्य बहुत विशाल तथा बहुत प्राचीन भी है। लेकिन इन भाषाओं के लोकसाहित्य के विश्लेषण से यह पता चलता है कि हिन्दी की तुलना में मलयालम लोकसाहित्य में समाज में प्रचलित कुरीतियों का चित्रण अधिक तीक्ष्ण रूप से अंकित है। कहीं कहीं मलयालम लोकसाहित्य के अन्तर्गत आनेवाले बालसाहित्य में भी इसका झलक मिलती है।

हिन्दी और मलयालम के लोक साहित्य में बच्चों के अनुरूप अनेक गीत, कहानियाँ और पहेलियाँ प्रचलित है जो आज भी बच्चों को मनोरंजन के साथ ज्ञान भी देते हैं। इन लोरियों से लेकर अनेक बालगीत लोकगीतों के अन्तर्गत है। लोककथाओं में अधिकाँश कहानियाँ सहज एवं सरल हैं तथा बच्चों का मनोविज्ञान के अनुकूल भी हैं। पहेलियाँ भी बच्चों को बहुत पसन्द हैं। पहेलियों के उत्तर बताते वक्त बच्चे स्वयं को राजा मानने लगते हैं। लोकसाहित्य उनमें आत्मविश्वास पैदा किया करता है और वस्तुओं के प्रति सूक्ष्म दृष्टि रखने के लिए प्रेरणा देता है और उनकी बुद्धि-विकास भी करता है। इसप्रकार लोकसाहित्य के ये अमूल्य रत्न आज भी बच्चों के लिए बहुत लाभदायक हैं। बच्चों के हृदय पर शासन करने की क्षमता उन गीतों में हैं जो लोकगीतों के अन्तर्गत आते हैं। लोकगीत हृदय के सहज उद्‌गार है। इनमें जनपदीय जीवन का वास्तविक स्वरूप प्रतिबिंबित होता है। बालगीत में सहज ही बालमनोविज्ञान का सहयोग हैं। ये गीत बच्चों को भावना जगत में विचरण

कराते हैं। बालसाहित्य की अन्य विधाओं की तुलना में सबसे छोटे बच्चों को बालगीत ही अधिक पसन्द हैं।

हिन्दी तथा मलयालम के बालगीतों का मूलस्रोत लोकगीत हैं। लोकगीतों में बालगीत नाम से पृथक कुछ न् होते हुए भी इसमें बच्चों के लिए अनेक गीत ज़रूर है। डॉ. सत्यागुप्त आदि अनेक विद्वानों ने लोकगीतों के प्रकारों में विविध गीतों के अन्तर्गत बालंगीतों को रखा है। हिन्दी तथा मलयालम में लोरियाँ या पालने के गीत, शिशुगीत, खेल के गीत, पशु-पक्षियों तथा पेड-पौधों से सम्बन्धित गीत, ऋतुगीत या प्रकृति सम्बन्धी गीत आदि भी पाये जाते हैं। लोरियाँ या पालने के गीत बच्चों को सुलाने के लिए गाते हैं। नाम से ही स्पष्ट है कि पशु-पक्षियों तथा पेड़ पौधों से सम्बन्धित गीतों में इन्हीं का चित्रण है। खेल के गीत खेलते समय गाते है। ऋतुगीत या प्रकृति सम्बन्धी गीतों में विभिन्न ऋतुओं, बारिश, पानी, जल, वायु आदि प्रकृति सम्बन्धी बातों का वर्णन हैं। हिन्दी तथा मलयालम में ये सभी विषय से सम्बन्धित गीत प्राप्त हैं।

कथ्य और शिल्प कीं दृष्टि से हिन्दी और मलयालम के बालगीतों में बहुत अधिक समानताएँ पायी जाती हैं। बच्चों के लिए गीतों का निर्माण करते समय भाषा का सहज, सुन्दर, शुद्ध तथा प्रभावात्मक होना स्वाभाविक है। सभी भाषाओं में बालगीतों की शब्दावली सरल मधुर और स्वाभाविक होती है। बालगीतों के शब्दों में वर्ण-विन्यास भी समान रूप से है। ऐसे वर्णों को दोनों भाषाओं में चुन लिया गया है कि जिसमें कोमलता और किलकारियाँ भरा है। उससे माधुर्य बरसता है तथा रस झलकता है। हिन्दी में राजा, मुन्ना, बबुआ आदि शब्दों का खूब प्रयोग है तो मलयालम लोरियों में वावा, कुञ्ञु, ओमना,

तंकम् आदि शब्दों का प्रयोग है जो बिलकुल बाल मानसिकता के अनुकूल है। उसी प्रकार भावों की अभिव्यक्ति भी दोनों भाषाओं में एक समान है। इसप्रकार हिन्दी तथा मलयालम के लोकगीतात्मक बालगीतों में समानताएँ ही, अधिक पायी जाती हैं। क्षेत्र तथा वातावरण के कारण जो भिन्नताएँ है वे ही दोनों भाषाओं के बालगीतों में हैं। हिन्दी की तुलना में मलयालम में वास्तविक जीवन की वेदनाओं को वाणी देने का प्रयास बालगीतों में भी व्याप्त है। लोरियों में माँ अपने दुःख का ही गायन पालने के झूलने के ताल में करती है जिससे माँ अपने दुःख को कम कर सकें तथा बच्चा इसके ताल में मुग्ध होकर सो सकें।

बालकथाएँ सीधे एवं सहज ढंग से मनोरंजक एवं कुशलपूर्ण वातावरण में बच्चों को आकर्षित करके उनकी मानसिक भूमि में उचित ज्ञान का बीज वितरित करती है और उनको संस्कार संपन्न बनाती हैं। बहुत प्राचीनकाल से ही जीवन में घटित घटनाओं और जीवनानुभवों को एक दूसरे से कहने सुनने की परंपरा चली आ रही है। कहानियों का जन्म मानवसंस्कृति के आरंभ से ही माना जाता है। नानी की कहानियाँ अगली पीढ़ी को पिछली पीढ़ी से मूल्यवान विरासत के रूप में मिलती रहीं। मलयालम में इसे 'मुत्तश्शिक्कथकळ्' कहते हैं। ये कहानियाँ बच्चों को मनोरंजन तथा उपदेश देती हैं। संस्कृत साहित्य में रचित पंचतंत्र, बृहत्कथा, कथासरितसागर आदि की कहानियाँ भी लोककथाओं के रूप में बच्चों को मिलीं।

लोकसाहित्य के अन्तर्गत आनेवाली अधिकाँश कहानियाँ बच्चों के मनोनुकूल हैं। फिर भी विषय की दृष्टि से लोककथात्मक बालकथाओं को

नीतिपरक कहानियाँ, पौराणिक कहानियाँ, ऐतिहासिक कहानियाँ और मनोरंजक कथाएँ आदि चार प्राकारों में विभक्त किया जा सकता है।

बचपन से ही बच्चों को नीति का उपदेश देना नीतिकथाओं का उद्देश्य है। हिन्दी तथा मलयालम में पंचतंत्र, हितोपदेश आदि की अनेक नीतिकथाएँ लोकजीवन में प्रचलित हैं इसमें पात्रों के रूप में पशु-पक्षी ही आते हैं। पुराण तथा इतिहास की कथाएँ भी लोक में प्रचलित हैं। पुराण की कहानियों में शिव-पार्वती से सम्बन्धित कहानियाँ अधिक प्रचलित हैं। ऐतिहासिक लोककथाओं में विक्रमादित्य, कालिदास, पेरुंतच्चन, नाराणत्तु भ्रान्तन आदि ऐतिहासिक पात्रों की कहानियाँ हैं जो बहुत ही बालप्रिय हैं। मनोरंजक कहानियों में परी कथाएँ, भूत-प्रेत की कहानियाँ, होजा राजा, बीरबल आदि की कहानियाँ आती हैं।

हिन्दी तथा मलयालम के लोककथात्मक बालकथाओं के अध्ययन से यह बात जाहिर होती है। हिन्दी तथा मलयालम में अनेक नीतिकथाएँ, पौराणिक कथाएँ, पशु-पक्षी सम्बन्धी कथाएँ, परी कथाएँ आदि समान रूप से मिलती हैं। हिन्दी तथा मलयालम में पशु-पक्षी सम्बन्धी कहानियों के माध्यम से बच्चों को बडा प्रोत्साहन तथा शिक्षा मिलती है। इन कथाओं के छोटे-छोटे चरित्रों से बच्चे अमूर्त मित्रता स्थापित कर लेते हैं तथा उसी रूप में सोचने लगते हैं। अभिप्रायों का विस्तार लोक कथाओं की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता है जो देश-काल की सीमाओं से सर्वथा मुक्त है। इसलिए इनमें समानताएं ही अधिक दृष्टिगत होती है। प्रवृत्ति की दृष्टि से भी हिन्दी तथा मलयालम की बालकथाओं में समानताएँ अधिक हैं।

नीति कथाओं के सन्दर्भ में पंचतंत्र, हितोपदेश, जातक कथाएँ, कथासरितसागर आदि की कहानियाँ हिन्दी तथा मलयालम में लोक कथाओं के रूप में समान रूप से प्रचलित हैं। नाम, स्थान आदि में ही थोडी भिन्नताएँ हैं। पौराणिक कहानियों में मावेली से सम्बन्धित कहानियाँ केरल में सबसे अधिक प्रचलित हैं। हिन्दी में ये कहानियाँ नहीं हैं। शिव, पार्वती, अर्जुन आदि पुराण पात्रों से सम्बन्धित कहानियाँ दोनों भाषाओं में समान रूप से मिलती हैं। ऐतिहासिक लोककथाओं में स्थानीय नायकों से सम्बन्धित कहानियाँ मलयालम में बहुतायत से मिलती हैं जो शोषण और अन्याय के विरुद्ध खडे थे। हिन्दी में इसप्रकार की कहानियाँ कम हैं। मनोरंजक कहानियों में परीकथाएँ, हास्य-व्यंग्य कथाएँ आदि हिन्दी और मलयालम में समान रूप से प्रचलित हैं। जो भी हो इसमें सन्देह नहीं है कि बालकथाएँ आज भी अत्यधिक प्रचलित और बहुचर्चित विधा है।

पहेलियों को अधिकाँश विद्वानों ने प्रकीर्ण साहित्य के अन्तर्गत रखा है। पहेलियाँ मनोरंजक और ज्ञानवर्धक हैं। वस्तु के गुण, आकार या उससे सम्बन्धित बातें कहकर प्रश्न पूछने की रीति पहेली है। गोपनीयता पहेली की प्रमुख प्रवृत्ति है। पहेलियाँ अच्छा बौद्धिक व्यायाम हैं।

बच्चों की रुचि के अनुकूल पहेलियों को सात वर्गों में विभक्त किया जा सकता है (1) पशु-पक्षियों से सम्बन्धित पहेलियाँ जिनमें पशु-पक्षियों से सम्बन्धित बातें पूछी जाती हैं। (2) फल फूल तथा पेड-पौधों से सम्बन्धित पहेलियाँ जिनमें इनसे सम्बन्धित प्रश्न पूछा जाता है। (3) प्रकृति सम्बन्धी पहेलियाँ जिनमें प्रकृति के विभिन्न रूपों, विभिन्न ऋतुओं आदि से

सम्बन्धित प्रश्न पूछे जाते हैं। (4) शरीर एवं आहार सम्बन्धी पहेलियाँ जिनमें शरीर के विभिन्न अवयव एवं आहार सामग्री सम्बन्धी बातें पूछी जाती हैं। (5) घर गृहस्थी तथा खेल खिलौने सम्बन्धी पहेलियाँ - जिनमें घर की विभिन्न वस्तुओं, परिवार, खेल के विभिन्न चीज़ों आदि से सम्बन्धित प्रश्न पूछे जाते हैं। (6) विज्ञान-गणित तथा इतिहास-पुराण सम्बन्धी पहेलियाँ जिनमें वैज्ञानिक बातें, गणित सम्बन्धी बातें, इतिहास तथा पुराण के विभिन्न पात्रों आदि से सम्बन्धित प्रश्न पूछे जाते हैं।

हिन्दी तथा मलयालम की इन पहेलियों के विश्लेषण से पता चलता है कि दोनों भाषाओं में अनेक पहेलियाँ हर दृष्टि से समान रूप में देखने को मिलती हैं। विषय की दृष्टि से समानता दिखानेवाली पहेलियाँ दोनों भाषाओं में हैं। मानव की साधारण सी साधारण वस्तु भी पहेलियों का विषय रहा है। इन पहेलियों के विषय में पर्याप्त विविधता और व्यापकता भी है। प्रवृत्तिगत दृष्टि से भी हिन्दी और मलयालम की पहेलियों में कई समानताएँ देखने को मिलती हैं। क्षेत्रीय भिन्नताओं के कारण आनेवाली भिन्नताएँ ही इन दोनों भाषाओं के पहेलियों में पार्थक्य खींचनेवाले तत्व हैं। पहेलियों का निर्माण आज भी हो रहा है। बच्चों को पहेलियाँ बुझाना प्रिय खेल ही है। इनमें वर्षों का चिन्तन, मनन तथा विश्लेषण छिपा है।

संक्षेप में बालसाहित्य बच्चों को मार्गदर्शन करता है। उन्हें वैचारिक एवं भावात्मक दृष्टि से समृद्धि प्रदान करता है। उनमें मानवीय गुणों मानवोचित प्रवृत्तियों के विकास का प्रयत्न निहित है। प्राचीनकाल से ही यह प्रयत्न प्रारंभ

हुआ था। इसका सबूत है लोक साहित्य। हिन्दी तथा मलयालम के लोकसाहित्य में बच्चों के लिए प्रचुर मात्रा में सामग्रियाँ है जो गीत, कहानियाँ, पहेलियाँ आदि के रूप में मौजूद हैं। अध्ययन विश्लेषण से समानताएँ ही अधिक रूप में मिलती है। बच्चों का स्वभाव हर कहीं एक जैसा है। इसलिए उनके लिए रचित साहित्य की प्रकृति भी समान है। उदाहरण के लिए संसार के किसी भी कोने में लोरियों के प्रति आकर्षित होना, उसके ताल में मुग्ध होकर बच्चों का सो जाना, खाने को भी भूलकर कहानियाँ सुनना, अपने आमने-सामने दिखायी देनेवाले पशु-पक्षियों के प्रति आकर्षित होना, खेल को पसन्द करना आदि बच्चों की विशेषताएँ हैं। इसलिए बच्चों के इस मनोविज्ञान को पहचानकर गठनेवाले साहित्य में भी समानताएँ अधिक होना स्वाभाविक ही हैं।

दोनों भाषाओं में बालसाहित्य के विषय चयन और प्रस्तुति में समानताएँ हैं। भाषा तथा भाव सरल एवं सहज है। लय एवं शब्दचयन की दृष्टि से भी दोनों में समानताएँ हैं। दोनों भाषाओं में बालसाहित्य का लक्ष्य मनोरंजन के साथ-साथ ज्ञानवर्धन कराना, कल्पनाशीलता को बढावा देना, कुतूहलता का प्रवर्धन करना आदि है। दोनों में सामाजिक एवं मानवीय मूल्यों को बहुत अधिक महत्व दिया गया है।

उत्तर भारत और दक्षिण भारत के लोगों के रहन-सहन, खान-पान, आचार-अनुष्ठान आदि बहुत भिन्न हैं। ये भिन्नताएँ इन प्रदेशों के लोकसाहित्य में देखी जा सकती है। उत्तर भारत के लोग गेहूँ अधिक खाते हैं तो दक्षिण भारत के लोग चावल खाते हैं। इसलिए हिन्दी में गेहूँ से सम्बन्धित बातें बालसाहित्य में अधिक पाये जाते है तथा मलयालम में चावल से सम्बन्धित

बातें। उसीप्रकार हिन्दी प्रदेश में होली, दीपावली आदि त्योहार खूब मनाये जाते है तो केरल में ओणम, विषु जैसे त्योहार। इसलिए इन दोनों प्रदेशों में इनसे सम्बन्धित गीत, कहानियाँ तथा पहेलियाँ अधिक मिलती हैं। केरल का मौसम और ऋतुओं की स्थिति भी उत्तर भारत से थोडा भिन्न है इसलिए इनसे सम्बन्धित रचनाओं में भी यह भिन्नताएँ हैं। उत्तर और दक्षिण की सामाजिक व्यवस्था में भी कुछ भिन्नताएँ हैं। ये भिन्नताएँ दोनों प्रदेश के साहित्य में भी है।

ये क्षेत्रीय भिन्नताओं को छोडकर बाकी सभी दृष्टियों से हिन्दी और मलयालम के बालसाहित्य में समानताएँ ही ज़्यादा हैं। बाल-साहित्य बच्चे मनोरंजन के लिए ही पढ़ते है लेकिन ये परोक्ष रूप में उनके चारित्रिक विकास में सहायक होते है और उन्हें सही मायने में इनसान बनाने की दिशा में आगे बढाते हैं। बालसाहित्य बच्चों को उस दिशा में बढाते है जो उनके लिए अच्छे हो, एक अच्छा युवक बनने के लिए तथा इसके ज़रिये स्वस्थ परिवार और स्वस्थ समाज के गठन के लिए ये परोक्ष रूप में सहायक सिद्ध होते हैं। इसमें स्थानभेद या भाषा भेद का कोई स्थान नहीं होता। सब कहीं एक प्रकार का भाव तथा अनुभूतियाँ मिलती है जो स्वस्थ भविष्य को रूपायित करने में सहायक हैं।

.....📖.....

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

हिन्दी

1 आनन्द प्रकाश जैन - तेलंगाना की लोककथाएँ
आत्माराम एण्ड सन्स,
दिल्ली-6, प्र.सं 1957

2. इरशाद अलि - मुस्लिम लोकगीतों का विवेचनात्मक
अध्ययन
अनुभव प्रकाशन, दिल्ली
प्र.सं. 1985

3. ऋचा - महात्मा बुद्ध
पुस्तकलोक, दिल्ली
प्र.सं: 2002

4. ऋचा - चतुर मौलवी
पुस्तकलोक, दिल्ली
प्र.सं 2004

5. डॉ. एन.आर एलेटम - केरल की संस्कृति पर केरल की
लोकगीतों का प्रभाव
जवाहर पुस्तकालय, मथुरा
प्र.सं 1991

6. कमला दीक्षित - महाराष्ट्र की लोककथाएँ
राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली-6
प्र.सं 1978

7 (एन.पी) कुट्टनपिल्लै - पौराणिक सन्दर्भ कोश, किरण प्रकाशन
हैदराबाद, प्र.सं. 1984 अक्तू

8. कुसुम डोंभाल - हिन्दी बालकाव्यों में प्रतीक एवं कल्पना तत्व
लाइब्ररी बुक सेन्टर, नई दिल्ली
प्र.सं. 1990

9. कृष्णदेव उपाध्याय - भोजपुरी लोकगीत (द्वितीय भाग)
हिन्दी साहित्य सम्मेलन
द्वि.सं. 1966

10. कृष्णदेव उपाध्याय - भोजंपुरी लोकसाहित्य का अध्ययन
हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय
प्र.सं. 1960

11 कृष्णदेव उपाध्याय - लोकसाहित्य की भूमिका
साहित्य भवन प्राईवेट लिमिटेड
इलाहाबाद, प्र.सं 1957

12. कृष्णदेव उपाध्याय - हिन्दी प्रदेश के लोकगीत
साहित्य भवन प्राईवेट लिमिटेड
इलाहाबाद, प्र.सं 1990

13. चन्द्र जैन - लोककथाविज्ञान
मंगल प्रकाशन, जयपूर
प्र.सं 1977

14 चित्रामुद्गल - जंगल का राज
प्रभात प्रकाशन, दिल्ली
प्र.सं 1987

15. चित्रामुद्गल - जीवक
साहित्य प्रकाशन, दिल्ली
प्र.सं. 1987

16. चित्रामुद्गल - मणिमेखलै
साहित्य प्रकाशन, दिल्ली
प्र.सं 2002

17 डॉ जगमल सिंह - राजस्थानी लोकगीतों के विविध रूप
विनसर प्रकाशन, राजस्थान
प्र.सं. 1989

18. जगदीश प्रसाद पियूष - लोक साहित्य के आयाम
लोक साहित्य संस्थान, दिल्ली
प्र.सं. 1978

19. जयप्रकाश भारती (सं) - भारतीय बालसाहित्य का इतिहास
अखिल भारती, दिल्ली 110006
प्र.सं 2002

20. दिनेश्वर प्रसाद - लोक साहित्य और संस्कृति
लोक भारती प्रकाशन
नई दिल्ली
प्र.सं 1973

21 दिनेश सिंह - यहाँ और वहाँ (नव साक्षरों केलिए)
साहित्य प्रकाशन, दिल्ली
प्र.सं. 1994

22. दुर्गा भागवत - भारतीय लोक साहित्य की रूपरेखा
भूमिका प्रकाशन
प्र.सं. 1991

23. देवी शंकर अवस्थी - हरियाणा की लोक कथाएँ
राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली-6
प्र.सं. 1978

24. डॉ. धर्मेन्द्र शर्मा - पंचतंत्र की सामाजिक एवं राजनैतिक
दशा ऐतिहासिक अध्ययन
प्रतिभा प्रकाशन
प्र.सं. 1995

25. डॉ धर्म सिंह - एक रहे नेक रहे (नव साक्षरों केलिए)
साहित्य प्रकाशन
दिल्ली, प्र.सं. 1998

26. नन्दनलाल चत्ता - काश्मीर की लोककथाएँ
आत्माराम एण्ड सन्स
दिल्ली, प्र.सं 1958

27 नन्दिनी - स्वर्ग की यात्रा, शब्दलोक
दिल्ली, प्र.सं. 2004

28. निर्मलवर्मा (सं)
कमलकिशोर गोयनका - प्रेमचन्द रचना संचयन
साहित्य अकादमी, नई दिल्ली
प्र.सं. 1994

29. निरंकार देव सेवक - बालगीत साहित्य
किताब महल, इलाहाबाद
प्र.सं 1966

30. पार्वती - पराक्रमी शंखचूड़
पुस्तकालोक, दिल्ली
प्र.सं 2004

31 पूर्णिमा श्रीवास्तव - लोक गीतों में समाज
मंगलप्रकाशन, दिल्ली
प्र.सं. 1991

32. प्रकाश मनु - हिन्दी बालकविता का इतिहास
मेधा बुक्स, दिल्ली
प्र.सं 2003

33. प्रकाशवती - बिहार की लोक कथाएँ
राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली
प्र.सं. 1977

34. बंशीराम शर्मा - किन्नर लोक साहित्य
ललित प्रकाशन
प्र.सं 1976

35 बद्री नारायण - लोक संस्कृति और इतिहास
लोक भारती प्रकाशन
दिल्ली, प्र.सं 1994

36. डॉ भिक्षु कौण्डिल्य - मिसिंग जनजाति का लोकसाहित्य
आर्य प्रकाशन मण्डल, दिल्ली
प्र.सं 1984

37 डॉ. भुवनेश्वर अनुज - नागपुरी लोक साहित्य
जय भारती प्रकाशन
इलाहाबाद, प्र.सं 1992

38. मधुर उप्रेती - ब्रज लोक साहित्य
इन्दु प्रकाशन, अचल मार्ग
अलिगढ, प्र.सं. 1984

39 महेश गुप्त - लोकसाहित्य का शास्त्रीय अध्ययन
शिल्पायन, दिल्ली-32
प्र.सं. 1999

40. रमेश बक्षी अचल शर्मा - मध्यप्रदेश की लोक कथाएँ
राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली
प्र.सं. 1978

41 राम चन्द्र देव - मलयालम साहित्य
आशा प्रकाशन गृह
करौला बाग, दिल्ली-5

42. रामधारी सिंह दिनकर - धूप छाँह
उदयांचल, पटना-4
प्र. सं. 1956

43. डॉ. राजेन्द्र प्रसाद सिंह - हिन्दी पहेलियों का सांस्कृतिक अध्ययन
भूमिका प्रकाशन, दरियागंज
नई दिल्ली, प्र.सं. 1991

44. राहुल - इन्साफ की जीत
अक्षरम्, दिल्ली
प्र.सं 2002

45. राहुल - शहीद भगत सिंह
अक्षरम्, दिल्ली
प्र.सं 2004

46. राहुल सांकृत्यायन - हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास
नागरी प्रचारणी सभा
काशी, प्र.सं 1971

47 वसन्त निरगुणे - लोक संस्कृति
मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी
प्र.सं. 1997

48. विक्रम - एकता की शक्ति
अक्षरम, दिल्ली
प्र.सं. 2002

49. विजयलक्ष्मी सिन्हा - आधुनिक हिन्दी में बालसाहित्य का विकास
साहित्यवाणी, इलाहाबाद
प्र.सं. 1986

50. विश्वनाथ अय्यर (एन.इ.) - केरल की लोक कथाएँ
राजपाल एण्ड सन्स
दिल्ली, प्र.सं. 1978

51 विश्वसाहित्य - पहेलियाँ
विश्व,विजय प्राईवेट लिमिटेड
प्र.सं. 2004

52. विद्या चौहान - लोक साहित्य
हिन्दुस्थानी अकादमी
इलाहाबाद
प्र.सं 1965

53. वीरेन्द्र जैन - सर्वेश्वर दयाल सक्सेना
ग्रन्थावली, खण्ड-4
वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली
प्र.सं: 2004

54. वृन्दावन लाल वर्मा - बुन्देलखण्ड के लोकगीत
मयूर प्रकाशन प्राईवेट लिमिटेड
झाँसी, तृ.सं 1974

55. शान्ती भट्टाचार्य - मालवी लोक साहित्य एक अध्ययन
हिन्दुस्तान अकादमी, अलाहाबाद
प्र.सं. 1969

56. श्याम परमार - मालवी लोक साहित्य एक अध्ययन
हिन्दुस्तान अकादमी, अलहाबाद
प्र.सं. 1969

57 डॉ. एम. षणमुखन पुलाप्पट्टा - मास्टर ऑफ हिन्दी
कोसमोस पब्लिकेशन्स
पालक्काड, प्र.सं. 1999 जनवरी

58. सत्या गुप्त - खडीबोली का लोकसाहित्य
हिन्दुस्तानी अकादमी
इलाहाबाद, प्र.सं. 1965

59 सत्येन्द्र - लोकसाहित्यविज्ञान
शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी लिमिटेड
दिल्ली, प्र.सं 1962

60 सन्तराम अनिल - कन्नौजी लोक साहित्य
अभिनव प्रकाशन, दरियागंज
प्र.सं 1975

61 सन्तोष शैलजा - हिमालय की लोक कथाएँ
राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली-16
प्र.सं. 1978

62. सागर - क्रान्तिकारी आज़ाद
अक्षरम, दिल्ली
प्र.सं. 2004

63. सावित्री देवी वर्मा - उत्तर प्रदेश की लोक कथाऐं
राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली-6
द्वि सं. 1978

64. सावित्री देवी वर्मा - उत्तर भारत की लोक कथाएँ
आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली-6
दि. सं. 1958

65 सिद्देश्वर शास्त्री चित्राव - प्राचीन चरित्र कोश
भारतीय चरित्र कोश मण्डल, पूना
प्र.सं. 1964

66 हरिकृष्ण देवसरे - बाल साहित्य मेरा चिन्तन
मेधा बुक्स, दिल्ली
द्वि सं 2002

67 हरिकृष्ण देवसरे - बालसाहित्य रचना और समीक्षा
शकुन प्रकाशन - नई दिल्ली
प्र.सं 1998

68. हरिकृष्ण देवसरे - हिन्दी बाल साहित्य एक अध्ययन
आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली
प्र.सं. 1969

69. श्रीकृष्ण दास - लोकगीतों की सामाजिक व्याख्या
साहित्य भवन, इलाहाबाद
प्र.सं. 1956

70. ज्ञानेन्द्र कुमार भट्नागर - केरलं की लोक कथाएँ
आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली-6
प्र सं 1958

मलयालम

1 अच्युतन एम. - कुट्टिकळुडे अरबिक्कथकळ्
संस्थाना बालसाहित्य इन्स्टिट्यूट
तिरुवनन्तपुरम
प्र.सं. 1994

2. अनन्तकृष्णय्यर ए.एस. - रामाय्रणम् कथा
संस्थाना बालसाहित्य इन्स्टिट्यूट
तिरुवनन्तपुरम
प्र.सं. 1983

3. अप्पुण्णि मलयत्त - कुञ्ञन् कुरुक्कन्
नाशनल बुक स्टाल, कोट्टयम्
प्र.सं. 1949

4 आनि तय्यिल् - कुट्टिकळेप्पट्टि चिलतु
सी.पी. प्रस, एरणाकुळम्
प्र.सं. 1980

5 आर्यन टी - केळुक्कुरुक्कन्
पूर्णा पब्लिकेशन्स, कोषिक्कोड
प्र.सं. 1990

6. इंदु वेणुगोपाल - मान्त्रिकनुम् राक्षसनुम्
संस्थाना बालसाहित्य इन्स्टिट्यूट
तिरुवनन्तपुरम्
प्र.सं. 1995

7 इलञ्ञि. जे. - कळिवीडु
साहित्यप्रवर्तक सहकरण संघम्
प्र.सं 1985

8. उण्णिक्कृष्णन् कलूर - मलयुडे चिरि
पूर्णा· पब्लिकेशन्स, कोषि़क्कोड
प्र.सं. 1995

9. उळ्ळूर एस. परमेश्वरय्यर - केरलसाहित्यचरित्रम ओन्नाम् वाल्यम्
तिरुवनन्तपुरम्
प्र.सं 1967

10. ए.बी.वी. काविलप्पाडु - 101 नाडन्पाट्टुकळ्
एच & सी पब्लिशर्स, त्रिशूर
द्वि. सं. 2000 जूलै

11 प्रो. एरुमेली परमेश्वरन पिल्लै - मलयालसाहित्यम् कालघट्टङ्ङळिलूडे
(साहित्य चरित्रम्)
करन्ट बुक्स, कोट्टयम्
प्र.सं. 2004

12. एवूर परमेश्वरन - लोक बालकथकळ्
करन्ट बुक्स, कोट्टयम्
प्र.सं. 2000 जूलै

13 कावालम् नारायणप्पणिक्कर - केरळत्तिले नाडोडि संस्कारम्
नाशनल बुक ट्रस्ट आफ इंडिया
प्र.सं. 1991

14 कुञ्ञुण्णि - कडम्कथकळ्
केरलसाहित्य अकादमी, त्रिशूर
तृ सं. 1998 जून

15 कुञ्ञुण्णि - कुञ्ञुण्णिक्कवितकळ्
करन्ट बुक्स, कोट्टयम्
आठवाँ सं. 1996

16. कुञ्ञुण्णि - तेरञ्ञेडुत्ता पष़म्चोल्लुकळ्
बालसाहिती प्रकाशन
प्र.सं. 1996 सितंबर

17 कुञ्ञुण्णि - पष़म्चोल्लुकळ् (रण्डायिरत्ति नानूरु)
पी.के बुक्स, कोषिक्कोड
प्र.सं. 1957

18. कुमारनाशान - पुष्पवाटी
देवी बुक्स, कोडुङ्ङल्लूर
द्वि.सं. 2002

19 कृष्णन टी.वी - केरलीय नाडोडिक्कथकळ्
(पहला भाग और दूसरा भाग)
डी.सी बुक्स, कोट्टयम्
प्र.सं. 1994

20. (एन) कृष्णपिल्लै - कैरळियुडे कथा
नाशनल बुक्स, कोट्टयम्
प्र.सं. 1958

21 जोबि जोस - 1001 कडम्कथकळ्
एच & सी पब्लिशिंग हाऊस
त्रिशूर, प्र.सं. 2000

22. नायर एस.के - केरळत्तिले नाडोडि नाडकङ्ङळ्
जनता प्रस, मद्रास
द्वि, सं 1962

23 (के.एस) नारायणपिल्ला - कथयुडे कथा
केरळा शास्त्र साहित्य परिषद्
स्वराज प्रस पब्लिकेशन्स
तिरुवनन्तपुरम्, प्र सं 1998

24 परमेश्वरन पी.के - मलयालसाहित्य चरित्रम
केन्द्र साहित्य अकादमी, नई दिल्ली
पृ. सं. 1966

25. (पी.ओ) पुरुषोत्तमन् - तारतम्य साहित्यम् तत्ववुम् प्रसक्तियुम्
केरल भाषा इन्स्टिटय़ूट
प्र.सं. 1998

26. मडोणा बुक्स - आयिरत्तियन्पतु कडम्कथकळ्
मडोणा बुक्स, कोषि़क्कोड
प्र.सं. 1990

27 (एम.एम.) मोनायी - पंचतंत्रम्
म्यूसस क्रियेशन्स
चिट्टूर रोड, कोच्चिन
प्र.सं. 2002

28. मोहनचन्द्रन एस - नाडन् पाट्टुकळ्
संस्थाना बालसाहित्य इंस्टिट्यूट
तिरुवनन्तपुरम्
प्र.सं. 1994

29 राघवन पय्यनाडु - फोकलोर
केरल भाषा इंस्टिट्यूट
तिरुवनन्तपुरम्, प्र.सं. 1986

30. राघव वारियर, राजन गुरुक्कळ्	-	केरल चरित्रम करन्ट बुक्स, कोट्टयम् द्वि. सं 1992
31 डॉ. (के) रामचन्द्रन नायर	-	केरल वर्मा स्मरणा केरलभाषा इंस्टिट्यूट तिरुवनन्तपुरम्, प्र.सं 1995
32. लोहिताक्षन तुम्बूर	-	बीरबल कथकळ् डी.सी. बुक्स, कोट्टयम् प्र.सं. 1994
33 वर्गीस पॉल	-	501 अक्षयगानङ्ङळ् बदलजीवितपठनकेन्द्रम्, त्रिशूर प्र.सं. 1999
34 विमला मेनोन	-	मन्दाकिनि परयुन्नतु केरल शास्त्र साहित्य परिषद् कोच्ची - 26, प्र.सं 2002
35. विद्यार्थीमित्रम्	-	201 कडम्कथकळुम् अवयुडे उत्तरङ्ङळुम् विद्यार्थीमित्रम्, कोट्टयम् प्र.सं. 1987
36. विश्वंभरन् किळिमानूर	-	नम्मुडे नाडन्पाट्टुकळ् काव्योत्सवसमिति तिरुवनन्तपुरम्, प्र.सं 1954
37 (एम.वी) विष्णु नंबूतिरी	-	कडम्कथकळ् ओरु पठनम् करन्ट बुक्स, कोट्टयम् प्र.सं 1994

38. (एम.वी.) विष्णु नंबूतिरी - काक्कविळक्किन्टे वेळिच्चत्तिल्
(नाडन् कला संस्कारपठनङ्ङळ्)
केरल भाषा इंस्टिट्यूट
तिरुवनन्तपुरम, प्र.सं 1934

39. (एम.वी.) विष्णु नंबूतिरी - केरळीयनाडोडिविज्ञानीयत्तिनोरु-
मुखावुरा
करन्ट बुक्स, कोट्टयम्
प्र.सं. 1978

40 (एम.वी.) विष्णु नंबूतिरी - नाडन् कळिकळुम् विनोदङ्ङळुम्
केरलं भाषा इंस्टिट्यूट
तिरुवनन्तपुरम्, प्र.सं 1993

41 (एम.वी.) विष्णु नंबूतिरी - नाडोडिविज्ञानीयम्
डी.सी बुक्स, कोट्टयम्
प्र.सं. 1997

42. (एम.वी.) विष्णु नंबूतिरी - पुलयरुडे पाट्टुकळ्
करन्ट बुक्स, कोट्टयम्
प्र.सं 1978

43. (एम.वी.) विष्णु नंबूतिरी - फोकलोर निघण्डु
केरलभाषा इंस्टिट्यूट
तिरुवनन्तपुरम्, प्र सं 1934

44 वेलायुधन पणिक्कश्शेरी - 1000 कडम्कथकळ्
एन.बी. एस., कोट्टयम्
प्र.सं. 1976

45 वैलोप्पिल्ली श्रीधरमेनोन - पच्चक्कुतिरा (बालकवितकळ्)
साहित्यप्रवर्तक सहकरण संघम्
कोट्टयम्, प्र.सं. 1981

46. वैलोप्पिल्ली श्रीधरमेनोन - मिन्नामिन्नी
साहित्यप्रवर्तक सहकरण संघम्
नाशनल बुक्स, कोट्टयम्
प्र.सं. 1981

47 शंकरनारायणन वी.ऐ. - एन्तुत्तरम्?
डी.सी. बुक्स, कोट्टयम्
प्र.सं. 1988

48. (पी.के.) शिवशंकर पिल्लै - फोकलोर पठनङ्ङळ्
केरल भाषा इंस्टिट्यूट
तिरुवनन्तपुरम्, प्र.सं. 1997

49 संस्थाना बालसाहित्य इंस्टिट्यूट - एन्ताणु कुट्टिकळुडे साहित्यम्
संस्थाना बालसाहित्य इंस्टिट्यूट
तिरुवनन्तपुरम्, प्र.सं 1983 नवं

50. संस्थाना बालसाहित्य इंस्टिट्यूट - बालसाहित्यम् तत्ववुम् चरित्रवुम्
संस्थाना बालसाहित्य इंस्टिट्यूट
तिरुवनन्तपुरम्, प्र सं 1995

51 सन्तोष कुमार के.सी - उण्णिकळ्क्कु कडम्कथकळ्
डी.सी. बुक्स, कोट्टयम्
प्र.सं 1986

52. स्करियास सखरियास - कडम्कथकळ्
करन्ट बुक्स, कोट्टयम्
प्र.सं. 1992

53. हेरमन गुण्डर्ट - गुण्डर्ट निघण्डु
साहित्य प्रवर्तक सहकरण संघम्
नाशनल बुक, कोट्टयम
द्वि.सं. 1962 अक्तूबर

अंग्रेज़ी

1.	Arabindo Ashram	On Education Sri Arabindo Ashram Pondichery, First Edition - 1984
2.	Chopra R.K.	Art Education National Council of Educational Research and Training First Edition-Nov. - 1992
3.	Devi Prasad	Art: The Basis of Education National Book Trust of India Second Edition - 2001
4.	(S.S) Chowhan	Advanced Educational Philosophy Sanjay Printers, New Delhi Sixth Edition - 2000
5.	Encyclopedia Britanica	Students Britanica Encyclopedia Britanica (India) Pvt.Ltd New Delhi, First Edition - 2000
6.	Field Enterprises Educational Corporation	The World Book Encyclopedia (c-ch) Volume-3, Field Enterprises Educational Corporation, USA First Edition - 1970
7	Funk & Wagnalls	Young Students Encyclopedia Inc. and Xerox Corporation New York, N.Y., First Edition - 1997
8.	Marshal Cavendish	Encyclopedia of knowledge Marshal Cavendish Book Ltd. Britain, First Edition - 1979

9.	Sisir Kumar Das	History of Indian Literature (Volume-3), Sahithya Academi First Edition - 1991
10.	Standard Educational Corporation	New Standard Encyclopedia (Volume-6) Standard Educational Corporation USA, First Edition - 1987

पत्र-पत्रिकाएँ

हिन्दी

1	आजकल (बालसाहित्य विशेषांक)	-	नवंबर	-	1978
2.	आजकल	-	मार्च	-	1979
3	आजकल	-	नवंबर	-	1979
4	आजकल	-	अप्रैल	-	1983
5	आजकल	-	नवंबर	-	1984
6.	आजकल	-	जनवंरी	-	1985
7	आजकल	-	फरवरी	-	1985
8.	आजकल	-	नवंबर	-	1985
9.	आजकल	-	जून	-	1986
10	आजकल	-	नवंबर	-	1988
11	आजकल	-	नवंबर	-	1990
12.	आजकल	-	नवंबर	-	1991
13	आजकल	-	नवंबर	-	1996
14	आजकल	-	नवंबर	-	1999
15	आजकल	-	नवंबर	-	2000
16.	कथाक्रम	-	अक्तू-दिसं	-	2002

G9113

17	केरल भारती		जनवरी-फरवरी 2002
18	गगनांचल		अंक-दो, नवंबर 1991
19	गवाह (बालसाहित्य विशेषांक)	-	अंक-1 वर्ष-1 मार्च - 1980
20	गवाह	-	नवंबर - 1991
21	दस्तावेज़-99	-	अप्रैल-जून - 2003
22.	बालसखा	-	अंक-1 वर्ष-1 जनवरी 1971
23.	मधुमती	-	जूलै-आगस्त - 1994
24	मधुमती	-	मई - 1996
25.	युद्धरत आम आदमी	-	नवंबर - 2004
26.	समकालीन साहित्य समाचार (बालसाहित्य विशेषांक)	-	नवंबर - 2004
27	सम्मेलन पत्रिका (लोकसंस्कृति विशेषांक)	-	1995, हिन्दी साहित्यसम्मेलन, प्रयाग

मलयालम

28.	केरलयुवता	-	अप्रैल - 2001
29.	प्रदीपम्	-	फरवरी - 2003
30	भाषा पोषिणी	-	पु. 11 अंक-6, अप्रैल-मई - 1988
31	भाषा पोषिणी	-	पु. 20, अंक-6, नवंबर - 1996
32.	भाषा पोषिणी	-	पु. 21 अंक-3, आगस्त - 1997

UNIVERSITY LIBRARY ★ COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY ★ Cochin - 682 022